हिन्दी-विलास-चन्द्रिका

या

हिन्दी-विलास की कुंजी

टीकाकार—श्री केशवप्रसाद शुक्ल विशारद

इसमें हिन्दी-विलास के सब पद्यों की सरल टीका विस्तृत व्याख्या और कठिन शब्दों के अर्थ सहित की गई है। साथ ही पद्यों में आने वाली पौराणिक कहानियाँ भी विस्तार से दी गई हैं, जो साधारणतया परीक्षा में पूछी जाती हैं। इस कुंजी की सहायता से विद्यार्थी बड़ी आसानी से सब पद्यों का अर्थ समझ सकते हैं। अर्थों की शुद्धता के विचार से ऐसी कुंजी अब तक तैयार नहीं हुई।

प्रकाशक

हिन्दी भवन

हास्पिटल रोड, लाहौर

पहला संस्करण　　१९३४　　मूल्य १॥।)

सत्यहरिश्चन्द्र सटिप्पण

चौथा परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण

(सम्पादक —श्रीधर्मचन्द्र विशारद)

सत्यहरिश्चन्द्र का यह संस्करण विद्यार्थियों के लिए सर्वोत्तम है। इसमें अर्थ खूब विस्तार से दिए गए हैं। अर्थों के सिवाय इसमें कवि-परिचय, पात्र-परिचय, नाटक-सम्बन्धी परिभाषायें और नाटक की संक्षिप्त कहानी आदि परीक्षा में पूछी जाने वाली सभी बातें दे दी गई हैं। इसीलिए इसका प्रतिवर्ष प्रायः नया संस्करण प्रकाशित हो जाता है। यदि आप पास होना चाहते हैं तो यही संस्करण खरीदिए। पुस्तक खरीदते समय श्रीधर्मचन्द्र विशारद का नाम पुस्तक पर अवश्य देख लीजिए। मू० ।=)

हिन्दी-विलास-चंद्रिका

या

हिन्दी-विलास की कुंजी

अर्थात्

हिन्दी-विलास के कठिन शब्दों तथा पद्यों के विस्तृत अर्थ

टीकाकार

श्री केशवप्रसाद शुक्ल

प्रकाशक

हिन्दी भवन

लाहौर

पहला संस्करण] १९३४ [मूल्य १।।)

प्रकाशक
श्री धर्मचन्द्र विशारद
हिन्दी भवन
लाहौर

मुद्रक
श्री देवचन्द्र विशारद
हिन्दी भवन प्रेस,
लाहौर

विषय-सूची

४०६५.

तुलसीदास रामायण

परशुराम-लक्ष्मण-संवाद

तेहि अवसर—भृगुकुल-कमल-पतंगा = भृगु वंश रूपी कमल के लिए पतंग अर्थात् सूर्य ।

उसी समय शिव के धनुष का टूटना सुनकर भृगु-वंश रूपी कमल के लिए सूर्य (परशुरामजी) आये ।

देखि महीप—लवा = बटेर । भूति = राख । त्रिपुण्ड = तिलक ।

उन्हें देखकर समस्त राजा ऐसे सहम गये, जैसे बाज की झपट देखकर बटेर छिप जाते हैं । परशुरामजी के गौर-वर्ण शरीर पर भभूत (राख) बहुत शोभायमान है और विशाल मस्तक पर तिलक विराज रहा है ।

सीस जटा—रिसिबस=क्रोधवश। अरुण = लाल। राते = लाल।

शिर पर जटा है और मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है, जो क्रोध के कारण कुछ लाल हो गया है। भौंहें टेढ़ी हो गई हैं और आँखें क्रोध से लाल हो रही हैं। वे साधारण रूप से भी देखते हैं तो मालूम होता है कि मानों रुष्ट होकर देख रहे हैं ।

वृषभ कंध—वृषभ = बैल । उर = छाती । कटि = कमर । तून = तरकस ।

बैल के समान ऊँचे कन्धे हैं, छाती और भुजाएँ विशाल हैं, सुन्दर जनेऊ और माला पहिने हुए हैं तथा बगल में मृगचर्म दबाये, कमर में मुनिवस्त्र (कौपीन) और दो तरकस बाँधे हुए हैं, हाथ में धनुषबाण तथा कन्धे पर सुन्दर फरसा रखे हुए हैं ।

संतवेश—करनी = कर्म । भूप = राजा ।

उनका वेश तो साधु-सन्तों जैसा और करनी कठोर है, जिससे उनके स्वरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा मालूम होता है,

मानो स्वयं वीर-रस मुनि का वेश धारण करके वहाँ आ गया है, जहाँ सब राजा उपस्थित हैं।

देखत भृगुपति—भुआला = भूपाल, राजा।

परशुरामजी के भयङ्कर वेश को देख, सब राजा भय से व्याकुल होकर उठ खड़े हुए और पिता सहित अपना-अपना नाम ले-लेकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

जेहि सुभाव—चितवहिं = देखते हैं। आइ = आयु। खुटानी = पूरी हो गई।

जिसको वे प्रिय जान कर सहज स्वभाव से ही देखते हैं, वह ऐसा जानता है, मानों आयु समाप्त हो गई। फिर जनकजी ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

आसिस दीन्ह—पदसरोज = चरण कमल।

(परशुरामजी ने) आशीर्वाद दिया जिसे सुनकर सखियाँ प्रसन्न हुई और सीताजी को अपनी मंडली में ले गई। फिर विश्वामित्र जी आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों (राम-लक्ष्मण) से उनके चरणकमलों में प्रणाम करवाया।

राम लखन—ढोटा = लड़के।

विश्वामित्रजी ने कहा,—ये दोनों भाई रामचन्द्र और लक्ष्मण, राजा दशरथ के पुत्र हैं। अच्छी जोड़ी जान कर परशुरामजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

बहुरि बिलोकि—

फिर राजा जनक की ओर देख कर बोले,—कहो, यह इतनी भीड़-भाड़ क्यों हुई है। परशुराम सब कुछ जानते हुए भी अन-जान की तरह से पूछते हैं, पूछते पूछते उनके शरीर में क्रोध भर आया।

समाचार कहि०—

जिस कारण से राजा आये हैं, जनकजी ने वह कारण

(सीता-स्वयंवर का हाल) कह सुनाया उनके वचनों को सुनते सुनते परशुरामजी ने दूसरी ओर देखा, तो पृथ्वी पर धनुष के टुकड़े पड़े हुए देखे।

अति रिस—जड़=मूर्ख।

अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वचन बोले,—रे मूर्ख जनक, कह तो सही इस धनुष को किसने तोड़ा है? रे मूर्ख, उसको जल्दी दिखा, नहीं तो आज जहाँ तक तेरा राज्य है, उस धरती को मैं उलट दूँगा

अति डर उतर—त्रास=डर। उतर=उत्तर।

अत्यन्त भय से राजा जनक, उत्तर नहीं देते, (यह देखकर) कुटिल राजा मन में प्रसन्न हुए। देवता, मुनि नाग और नगर के स्त्री-पुरुष सब के हृदय में भारी त्रास उत्पन्न हुआ और सब सोचने लगे।

मन पछताति—महतारी=माता। निमेष=पलक, क्षण।

सीताजी की माता मन में पछताती हैं, कि हाय, विधाता ने अब बनी बनाई बात बिगाड़ दी। परशुरामजी का स्वभाव सुनकर सीता को आधा क्षण कल्प के समान बीतने लगा।

सभय विलोके—विषाद=दुःख। भीर=संकट, कष्ट।

सब लोगों को भयभीत और जानकीजी को संकट में जानकर, जिनके हृदय में न खुशी है, न दुःख, वे श्रीरामचन्द्रजी बोले—

नाथ संभु-धनु—भंजनहारा=तोड़ने वाला। आयसु=आज्ञा।

हे नाथ, शिवजीके धनुषको तोड़नेवाला आपका ही कोई एक दास होगा। क्या आज्ञा है मुझसे क्यों नहीं कहते? यह सुनकर क्रोधी मुनि रुष्ट होकर बोले—

सेवक सो—अरिकरनी=शत्रु का काम।

सेवक तो वह होता है, जो सेवा करे। जो शत्रुका काम करे उससे तो लड़ाई करनी चाहिये। हे राम, सुनो,

जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहुके* समान मेरा शत्रु है।

सो बिलगाउ—बिहाइ=छोड़कर।

वह राजसमाज को छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सब राजा मारे जायँगे। मुनि के वचन को सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये और परशुधर(परशुरामजी) का अपमान कर बोले,—

बहु धनुहीं—रिस=क्रोध।

लड़कपन में हमने बहुत से धनुष तोड़े हैं, परन्तु हे गोसाईं, आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर किस कारण से इतनी प्रीति है? यह सुनकर भृगुकुल के लिए पताका रूप परशुरामजी क्रुद्ध हो कर बोले—

रे नृपबालक—त्रिपुरारि=महादेव।

रे राजपुत्र, तू कालवश हुआ है, जो (जबान) सँभाल कर नहीं बोलता। महादेव का धनुष संसार में विख्यात है, क्या वह भी साधारण धनुषों के समान है?

लपन कहा हँसि—छति=नुकसान। जून=जीर्ण, पुराना। भोरे=धोखे।

* सहस्रार्जुन माहिष्मती का राजा था। वह बड़ा वीर और योद्धा था और उसके सहस्र भुजाएँ थीं। एक बार वह ससैन्य परशुरामजी के पिता महर्षि जमदग्नि के आश्रम में आया। मुनि ने उसका आतिथ्य-सत्कार किया। उसको आश्चर्य हुआ कि एक वनवासी तपस्वी के पास, इतना ऐश्वर्य कहाँ से आया? पता लगाने पर यह मालूम हुआ कि वह उस कामधेनु की महिमा है, जो मुनि के पास है। राजा ने मुनि को लोभ दिखाकर कामधेनु को लेना चाहा और न मानने पर उनकी हत्याकर कामधेनु को ले चला। परन्तु कामधेनु तो राक्षसों का संहार कर स्वर्ग को चली गई। बाहर से आकर परशुरामजी ने विलाप करती हुई माता से सब वृत्तान्त सुना और क्रुद्ध हो उन्होंने सहस्रबाहु को मारकर इक्कीस बार क्षत्रियवंश का संहार किया।

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा,—हे देव, सुनिये, हमारी समझ में तो सब धनुष बराबर हैं। पुराने धनुष को तोड़ने से क्या हानि-लाभ है ? रामचन्द्रजी ने तो इसे नये धनुष के धोखे में देखा था।

छुवत टूट—

धनुष छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथजी का दोष नहीं है। हे मुनि, बिना कारण ही क्यों क्रोध करते हो ? तब फरसे की ओर देखकर परशुरामजी बोले,—रे शठ, तूने मेरे स्वभाव को नहीं सुना है ?

बालक बोलि—विस्वविदित = संसार में प्रसिद्ध।

बालक समझकर तुझे नहीं मारता हूँ। मूर्ख, मुझे केवल मुनि ही समझता है ! मैं बालब्रह्मचारी अत्यन्त क्रोधी हूँ, और संसार में क्षत्रिय वंश का द्रोही प्रसिद्ध हूँ।

भुजबल भूमि—बिपुल = बहुत। महिदेव = ब्राह्मण।

अपनी भुजाओं के बल से मैंने पृथ्वी को बिना राजाओं के कर दिया। कई बार पृथ्वी ब्राह्मणों को दे दी। अरे राजकुमार, सहस्रबाहु की भुजाओं का छेदन करने वाला फरसा देख।

मातुपितहि जनि—अरभक = बच्चा।

रे राजकुमार, अपने माता-पिता को शोकातुर मत कर अर्थात् यदि तू मुझे बहुत क्रोध दिलायगा तो मैं तुझे मार डूँगा, और तेरे माता पिता शोक करेंगे। मेरा फरसा गर्भिणियों के बच्चों तक का नाश करने में बड़ा भयङ्कर है। अर्थात् मेरे फरसे के डर से स्त्रियों के गर्भ तक गिर जाते हैं।

बिहँसि लषन बोले—महाभट = बड़ा वीर।

लक्ष्मणजी हँसकर मीठी वाणी से बोले,—हे अपने को बड़ा शूरवीर मानने वाले मुनिराज, तुम बार-बार मुझे फरसा दिखाते हो, और फूँक से पहाड़ को उड़ाना चाहते हो।

इहाँ कुम्हड़—कुम्हड़ा = काशीफल। बतिया = कुछ दिन का कोमल और कच्चा फल।

यहाँ कोई कुम्हड़े की बतिया तो है नहीं, जो तर्जनी अंगुली को देखते ही मुरझा जाय। फरसा और धनुष-बाण को देखकर मैंने तो कुछ बातें अभिमान के साथ कही हैं।

भृगुकुल समुझि —महिसुर = ब्राह्मण। सुराई = शूरता।

भृगुवंशज (ब्राह्मण) समझ कर और जनेऊ देखकर आप जो कुछ कहते हैं, उसे रोष रोककर सहता हूँ। देवता, ब्राह्मण, हरिभक्त और गौ, इनपर हमारे कुल के लोग शूरता नहीं दिखाते।

बधे पाप अपकीरति—अपकीरति = अपयश। कुलिस = वज्र।

इनको मार डालने से पाप होता है और इनसे हार जाने से अपयश होता है। इसलिये आप मारें तो भी आपके पाँव पड़ना चाहिए। करोड़ों वज्रों के समान तो आपके वचन ही हैं, फिर धनुष बाण और फरसा तो आप व्यर्थ ही उठाये फिरते हैं।

जो बिलोकि—गिरा = वाणी।

हे धीर महामुनि, मैंने जो (आपके क्षत्रिय के चिह्न) देखकर कुछ अनुचित कहा हो, उसे क्षमा कीजिये। लक्ष्मण की बात सुनकर क्रुद्ध हो, भृगुवंश के रत्न परशुरामजी गंभीर वाणी बोले।

कौसिक सुनहु—घालक = नाश करने वाला। राकेश = चंद्रमा।

हे विश्वामित्र, सुनिये, यह बालक मूर्ख और कुटिल है और काल के वश हो अपने कुल का नाश करना चाहता है। सूर्यवंश-रूपी चन्द्रमा का यह कलङ्क है और बिलकुल ही निरंकुश, (उच्छृंखल) नासमझ और निडर है।

काल-कवलु होइहि—कवलु = ग्रास। खोरि = दोष।

यह क्षणभर में काल का ग्रास होगा, मैं पुकार कर कहता हूँ, फिर मेरा दोष नहीं होगा। तुम यदि इसे बचाना चाहते हो, तो मेरा प्रताप, बल और रोष, इसको बताकर मना कर दो।

लषन कहेउ मुनि—अछत = रहते हुए।

लक्ष्मणजी ने कहा,—हे मुनि, आपका सुयश आपके रहते

दूसरा कौन वर्णन कर सकता है ? आपने अपनी करनी का अपने ही मुख से कितनी ही वार कई तरह से बखान कर दिया है।

नहिं सन्तोष तो—

इतने पर भी यदि संतोष नहीं हुआ, तो और कुछ कहिये। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिये। आपकी वीरता की वृत्ति (वर्ताव) है, आप धीर हैं, क्रोध-रहित हैं, आप गाली देते शोभा नहीं पाते।

सूर समर—

शूर-वीर संग्राम में अपनी करनी (शूरता) करते हैं, अपने मुँह से कहकर अपने आपको जनाते नहीं फिरते। शत्रु को रण में उपस्थित देखकर कायर ही प्रलाप (बकवाद) किया करते हैं।

तुम्ह तो काल हाँक—

आप तो मानों काल को हाँक ले आये हैं, (अर्थात् साथ ही लेते आये हैं) जो वार-वार मेरे लिये बुलाते हैं। लक्ष्मण के कठोर वचन सुनकर परशुरामजी ने भीषण परशु को सँभालकर हाथ में लिया।

अब जनि देइ—

वे बोले—अब लोग मुझे दोष न दें, यह कड़वी बात बकने वाला बालक मारने ही योग्य है। बालक समझ कर मैंने इसे बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरने वाला हो गया है।

कौसिक कहा—

विश्वामित्रजी ने कहा,—अपराध क्षमा कीजिये, बालक के गुण-दोषों पर साधु जन ध्यान नहीं देते। परशुरामजी बोले,—हाथ में कुल्हाड़ा है और मैं अकारण क्रोधी (बिना कारण क्रोध करने वाला) हूँ तथा गुरु (शिवजी) का द्रोही अपराधी सामने खड़ा है।

उतर देत—

यह उत्तर देता जाता है, ऐसी दशा में भी जो मैं इसे बिना

मारे छोड़ता हूँ, हे विश्वामित्र, वह केवल आपके शील के कारण। नहीं तो इसे कठोर फरसे से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु (शिवजी) से उऋण हो जाता।

गाधि-सूनु कह हृदयः—अजगव = शिवजी का धनुष।

विश्वामित्रजी हृदय में हँसकर कहते हैं कि परशुराम को हरियाली ही सूझ रही है (सावन के अंधे को जैसे सब जगह हरियाली ही सूझती है वैसेही इन्हें सब साधारण क्षत्रिय ही दिखाई देते हैं जिन्हें वे कई बार मार चुके हैं)। जिन्होंने शिवजी के धनुष को ऊख की तरह तोड़ डाला, उन्हें ये नासमझ अब भी नहीं समझते हैं।

कहेउ लषन मुनि सील——

लक्ष्मणजी ने कहा,—हे मुनि, आपके शील को कौन नहीं जानता ? वह तो संसार में प्रसिद्ध है। माता और पिता से तो आप अच्छी तरह से उऋण हुए हो। गुरु का ऋण बाकी रहा है, उसकी आपके हृदय में बड़ी चिन्ता है।❀

❀ एक दिन परशुरामजी की माता रेणुका यमुना स्नान करने गई, वहाँ गंधर्वों का विहार देखते देखते उसे लौटने में देरी हुई। जमदग्निने पर-पुरुष की रति देखना पाप समझ कर अपने पुत्रों को अपनी माता का शिर काटने की आज्ञा दी। यह सुन जब सात बेटों ने आज्ञा न मानी तब मुनि ने परशुरामजी से कहा। उन्होंने पिता की आज्ञा से सातों भाइयों और माता का सिर काट लिया। ऐसा साहस देख, ऋषि प्रसन्न हो बोले कि वर माँग। उन्होंने कहा कि ये सब जी उठें और मेरे मारने का वृत्तान्त न जानें। तब उन्होंने सब को जिला दिया। उन्हीं जमदग्नि को जब सहस्रबाहु ने मारा तो उनकी माता ने २१ बार छाती पीटी। इस पर परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रिय-रहित किया। इस तरह माता-पिता के ऋण से तो वे उऋण हो गए पर गुरु (महादेवजी) से नहीं हुए।

सो जनु हमरेहि—व्यवहरिया = साहूकार, कर्ज देने वाला।

वह ऋण मानों हमारे ही मत्थे निकाला है। उस ऋण को चढ़े दिन भी बहुत बीत गये, इसलिए उसका ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब साहूकार (महादेव, जिनका तुम पर ऋण है) को बुलाकर लाइये, तो मैं तुरन्त थैली खोलकर हिसाब चुका दूँ। इसमें से यह ध्वनि निकलती है कि तुम हम से बदला लेने के योग्य नहीं हो; अपने गुरु महादेवजी को बुलाओ, वे आकर बदला ले जायेंगे।

सुनि कटु बचन—

(परशुराम ने) कटु वचन सुनकर फरसे को सँभाला तो सब लोग हा ! हा ! करके चिल्ला उठे। (लक्ष्मणजी ने फिर कहा) हे भृगुश्रेष्ठ, मुझे आप फरसा दिखा रहे हैं, पर हे राज-द्रोही महाराज, मैं आपको ब्राह्मण विचारकर बचा रहा हूँ।

मिले न कबहुँ सुभट....

कभी गहरे संग्राम में आपको अच्छे योद्धा नहीं मिले। ब्राह्मण देवता घर के ही बड़े होते हैं। इतने में सब लोग पुकार उठे कि यह अनुचित कह रहा है। तब रघुनाथजी ने संकेत से लक्ष्मणजी को मना किया।

लषन उतर—

इस तरह लक्ष्मणजी की उत्तररूपी आहुति से परशुरामजी की क्रोधरूप अग्नि को बढ़ते देख रघुकुल के सूर्य रामचन्द्रजी जल के समान (बुझानेवाले) वचन बोले,—

नाथ करहु—छोहू = दया।

हे नाथ, बालक पर दया कीजिये। यह तो सीधा दुधमुँहा बालक है, इस पर क्रोध न कीजिये। यदि वह श्रीमान् के प्रभाव को कुछ भी जानता, तो क्या यह नादान इतनी बराबरी करता।

जो लरिका कछु—अचगरि = नटखटी, शरारत।

जो लड़का कुछ नटखटी भी करता है, तो माता, पिता और गुरु मन में आनन्दित होते हैं। इसको बालक और अपना दास समझकर कृपा कीजिये, क्योंकि आप तो समदर्शी, शीलवान्, धीर और ज्ञानी मुनि हैं।

रामवचन सुनि—जुड़ाने = ठंढे हुए। बहुरि = फिर।

रामचन्द्रजी की बातें सुनकर परशुराम कुछ ठंढे हुए थे, कि इतने में लक्ष्मणजी फिर कुछ कहकर मुस्करा दिये। उन्हें हँसता देखकर परशुरामजी को नख से चोटी तक क्रोध चढ़ गया और वे बोले, हे राम, तेरा भाई बड़ा पापी है।

गौर शरीर स्याम—कालकूट = ज़हर। पय = दूध। मीच = मृत्यु।

इसका शरीर तो गोरा है, किन्तु यह मन में काला है, यह दुधमुँहा नहीं, पर जहरीले मुखवाला है। यह स्वभाव से ही टेढ़ा है और तुम्हारे समान नहीं है, यह नीच मृत्यु के समान मुझको (खड़ा हुआ) नहीं देखता।

लषन कहेउ हँसि—

लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा,—हे मुनि, सुनिये; पाप क्रोध का मूल है, जिसके वश में होकर लोग अनुचित कर डालते और संसार से लड़ाई मोल लेते हैं।

मैं तुम्हार अनुचर—

हे मुनिराज, मैं तो आपका सेवक हूँ, क्रोध त्याग कर अब दया कीजिये। टूटा हुआ धनुष रुष्ट होने से तो जुड़ेगा ही नहीं, खड़े खड़े पाँव दुखने लगे होंगे इसलिए अब बैठ जाइये।

जो अति प्रिय तो—मष्ट = चुप ।

यदि यह धनुष बहुत प्यारा है, तो उपाय कीजिये, कोई बड़ा गुणी बुलाकर जुड़वा लीजिये। लक्ष्मणजी के बोलने से जनक जी डरते हैं। अंत में उन्होंने कहा,—बस, चुप करो, बहुत अनुचित कहना अच्छा नहीं होता।

थर थर काँपहिं —

नगर के नर-नारी थर-थर काँपते हैं और कहते हैं, छोटा कुमार बहुत खोटा है। लक्ष्मणजी की निर्भय वाणी सुन-सुनकर परशुरामजी का शरीर क्रोध से जला जाता है और बल क्षीण होता जाता है ।

बोले रामहिं देइ—कनक = सोना ।

रामचन्द्रजी को निहोरा देकर अर्थात् उन पर एहसानसा करके वे बोले,—तुम्हारा छोटा भाई समझकर मैं इसे बचाता हूँ। यह मन का मलिन और शरीर का सुन्दर है, जैसे सोने का घड़ा विष के रस से भरा हो।

सुनि लछमन—

यह सुनकर लक्ष्मण फिर हँसे, इस पर रामचन्द्रजी ने आँख के इशारे से डाँटा, वे भी टेढ़ी बात कहना छोड़ कर, सकुचाकर गुरु के पास चले गये ।

अति विनीत मृदु—

अत्यन्त नम्रता से दोनों हाथ जोड़कर रामचन्द्रजी कोमल और शीतल वचन बोले,—हे नाथ, सुनिये, आप स्वभाव से ही चतुर हैं, बालक की बात पर ध्यान न दीजिये।

बररै बालक एक—बररै = बर्रे, भिड़, ततैया।

बर्रे और बालक का एक ही स्वभाव होता है, (बर्रे छिड़ जाने से काट खाती हैं और बालक भी छिड़ जाने से नटखटी करते हैं)। उन्हें बुद्धिमान् जन कभी दोष नहीं देते। फिर हे नाथ, उसने तो आपका कुछ काम भी नहीं बिगाड़ा, आपका अपराधी तो मैं हूँ।

कृपा कोप वध—

हे गोसाईं, कृपा, क्रोध, बध, या बन्धन जो कुछ करना हो मुझ पर सेवक की भाँति (अर्थात् मुझे अपना सेवक समझ कर) कीजिये। हे मुनिनायक, जिस प्रकार से आपका क्रोध शीघ्र दूर हो वह कहिये, वही उपाय करूँ।

कह मुनि राम जाइ—अनैसे=बुरे भाव से, टेढ़ी नज़र से।

मुनि ने कहा,—हे राम, मेरा क्रोध जाय तो कैसे जाय? अब भी तुम्हारा छोटा भाई, टेढ़ी नजर से देख रहा है। यदि इसके कंठ पर मैंने कुठार न चलाया, तो मैंने क्रोध ही करके क्या किया?

गर्भ स्रवहिं अवनि—

जिस कुल्हाड़े के भीषण शब्द को सुनकर राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, उसी फरसे के मौजूद रहते, मैं शत्रु राजकुमार को जीवित देखता हूँ।

बहइ न हाथ—

हाथ तो नहीं चलता, क्रोध से छाती जली जाती है, यह राजाओं का घातक फरसा भी कुण्ठित हो गया। विधाता विपरीत हो गया है, जिससे मेरा स्वभाव ही बदल गया है, नहीं तो मेरे हृदय में किसी पर कृपा कैसी!

आजु दैव दुख दुसह—

आज दैव ने असह्य दुःख सहाया, यह सुन कर लक्ष्मण जी ने हँसकर सिर नीचा कर लिया और बोले,—वाह री कृपा ! जैसी कृपा वैसी ही आपकी मूर्त्ति है। आप जो वचन बोलते हैं वे मानों फूल झड़ते हैं।

जौ पै कृपा जरहिं—

हे मुनिराज यदि कृपा करने से आपका शरीर जला जाता है, तब क्रुद्ध होने पर तो ब्रह्मा ही उसकी रक्षा करते होंगे। परशुराम जी बोले,—हे जनक, देखो, यह मूर्ख बालक हठ करके यमपुरी में घर करना चाहता है अर्थात् मरना चाहता है।

बेगि करहु किन आँखिन—

इसको शीघ्र मेरी आँखों से ओट (आड़ में) क्यों नहीं कर देते ? यह राजा का छोकरा देखने में छोटा है, पर है बड़ा खोटा। (यह सुन कर) लक्ष्मण जी ने हँसकर मुनि से कहा— आँख मूँद लीजिये तो कहीं कोई भी नहीं दीखेगा।

परशुराम तब—

तब परशुराम हृदय में अत्यधिक क्रोध-भर के रामचन्द्रजी से बोले,—अरे मूर्ख, शिवजी का धनुष तोड़ कर तू मुझे ज्ञान सिखाता है।

बंधु कहइ कटु—

तेरा भाई तेरी ही सम्मति से कड़वी बातें कहता है और तू कपट से हाथ जोड़ कर विनती करता है। युद्ध कर के तू मुझे संतुष्ट कर, नहीं तो 'राम' कहलाना छोड़ दे, अपना नाम बदल डाल।

छल तजि करहि—

अरे शिवद्रोही, छल छोड़कर संग्राम कर, नहीं तो भाई सहित तुझे मारूँगा। इस तरह परशुरामजी कुठार उठाये हुए बक रहे हैं और रामचन्द्रजी शिर नवाये हुए मन में मुस्कराते हैं कि—

गुनहु लखन कर—गुनहु = गुनाह, अपराध।

अपराध तो लक्ष्मण का है और रोष हम पर करते हैं, कहीं कहीं सीधेपन से भी बड़ा दोष होता है। दूज का चन्द्रमा टेढ़ा होता है अतः उसको सब नमस्कार करते हैं और राहू भी उसको नहीं ग्रसता।

राम कहेउ—

रामचन्द्रजी ने कहा,—हे मुनीश्वर, क्रोध को त्याग दीजिये, आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह शिर सामने है। जिस तरह से क्रोध जाय, मुझे अपना सेवक समझ कर वही कीजिये।

प्रभु सेवकहिं—

स्वामी और सेवक में युद्ध कैसा? हे विप्रवर, क्रोध को त्यागिये। आपका वेश (क्षत्रिय समान) देखकर यह कुछ कह बैठा है, इसलिए बालक का भी दोष नहीं है।

देखि कुठार बान—

आपको कुठार और धनुषबाण धारण किये देख और वीर (योद्धा) समझकर लड़के को क्रोध आ गया। आपका नाम तो इसने जाना, पर आपको पहिचाना नहीं और वंश के स्वभावानुसार उसने उत्तर दिया है, क्षत्रियों में तेज स्वाभाविक ही है।

जो तुम्ह अवतेहु—

हे गोसाईं, यदि आप मुनिकी भाँति आते, तो बालक आप के चरणों की धूलि शिर पर रखता। बिना जानेकी भूलको क्षमा कीजिये, ब्राह्मण के हृदयमें तो विशेष दया होनी चाहिये।

हमहिं तुम्हहिं सरबर—सरबरि=बराबरी

हे नाथ, हमारी-तुम्हारी बराबरी कैसी? कहिये न, कहाँ चरन और कहाँ माथा। हमारा छोटासा दो अक्षर का नाम 'राम' और आपका 'परशु' के सहित बड़ा नाम (परशुराम) है।

देव एक गुन—

हे देव, हमारा तो धनुष ही एक गुण है, या हमारे धनुष में ही एक गुण (सूत, ज्या) है और आपके परम पवित्र नौ गुण हैं। ब्राह्मण में निम्नलिखित नौ गुण कहे हैं—शम दम, तप, शौच, शांति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता। आपसे हम सब प्रकारसे हारे हुए हैं। हे ब्राह्मण, हमारे अपराध को क्षमा कीजिये।

बारबार मुनि विप्रवर—

रामचन्द्रजीने परशुरामजी से बार-बार 'मुनि' और 'विप्रवर' कहा—(वीर या सुभट कहकर सम्बोधन नहीं किया) तो परशु-रामजी क्रुद्ध होकर बोले,—तू भी अपने भाई के समान टेढ़ा है।

निपटहि द्विजकरि—स्रुवा=लकड़ी की बनी हुई एक प्रकार की छोटी कड़छी जिससे हवन में घी की आहुति देते हैं। कृषानु=आग।

तू मुझको केवल ब्राह्मण ही जानता है, मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुष मेरा स्रुवा है, बाण आहुति है और अति प्रचण्ड क्रोध अग्नि है।

समिध सेन—

चतुरङ्गिनी सेना (वह सेना जिसमें रथ, घोड़े; हाथी और पैदल हों) होम की सुन्दर लकड़ी है, बड़े-बड़े राजा आकर बलिपशु हुए हैं। मैंने इसी फरसे से काटकर काटकर उनका बलिदान किया है, संसारमें मैंने ऐसे करोड़ों समरयज्ञ किये हैं।

मोर प्रभाव विदित—

मेरा प्रभाव तुझको विदित नहीं है, इसीसे तू ब्राह्मण के धोखे से मेरा निरादर करके बोलता है। धनुष तोड़कर तेरा बड़ा घमण्ड बढ गया है, ऐसा अहंकार मालूम होता है मानों जगत् को जीतकर खड़ा है।

राम कहा मुनि कहहु—पिनाक=शिव का धनुष।

रामचन्द्रजी ने कहा—हे मुनि, जरा विचारकर बोलिये, हमारी भूल तो छोटी ही है पर आपका क्रोध बहुत बढ़ गया है पुराना धनुष छूते ही टूट गया, फिर भला मैं किसलिए अभिमान करूँ।

जो हम निदरहिं—

हे भृगुनाथ, सच सच सुनिए, यदि हम ब्राह्मण कहकर आपका निरादर करते हैं, तो संसार में ऐसा शूरवीर कौन है, जिसके डरसे हम मस्तक नवावें।

देव दनुज भूपति—प्रचारइ=ललकारे।

देव, दानव, राजा और अनेक योद्धा, चाहे वे समान बल वाले हों और चाहे अधिक बलवाले; यदि युद्ध के लिए हमें कोई ललकारे, तो चाहे काल ही क्यों न हो हम प्रसन्नता से लड़ें।

छत्रिय तनु धरि समर—सकाना=डरना।

क्षत्रियका शरीर धारण करके जो युद्धसे डरे, उसको कुलका कलङ्क और अधम जानना चाहिये। मैं कुलकी प्रशंसा नहीं करता स्वभावकी बात कहता हूँ कि रघुवंशी संग्राम में काल से भी नहीं डरते।

विप्र बंस के—पटल = पड़दा।

ब्राह्मण-वंशकी ऐसी महिमा है कि जो आप से डरता है, वह निर्भय हो जाता है—अथवा अपनी छातीपर भृगुकी लात का चिह्न दिखाकर कहते हैं कि विप्रवंशकी यह महिमा है कि जिसके कारण हम अभय होकर भी आप से डरते हैं। रामचन्द्रजी के अत्यन्त अभिप्राय-पूर्ण वचन सुनकर परशुरामजीकी बुद्धिका पड़दे खुल गये।

राम रमापति—रमापति = विष्णु ।

परशुरामजीने कहा,—हे रामचन्द्र, यह लक्ष्मीपति (विष्णु) का धनुष लीजिये और इसको खींचिये, जिससे मेरा सन्देह मिट जाय। (क्योंकि यह धनुष मुझे विष्णु ने दिया था और कह दिया था और कह दिया था कि जो इसको चढ़ावे उसे तुम मेरा पूर्ण-अवतार जानना) ऐसा कह कर धनुष देने लगे, तो वह आप ही चढ़ गया, यह देखकर परशुरामजी के मनमें विस्मय हुआ कि मुझसे बड़ी भूल हुई।

जाना रामप्रभाव—

जब रामचन्द्रजी के प्रभावको जान लिया, तब शरीर प्रेमसे पुलकित और प्रफुल्लित होगया। हृदयमें प्रेम नहीं समाता, वे हाथ जोड़कर बोले—

जय रघुवंश—वनज = वन (जल) में होने वाला अर्थात् कमल।

हे रघुवंश-रूपी कमल वन के सूर्य और भयङ्कर राक्षस-वंश-रूपी जङ्गल के जलानेवाले दावानल, आपकी जय हो! देवता! ब्राह्मण और गौके हितकारी आपकी जय हो! मद, मोह, अज्ञान, क्रोध और भ्रमके हरनेवाले, आपकी जय हो।

विनयशील करुणा—नागर = चतुर। अनंग = कामदेव।

नम्रता, शील, दया और गुणोंके समुद्र, वचनोंकी रचनामें अति चतुर, सेवकों को सुख देनेवाले, सुन्दर अङ्गोंवाले तथा करोड़ों कामदेवोंकी छविसे युक्त शरीरवाले, आपकी जय हो।

करउँ काह मुख—मानस = मानसरोवर।

एक मुख से आपकी मैं क्या प्रशंसा करूं? शिवजी के मनरूपी मानसरोवर के हंस, आपकी जय हो! मैंने अनजान में बहुत अनुचित बातें कहीं, आप दोनों भाई क्षमा के मंदिर हैं, क्षमा कीजिये।

कहि जय जय—अपभय = भयरहित।

रघुकुलके लिए पताका-रूप रामचन्द्रजीका बारम्बार जयजयकार करते हुए परशुरामजी तपस्याके लिए वनको चले गये। जो राजा पहले डर गये थे वे अब निडर हो गये और जो कायर (डरपोक) थे वे जहाँ-तहाँ पहले ही भाग खड़े हुए थे।

देवन—दुंदुभी = नगाड़ा।

देवतागण नगाड़े बजाकर प्रभु रामचन्द्रपर फूल बरसाने लगे। नगर के स्त्री पुरुष प्रसन्न होगये और अज्ञानमय संताप मिटगया।

मन्थरा-कैकेयी-सम्वाद

बाजहिं बाजन विविध—विधाना = तरह के

नाना प्रकार के बाजे बज रहे हैं, नगर के उस आनन्द का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरतजी का आना मना रहे हैं कि वे भी जल्दी आ जाँय, तो नेत्रों को सफल कर लें।

हाट बाट घर—अथाई = बैठक या चौबारा

बाजारों में, रास्तों में, घरों में, गलियों और बैठकों में सब जगह स्त्री-पुरुषों में आपस में यही चर्चा है कि कल शुभ लग्न किस समय है, जब विधाता हमारी अभिलाषा (इच्छा) पूर्ण करेंगे?

कनकसिंहासन—

सुवर्ण के सिंहासन पर सीता-सहित जब रामचन्द्रजी बैठ जायँ, तब चित्त को आनन्द हो। सम्पूर्ण अयोध्यावासी कहते हैं कि कल कब होगा? परन्तु खोटी चाल वाले देवता विघ्न मनाने लगे।

तिनहिं सुहाई—

जैसे चोर को चाँदनी रात नहीं सुहाती, वैसे ही उन्हें अयोध्या में बधाइयाँ होना नहीं सुहाता। सरस्वतीजी को बुलाकर बार-बार उनके पाँवों में पड़ कर वे विनती करने लगे।

विपति हमारि—सुरकाज = देवताओं का काम

हे माता, हमारी भारी विपत्ति को देखकर आज वही करिये कि जिससे रामचन्द्रजी राज्य को छोड़कर वन को जायँ, और देवताओं के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हों।

सुनि सुरविनय—सरोज विपिन = कमल का वन। खोरी = दोष।

देवताओं की विनती सुनकर सरस्वती खड़े खड़े पछताती हैं कि मैं (अयोध्यारूपी) कमलवन के लिए पाले की रात्रि होऊँगी, सरस्वती के पछतावे को देखकर फिर देवता एहसान रखते हुए बोले—कि हे माता, आपको कुछ भी दोष नहीं लगेगा।

विसमय हरष—

आप सब तरह से रामचन्द्रजी के प्रभाव को जानती हैं। वे तो विस्मय और हर्ष से (सुख-दुःख से) रहित हैं। जीव कर्म के अधीन होकर ही सुख-दुःख भोगता है (रामचन्द्रजी तो जीव नहीं है) इसलिए देवताओं के कल्याण के लिए आप अयोध्या जाइये।

बार बार गहि चरन—बिबुध = देवता। पोची = खोटी, तुच्छ, नीच। बिभूती = विभूति, ऐश्वर्य।

जब देवताओं ने बार-बार पाँव पकड़ कर उन्हें संकोच में डाला, तब वे यह विचार कर चलीं कि देवताओं की बुद्धि खोटी है। इनका निवास तो ऊँचा (स्वर्ग में) है, परन्तु इनके कर्म नीच हैं; ये दूसरे के ऐश्वर्य को नहीं देख सकते।

आगिल काज—

फिर आगे के काम को विचार कर (कि गो, ब्राह्मण,देवता और पृथ्वी का भार दूर होगा) तथा चतुर कवि मेरा आदर करेंगे यह सोचकर प्रसन्न मन से सरस्वती दशरथजी के पुर में आई, परन्तु ऐसी मालूम होती थी, मानों असह्य दुःख देने वाली ग्रहदशा हो।

नामु मंथरा—

कैकेयी की मन्दबुद्धि वाली एक दासी थी, जिसका नाम मंथरा था। उसको अपयश की पिटारी बना कर (उसके माथे सारा दोष मढ़ कर) सरस्वती उसकी बुद्धि को उलट गई।

दीख मंथरा—

मन्थरा ने देखा कि नगर को सजाया जा रहा है,सुंदर मांगलिक बाजे बज रहे हैं। उसने लोगों से पूछा कि आज कौन सा उत्सव है ? रामचन्द्रजी का राजतिलक सुनकर उसके हृदय में जलन उत्पन्न हुई।

करइ विचार कुबुद्धि कुजाती—गँव = सुयोग, अवसर।

वह नीच बुद्धिवाली खोटी जाति की दासी विचार करने लगी कि रात ही भर में कैसे काम बिगड़ सकता है ? जैसे दुष्ट भीलनी शहद के छत्ते को लगा हुआ देखकर, सुयोग देखती है कि मैं उस पर कब और कैसे हाथ साफ करूँ, ऐसे ही मन्थरा भी (अवसर) देखने लगी (मौका ताकने लगी)

भरतमातु पहँ गइ—

वह बिलखती हुई भरतजी की माता कैकेयी के पास गई।

रानी ने हँस कर कहा,—तू उदास क्यों हो रही है? मन्थरा उत्तर नहीं देती है, लम्बी-लम्बी साँसें लेकर तिरिया-चरित्र करके (स्त्रियों के स्वभाव के अनुसार) आँसू बहाती है।

हँसि कह रानि—

रानी ने हँस कर कहा,—तेरे गाल बड़े-बड़े हैं (तू बड़ी बकवादिनी है) मैं समझती हूँ कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है। तब भी वह महापापिनी दासी बोली नहीं और इस प्रकार साँस छोड़ने लगी मानो काली नागिन है।

सभय रानि कह—

तब रानी ने डर कर कहा,—अरी कहती क्यों नहीं, रामचंद्र राजा दशरथ, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तो कुशलपूर्वक हैं? यह सुनकर कुबरी मन्थरा के मन में बड़ा ही दुःख हुआ।

कत सिख देइ—जनेसु = राजा।

हे महारानी, हमें कोई क्या सीख देगा और हम किसका बल पाकर मुँहजोरी करेंगी। राम को छोड़ आज किसकी कुशल है, जिसे राजा युवराजपद दे रहे हैं।

भयउ कौसिलहिं—

कौशल्या को विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुआ जिस को देखकर उसके हृदय में घमण्ड नहीं समाता। जाकर सब शोभा को क्यों नहीं देखती हो, जिसे देखकर मेरे मन में दुःख हुआ है।

पूतु बिदेस न सोच—

(तुम्हारा) पुत्र परदेशमें है, तुमको कुछ भी फिक्र नहीं; तुम जानती हो कि पति हमारे वश में हैं। तोशक-तकिये से सजी सेज और नींद तुम्हें बहुत प्यारी लगती है, राजा के कपट और चतुराई को तुम देखती ही नहीं।

सुनि प्रियवचन मलिन—अरगानी = अलग रह, चुप रह।

मंथराके प्यारे वचन सुन और उसे खोटी जानकर रानी ने झुककर कहा,—बस चुप रह। जो फिर कभी ऐसी घर में फूट करानेवाली बात कहेगी, तो पकड़ के तेरी जीभ खिंचवा लूँगी।

काने खोरे कूबरे—

काने, लंगड़े और कुबड़े बड़े कुटिल और खोटे होते हैं। (इनमें भी) स्त्री और भी खोटी होती है, फिर दासी सब से अधिक। यह कहकर भरतजी की माता मुस्करायी।

प्रिय वादिनि सिख दीन्हेउँ—

कैकेयीने कहा,—हे प्रिय बोलनेवाली, मैंने तुझे यह शिक्षा दी है, वैसे तुझपर मुझे स्वप्नमें भी क्रोध नहीं है। सुन्दर मंगलकारी दिन वही होगा जिस दिन तेरा कहना सत्य हो (अर्थात् रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हो।)

जेठ स्वामि सेवक—दिनकरकुल = सूर्यवंश

बड़ा भाई राजा और छोटे भाई सेवक होते हैं, सूर्यकुल की यही सुन्दर रीति है। यदि सचमुच कल रामचन्द्रजी का राजतिलक है, तो सखी, तेरे मनमें जो आवे, माँग, मैं दूँगी।

कौसल्या-सम सब—

सब माताएँ रामचन्द्रजीको कौशल्याके समान सहज स्वभाव से ही प्यारी हैं। परन्तु मुझपर उनका अधिक स्नेह है, मैंने प्रीति की परीक्षा करके देखी है।

जो विधि जनम देइ—छोहू = कृपा। छोभ = क्षोभ, दुःख।

यदि ब्रह्मा कृपा कर मुझे फिर जन्म दे, तो रामचन्द्र मेरे पुत्र और सीता बहू हों। रामचन्द्र तो मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं; उनके तिलक से तुझे दुःख क्यों हुआ?

भरत सपथ तोहि—परिहरि = छोड़दे।

तुझे भरतकी शपथ है, छल और छिपावको त्याग दे और सच कह कि आनन्दके समय जो तू दुःख करती है, इसका कारण क्या है?

एकहि बार आस— रउरेहिं = श्रीमती जी को, आपको।

मंथरा बोली—एकही बारमें सब आशाएँ पूरी हो गई, क्या अब दूसरी जीभ लगाकर कुछ कहूँगी। यह मेरा अभागा कपाल फोड़ने ही योग्य है जो अच्छा कहने में भी आपको दुःख मालूम हुआ।

कहहिं झूठ फुरि—

हे माता, जो झूठ-मूठ बातें बनाकर कहते हैं, वे ही तुम्हें प्रिय हैं, और मैं तो कडुवी हूँ। मैं भी अब ठकुर-सोहाती (खुशामद की बात) कहा करूँगी, नहीं तो दिनरात चुप रहूँगी।

करि कुरूप विधि—

विधाता ने मुझे कुरूप बनाकर परवश किया है, जो बोया है, वह काटना होगा और जो दिया है, वह मिलेगा। कोई राजा हो हमारी क्या हानि है? अब मैं दासी छोड़कर रानी तो हूँगी ही नहीं।

जारइ जोग सुभाव—

हमारा स्वभाव जलाने योग्य है, कि तुम्हारा बुरा नहीं देखा जाता। हे देवी, इसीसे कुछ उचित बातें कही हैं, सो मुझसे भारी भूल हो गई, उसे क्षमा करो।

गूढ़ कपट प्रियवचन—तीय = स्त्री। अधर = ओंठ। पतियाना = विश्वास करना।

स्त्रियों की बुद्धि ओठों में होती है—अर्थात् थोड़ा बहुत सुनते ही वे बदल जाती हैं, इससे रानी कैकेयी ने गहरे कपट से भरे प्रिय वचन सुनकर देवताओं की माया के वश हो कर

वैरिन मन्थरा को सहेली (अपना भला चाहने वाली) समझ कर उस पर विश्वास कर लिया।

सादर पुनि पुनि—रहसी = प्रसन्न हुई। चेरि = दासी।

(कैकेयी) आदर सहित बार-बार उससे पूछती है, ऐसा मालूम होता है, मानों शबरों (भीलनो) के गान पर मृगी मोहित हो गई हो। जैसा होनहार था, वैसी ही बुद्धि बदल गई। यह देखकर दासी प्रसन्न हुई कि उसका घात लग गया, दाँव चल गया।

तुम्ह पूँछहु मैं—

आप पूछती हैं, परन्तु मैं कहती हुई डरती हूँ, क्योंकि आपने मेरा नाम घरफोड़ी रखा है। इस प्रकार बहुत तरह से चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर जब उसने अपना विश्वास जमा लिया, तब वह आगे इस प्रकार के वचन बोली कि मानों उनसे अयोध्या पर साढ़साती (साढ़े सात वर्ष की शनिकी दशा) आ गई है।

प्रिय सिया रामु कहा तुम्ह—

हे रानी, तुमने राम और सीता को अपना प्रिय बताया है और कहा है कि तुम भी उनको प्रिय हो, सो बात ठीक है। परन्तु यह बात पहले थी, अब वे दिन बीत गये। समय फिरने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

भानु कमल कुल—सवति = सौत। बारी = जल, घेरा।

सूर्य कमलों को पालने वाले हैं, पर बिना जल के वे ही उनको जला कर भस्म कर देते हैं। तुम्हारी जड़ को सौत (कौशल्या) उखाड़ना चाहती है, इसलिए आप घेरा बना कर उपायरूपी श्रेष्ठ जल से उसको रोको।

तुम्हहिं न सोच—

तुम्हें अपने सोहाग के घमण्ड में कुछ सोच नहीं है, तुम राजा को अपने वश में समझती हो। पर राजा मनके मैले हैं और मुँह से मीठी बातें करते हैं और तुम्हारा तो सीधा स्वभाव है।

चतुर गंभीर—बीचु = मौका। मत = सलाह। रउरे = तुम, आप।

रामचन्द्र की माता चतुर और गंभीर है। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेजा, तुम इसको रामकी माता की सलाह समझो।

सेवहिं सकल सवति—सवति=सौतें।

वे समझती हैं कि सभी सौतें मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं, परन्तु भरत की माता पति के बल से घमण्ड में चूर रहती है। हे माई, कौशल्या को बस तुम्हारा ही खटका है, चतुर मनुष्य का कपट ज़ाहिर नहीं होता, समझ में नहीं आता।

राजहिं तुम्ह पर प्रीति—

राजा का तुम पर अधिक प्रेम है, सौत इसको स्वभाव से ही नहीं देख सकती। उसने जाल रचकर राजा को अपने वश में कर के रामचन्द्र के राजतिलक के लिए लग्न निश्चित करवा लिया है।

यह कुल उचित राम—सुहाइ=अच्छा लगता है।

इस कुल की प्रथा के अनुसार रामचन्द्र को तिलक होना उचित है और यह बात सभी को अच्छी लगती है तथा मुझे और भी अच्छी लगती है। परन्तु आगे की बात सोचकर डरती हूँ—फिर ईश्वर जो फल देगा, वह भोगना ही पड़ेगा।

रचि पचि—

इस तरह मन्थरा ने करोड़ों तरह की कपटपूर्ण बातें कह कर कैकेयी को खूब पट्टी पढ़ाई। सौतों की सैकड़ों ऐसी बातें कहीं जिनसे विरोध और भी बढ़े।

भावीवस प्रतीति—प्रतीति=विश्वास।

होनहार के वश में होने से कैकेयी को विश्वास हो गया,

फिर रानी सौगन्ध देकर पूछने लगी। मन्थरा ने कहा,—क्या पूछती हो, तुमने अब भी नहीं समझा! अपने हित और अनहित (भले-बुरे) को तो पशु भी जान लेते हैं।

भयउ पाखु दिन सजत—

तैयारियाँ होते हुए पन्द्रह दिन हो गये और तुमको आज ही मुझ से खबर मिली है! मैं तुम्हारे राज्य में खाती-पहनती हूँ, इस लिए सत्य कहने में मुझे दोष ही क्या है?

जौं असत्य कछु कहब—

यदि मैं कुछ बात बना कर झूठ कहूँगी, तो विधाता मुझे दण्ड देंगे। यदि कल रामचन्द्र को राज-तिलक होगया, तो समझ लेना कि तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति के बीज बो दिये।

रेख खँचाई कहौं—कामिनी = स्त्री।

हे रानी, मैं रेखा खींच कर अर्थात् प्रतिज्ञा करके बलपूर्वक कहती हूँ कि तुम दूध की मक्खी हो गई हो (मक्खी जब दूध में गिर जाती है तो न वह खा पी सकती है न उड़ ही सकती है) यदि पुत्र सहित सेवा करोगी, तो घर में रहोगी, और दूसरा उपाय नहीं है; अर्थात् राम और कौशल्या की चाकरी किये बिना तुम्हें घर में रहना कठिन हो जायगा।

कद्रू विनतहिं दीन्ह—नेब = नायब, सहकारी।

जैसे कद्रू ने* विनता को दुःख दिया था, उसी तरह से कौशल्या तुम्हें देगी। भरत बन्दीगृह का सेवन करेंगे, और लक्ष्मण रामचन्द्र के नायब होंगे।

---

*कद्रू और विनता कश्यप मुनि की दो पत्नियाँ थीं। कद्रू से सर्प और विनता से गरुड़ उत्पन्न हुए। एक बार कद्रू ने विनता से पूछा—सूर्य के घोड़ों की पूँछ का रंग कैसा है? विनता ने कहा,—

केकयसुता सुनत—कदली=केला। दसन=दाँत।

कैकेयी मंथरा की कठोर वाणी सुन सहम कर सूख गई और कुछ कह न सकी। उसका शरीर पसीने से भीग गया, वह केले की तरह काँप उठी, तब कुबड़ी मंथरा ने दाँतों तले जीभ दबा ली।

कहि कहि कोटिक—कठ=सूखा।

फिर करोड़ों कपट की कहानियाँ सुनाकर रानी को समझाने लगी कि धीरज धरिये, घबड़ाइये मत। बुरा पाठ पढ़ाकर उसने कैकेयी को कठोर (पक्का) कर दिया। जैसे सूखा काठ नमता नहीं इसी तरह कैकेयी भी कठोर हो गई।

फिरा करमु प्रिय लागि—मराली=हंसिनी।

भाग्य पलट गया, कुचाली (मंथरा) अच्छी लगने लगी, बगुली को हंसिनी समझकर कैकेयी उसकी प्रशंसा करने लगी। हे मन्थरा, सुन, तेरी बात सच्ची है, मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़कती है। स्त्री की दाहिनी आँख फड़कना बुरा माना जाता है।

दिनप्रति देखौं राति —

प्रतिदिन रातमें कुस्वप्न देखती हूँ। परन्तु अपनी अज्ञानतासे मोहवश तुझसे मैंने कुछ नहीं कहा। हे सखी, क्या करूँ, मेरा सीधा स्वभाव है, दाहिना-बायाँ (भला बुरा) कुछ नहीं जानती। कैकेई के दुःस्वप्न आँख फड़कना आदि भविष्य में विधवा होने और

सफेद है, किन्तु कद्रू ने काला रंग का बताया। दोनों में विवाद बढ़ा और यह बाजी लगी कि जिसकी बात झूठी हो, वह जन्मभर दूसरी की दासी बनकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों को समझाकर भेज दिया और वे घोड़ों की पूँछ में जा लिपटे। पूँछ काले रंग की दीखने लगी। विनता को दासी होकर रहना पड़ा।

अपयश पाने के सूचक थे पर इस समय उसे उनका मतलब दूसरा ही जान पड़ा।

अपने चलत न आजु—अघ = पाप

मैंने अपनी चलती में आज तक किसीका बुरा नहीं किया। फिर पता नहीं किस पापके कारण विधाता ने एक साथ ही मुझे यह दुस्सह दुख दिया ?

नैहर जनमु भरब—नैहर = मायके। भरब = भले ही।

मैं मायके जाकर भले ही जन्म बिता दूँगी, पर, जीतेजी सौतकी सेवा न करूँगी। जिनको ईश्वर शत्रुके अधीन रखकर जिलाता है, उनके लिए जीना नहीं, मरना ही अच्छा है।

दीन बचन कह—ऊना = छोटा।

रानी कैकेयी दीनता-भरी वाणी कहने लगी, कुबड़ीने सुनकर स्त्रियों वाली माया फैलाई। वह कहने लगी,—तुम मनमें अपने को छोटा समझ कर क्यों ऐसा कहती हो ? तुम्हारा सुख-सौभाग्य दिन-दूना बढ़े।

जेइ राउर अति अनभल—परिपाका = परिणाम में। बासर = दिन। जामिन = रात

जिसने आपकी बुराई चाही है, वही परिणामस्वरूप इसका फल पाएगी। हे स्वामिनि, जबसे मैंने यह खोटी सलाह सुनी है, तबसे मुझे न दिनमें भूख लगती है और न रातमें नींद आती है।

पूछेउं गुनिन्ह रेख तिन--

मैंने गुणियों (ज्योतिषियों) से पूछा, तो उन्होंने रेखा खींचकर कहा कि भरत राजा होंगे यह बात सत्य है। हे भामिनी, यदि करो तो उपाय बताऊँ, क्योंकि राजा तुम्हारी सेवा के वशमें हैं।

परउं कूप तव वचन—

कैकेयी बोली—तेरे कहनेपर तो मैं कुएँ में कूद सकती हूँ एवं पुत्र और पति को भी त्याग सकती हूँ। तुम मेरे भारी दुःख को देख कर कह रही हो, फिर भला अपने हित के लिए कैसे न करूँगी ?

कुबरी करि कुबलि—

कुबड़ी ने कैकेयी को कुबलि का पशु बनाकर कपटरूपी छुरीको अपने हृदयरूपी पत्थरपर लगाया अर्थात् सान दिया। जैसे बलिदानका पशु हरी-हरी घास चरता है, पर तलवारको नहीं देखता वैसे ही रानी निकटके दुःख (वैधव्य और कलंक) को नहीं देखती।

सुनत बात मृदु अंत—माहुर = विष।

मंथराकी बात सुनने में मीठी है, परन्तु उसका परिणाम भयानक है, ऐसा मालूम होता है मानों वह शहद में विष घोलकर देती हो। उसने कहा,—हे स्वामिनि, आपको याद है या नहीं, आपने जो कथा मुझसे कही थी ?

दुइ वरदान भूप—थाती = धरोहर।

राजाके पास* तुम्हारे दो वरदान धरोहर हैं, उन्हें आज माँगकर छाती ठंढी करो—पुत्रके लिए राज्य और रामचन्द्रको बनवास दे सौत के सारे आनन्द को (छीन) लो।

---

* एक बार इन्द्र दैत्योंसे हार गया। उसने अपनी सहायताके लिए राजा दशरथ-को बुलाया। राजा कैकेयीके साथ वहाँ गये। खूब युद्ध हुआ। इसी समय राजा दशरथ के रथके पहिये की कील निकल गयी। कैकेयीने अपनी अँगुली कील की जगह डाल दी जिससे रथ गिरने नहीं पाया। राजा को युद्ध में विजय प्राप्त हुई। उन्होंने जब कैकेयी के कौशलको देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा,—तुम्हारी सहायतासे मुझे विजय प्राप्त हुई है, तुम दो वर माँगो। उत्तरमें कैकेयीने कहा,—मेरे ये दो वर आपके पास धरोहर रहे, जब चाहूँगी तब माँग लूँगी।

भूपति रामसपथ जब—

राजा जब रामचन्द्रजी की सौगन्ध खालें, तब वरदान माँगना, जिससे वे फिर अपने वचन से न टल सकें। नहीं तो आज की रात बीतने पर काम बिगड़ जाएगा। मेरे वचनों को प्राणों से भी प्यारा समझो।

बड़ कुघात करि—पतिआहु = विश्वास करना।

पापिनी मन्थरा ने बड़ा बुरा घात लगाकर कहा कि कोपभवनमें जाओ और सावधानीसे सब काम बना लेना (देखो) सहसा राजा का विश्वास मत कर लेना।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय—

रानीने कुबड़ी को प्राणों के समान प्रिय समझा और बार-बार उसकी बड़ी बुद्धि की सराहना की कि तेरे समान संसार में मेरा हितकारी कोई नहीं है। मैं (शोकसागर में) बही जाती थी, उसकी तुम सहारा हुई हो।

जो विधि पुरव—चखपूतरि = आंखों की पुतली।

हे सखी, कल यदि विधाता मेरा मनोरथ पूरा करेंगे, तो तुझे आँखोंकी पुतली बनाऊँगी। इस तरह दासी का बहुत तरह से आदर करके कैकेयी कोपभवनमें गई।

दशरथ कैकेयी संवाद

बार बार कह—

राजा बारबार कहते हैं—हे सुमुखि, हे सुलोचनि, (सुन्दर आँखवाली) हे पिकबचनि (कोयलसी आवाज वाली) हे गज-गामिनि (हाथी की सी चाल वाली) अपने क्रोधका कारण तो मुझे सुनाओ?

अनहित तोर पिया—

हे प्रिये, तेरा अनहित (बुरा) किसने किया, किसके दो सिर हैं, किसको यमराज लेना चाहते हैं, अर्थात् कौन मरना चाहता

है। कह तो सही, किस दरिद्रको राजा बना दूँ अथवा किस राजा को देशसे निकाल दूँ ?

सकौं तोर अरि—वरोरु= सुंदर जाँघवाली। आनन=मुँह। अमर=देवता।

यदि तुम्हारा शत्रु देवता हो तो उसे भी मार सकता हूँ, फिर बिचारे कीड़ेके समान स्त्री-पुरुष क्या चीज हैं? हे सुन्दर जाँघ-वाली, तू मेरे स्वभाव को जानती है कि मेरा मन तेरे मुखरूपी चन्द्रमा का चकोर है।

प्रिया प्रान सुत सर्वस—

हे प्रिये, मेरे प्राण, पुत्र, सर्वस्व, कुटुम्बी और प्रजा जो कुछ है सब तेरे वश में हैं। हे रानी, यदि मैं इसमें कुछ कपट करके कहता हूँ, मुझे सौ बार रामचन्द्र को शपथ है।

विहँसि मांगु मनभावति—

जो मनमें भावे, उसीको हँसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर गहने पहनलो। हे प्यारी, समय कुसमय को मनमें समझ कर देखो, और बुरे वेषको जल्दी त्याग दो।

यह सुनि मन गुनि—

मन्दबुद्धि कैकेयी यह सुनकर तथा राजाकी शपथको मनमें बड़ी महत्व को विचारकर हँसकर उठी और शरीर को आभूषणों से इस तरह सजाने लगी मानों भीलनी हिरनी को देखकर फन्दा डालती हो।

पुनि कह राउ सुहृद—

फिर राजाने मनमें प्रिय (प्रसन्न हुई) जान, स्नेहसे पुलकित होकर कोमल और मीठी वाणी में कहा—हे भामिनि! तेरी मनभायी बात हो रही है, नगरमें घर-घर आनन्द-बधाई हो रही हैं।

रामहिं देउँ कालि—बरतोरु=बालतोड़ फोड़ा जिसे छूते ही बड़ी दर्द होती है।

हे सुन्दर नेत्रोंवाली, कल रामचन्द्रको युवराजपद दूँगा, इसलिए

तुम भी आनन्दके साज सजाओ। राजाकी बात सुनकर उसका कठोर हृदय दहल उठा, मानों कोई पका हुआ बाल तोड़ फोड़ा छू गया हो।

ऐसेउ पीर बिहँसि—गोई=छिपाया।

ऐसी भयङ्कर पीड़ाको भी उसने हँसकर इस तरह छिपा लिया, जैसे चोरकी स्त्री सबके सामने नहीं रोती। राजाने इस छल-चातुरीको न समझा। (क्योंकि) उसे करोड़ों कुटिलोंकी शिरोमणि गुरु मन्थराने पढ़ाया था।

जद्यपि नीतिनिपुन—

यद्यपि राजा दशरथ नीतिमें निपुण हैं, तथापि स्त्री- चरित्र रूपी समुद्र बड़ा अथाह है। फिर कैकेयी कपट-सनेह बढ़ाकर आँख और मुँह राजा की ओर मोड़कर हँस कर बोली,—

माँगु माँगु तुम—अवगाह=अगाध, अथाह बहुत गहरा।

हे प्रिय, आप माँग-माँग तो कहते हैं, पर कभी कुछ न देते हैं न लेते हैं। पहले दो वरदान देने के लिए आपने कहा था, पर मुझे तो उन्हींके मिलनेमें सन्देह है।

जानेउ मरम राउ—बिसरना=भूलना।

राजाने हँसकर कहा,—मैं तुम्हारी अप्रसन्नताका मर्म समझ गया। तुमको रुष्ठ होना परम प्रिय है। तुमने धरोहर रखकर कभी माँगा नहीं, मेरा तो भूलनेका स्वभाव है, अतः भूल गया।

झूठेहु हमहिं दोष जनि—कोहाब=क्रुद्ध होना।

इसलिए मुझे झूठा दोष न दो, (वर) दो की जगह चार क्यों नहीं माँग लेती हो। रघुवंशियोंकी सदासे रीति चली आई है, कि प्राण भले ही चले जायँ, पर बात नहीं जाती।

नहिं असत्य सम—गुञ्जा=रत्तियाँ। पातकपुंजा=पाप का समूह

(एक) झूठके बराबर अनेक पापों का समूह नहीं हैं, भला कहीं करोड़ों रत्तियाँ पहाड़के बराबर हो सकती हैं? सब अच्छे कामोंका

आधार सत्य ही है यह बात वेद-पुराणोंमें विदित है और मुनियोंने भी यही कहा है।

तेहि पर रामसपथ—कुबिहंग = बुरा पक्षी। कुलह = शिकारी पक्षियों की आँखें ढकने की टोपी। सुकृत = पुण्य। अवधि=सीमा।

इसपर मैं रामचन्द्र की सौगन्ध खा चुका हूँ, जो रामचन्द्र मेरे पुण्य और स्नेहकी सीमा हैं। इस तरह बातको और भी पक्की करके दुष्ट बुद्धि वाली कैकेयी हँसकर ऐसी बोली, मानों दुर्बुद्धिरूपी दुष्ट पक्षी की आँख ढकने की टोपी खोल दी हो। (शिकारी पक्षियों को शिकार पर उड़ाने के समय उनकी टोपी खोल दी जाती है।)

भूप मनोरथ सुभग—

राजाका मनोरथ ही सुन्दर वन है और उनका सुख ही मानों पक्षियों का झुंड है, उस पर कैकयीरूपी भीलनी अपने वचनरूपी भयङ्कर बाज को छोड़ा चाहती है।

सुनहु प्राणप्रिय भावत जीका—

हे प्राणप्यारे, सुनिये, मेरे मनको भाता हुआ प्रथम वर तो यह दीजिये कि राजतिलक भरतको हो। हे नाथ, दूसरा वर हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिये।

तापसवेष विशेष—कोकू = चकवा। शशिकर = चंद्रमाकी किरणें।

तपस्वी का वेश धरकर तथा सांसारिक विषयों से उदासीन रहकर रामचन्द्र चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। स्त्री के कोमल वचनों को सुनकर राजा का हृदय ऐसा शोकान्वित हुआ, जैसे चन्द्रमा की किरणों के छू जाने से चकवा पक्षी विकल हो जाता है। (रात में चकवा चकई एक जगह नहीं रह सकते इसलिए वह चन्द्रमा की किरणों को वियोग देने वाली समझकर चिंता में पड़ जाता है।)

गयउ सहमि नहिं कछु कहि—सचान = बटेर। लावा = बाज। बिवरण = जिसका रंग उड़गया हो। दामिनि = बिजली।

(कैकेयीकी बात सुनकर) राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते नहीं बना। ऐसा मालूम होता था, मानों बटेरों के झुंडपर बाज झपटा हो। राजाका चेहरा बिलकुल फीका पड़ गया, मानों ताड़ के पेड़ पर बिजली गिर पड़ी हो।

माथे हाथ मूंदि दोउ--करिनी=हथिनी। नेई=नीव।

राजा माथे पर हाथ रखकर दोनों आँखों को बंदकर इस तरह सोच करने लगे मानों सोच ही शरीर धारण करके सोच रहा हो। हाय! मेरा मनोरथरूपी कल्पवृक्ष फूला था, उसके फलते ही मानों (कैकेयीरूपी) हथिनी ने उसे जड़से उखाड़ डाला। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ दिया और उसके लिए अचल विपत्ति की नींव रख दी।

कवने अवसर—

क्या समय था और क्या हो गया। स्त्री का विश्वास चला गया। (कैकेयी ने मेरा ऐसा नाश कर दिया!) जैसे योगी को योग-सिद्धि होने पर फल मिलने के समय अज्ञानता उसे नष्ट करदे।

एहि विधि राउ मनहिं—माँखा=क्रुद्ध हुई। बेसहाना=मोल लेना, खरीदना।

इस प्रकार से राजा मन ही मन खीझ रहे थे यह देख दुष्ट बुद्धि कैकेयी हृदय में बुरी तरह क्रुद्ध हो बोली,—क्या भरत आपका पुत्र नहीं हैं? अथवा मुझे खरीद कर लाये हो?

जो सुनि सरअस लागु—

जो मेरी बात सुनते ही तुम्हें वाण सी लगी,(तो पहिले से) वचन सोच समझ कर क्यों नहीं बोले? या तो उत्तर दो या इन्कार कर दो। तुम रघुवंशियों में सत्य प्रतिज्ञा वाले हो।

देन कहेहु अब—

तुम्हीं ने वर देने को कहा था, चाहे अब मत दो और सत्य

को त्याग कर संसार में अपकीर्त्ति लो। तुमने सत्य की सराहना करके वर देने को कहा था, तुमने सोचा होगा कि चबेना (तुच्छ सी वस्तु) माँग लेगी!

सिबि दधीचि बलि जो कछु—

राजा शिवि[1], दधीचि[2] और बलि[3] ने जो कुछ कहा, उन

---

१ शिवि बड़े धर्मात्मा राजा थे। एक बार वे यज्ञशाला में बैठे यज्ञ कर रहे थे। उनकी परीक्षा लेने के लिये इन्द्र बाज का और अग्नि कबूतर का रूप धर कर गये। कृत्रिम बाज कबूतर का पीछा करता हुआ यज्ञशाला में पहुँचा। वह कबूतर राजा की गोद में जा छिपा। बाजने कहा—राजन् मेरा अहार मुझे दे दो। मैं मारे भूख के मरा जाता हूँ, मेरे मरने पर मेरे कुटुम्बी सब मर जायँगे तो तुम्हें उनकी हत्या लगेगी। राजा ने उत्तर दिया शरणागत होने से मैं इसे त्याग नहीं सकता। हाँ, इसके बदले और जो कुछ चाहो ले सकते हो। अन्त में उस कबूतर के बराबर राजा के शरीर का मांस देना निश्चित हुआ, तराजू में एक ओर कबूतर को रखकर दूसरी ओर राजा ने अपना मांस काट काट कर रखना शुरू किया पर वह कबूतर के बराबर नहीं हुआ! अन्त में राजा ने अपना मस्तक काटने की तैयारी की। तब इन्द्र और अग्नि दोनों ने प्रसन्न और प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया।

२. एक बार इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध हुआ इन्द्र किसी प्रकार भी वृत्रासुर को हरा न सका क्योंकि वृत्रासुर किसी शस्त्र से मरने वाला नहीं था। तब ब्रह्मा के कहने से इन्द्र ने दधीचि के पास जाकर उनकी हड्डी माँगी। उन्होंने प्रसन्नता से अपना शरीर गौ से चटवाकर हड्डी दे दी और प्राण त्याग दिया।

३. राजा बलि बड़े दानी थे। वे एक बार महायज्ञ कर रहे थे। इन्द्र की भलाई के लिए विष्णु भगवान् वामन रूप होकर गये और बलि से तीन पग पृथ्वी माँगी। गुरु के मना करने पर भी बलि ने ध्यान न

लोगों ने शरीर तथा धन त्याग दिया पर अपने वचन को निवाहा। कैकेयी अत्यन्त कड़वी बातें कह रही है, मानों जले पर नमक छिड़क रही हो।

धरमधुरंधर—कुठाम=बुरी जगह, मर्मस्थान।

धर्म-धुरन्धर राजा ने धैर्य धारण कर नेत्र खोले और सिर धुनकर लंबी साँस ली। मन में कहा,—हाय! इसने बुरी जगह चोट मारी।

आगे देखि जरति—उघारी=तंगी

राजा ने सामने भारी क्रोध से जलती हुई कैकेयी को देखा, वह ऐसी मालूम होती थी, मानों क्रोधरूपी नंगी तलवार हो। जिसकी मूठ कुबुद्धि है, निष्ठुरता धार है और कुबड़ी मन्थरा ने जिसे सान पर चढ़ाया है।

लखी महीप कराल—

राजा ने उस भीषण और कठोर तलवार रूपी कैकेयी को देखकर सोचा कि क्या सचमुच ही यह मेरे जीवन को हर लेगी? राजा कड़ी छाती करके, उसको रुचने वाली विनीत वाणी बोले।

प्रिया वचन कस कहसि—हाँती=दूर करके, छोड़ के।

हे प्रिये, हे भीरु (व्यर्थ शंका करने वाली) तू मेरे विश्वास और प्रीति को दूर करके ऐसी बुरी तरह की बातें क्यों कहती है? मैं शिव जी को साक्षी कर सत्य कहता हूँ कि भरत और राम दोनों मेरी आँखें हैं।

दिया और प्रसन्नता से सङ्कल्प कर लिया। जब त्रिविक्रम रूप से भगवान् ने दो ही पग में तीनों लोक नाप लिये तब तीसरे पग के लिए राजा ने पीठ दे कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

अवसि दूत मैं पठउब—

मैं प्रातःकाल ही अवश्य दूत भेजूँगा और दोनों भाई सुनते ही तुरन्त चले आयेंगे। सुदिन अर्थात् शुभ मुहूर्त्त देख तथा सब साज सजवाकर और डङ्का बजाकर भरत को राज-पद दूँगा।

लोभ न रामहिं राज—

राम को राज्य का लोभ नहीं है, उसकी भरत पर बड़ी प्रीति है। पर मैं बड़े-छोटे-का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था।

राम सपथ सत कहउँ—छूछे = निष्फल, व्यर्थ।

मैं राम की शपथ लेकर स्वभावसे सच कहता हूँ कि उस की माताने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। हाँ, मैंने तुम से बिना पूछे यह सब कुछ किया, इसीलिये मेरे मनोरथ निष्फल हो गये।

रिस परिहरु अब मंगल—

अब क्रोधको छोड़कर मङ्गल साजसे सज्जित होओ। कुछ दिन बीतने पर भरत युवराज होंगे। मुझे एक ही बातका दुःख लगता है, कि दूसरा वर तुमने असमञ्जसमें डालनेवाला माँगा है।

अजहूँ हृदय दहत—

अब भी हृदय उसकी आँच से जल रहा है। क्या यह क्रोध है, हँसी है या वास्तवमें सत्य है? क्रोध छोड़कर रामचन्द्र का अपराध कहो, सभी लोग कहते हैं कि रामचन्द्र सज्जन हैं।

तुहूं सराहसि करसि—

तू भी रामचन्द्र को सराहती और उससे स्नेह करती है, पर अब मुझे तुम्हारी यह बात सुनकर सन्देह हो गया है जिसका स्वभाव शत्रुके भी अनुकूल हो भला वह माता के विरुद्ध काम कैसे कर सकता है?

प्रिया हास—

हे प्रिये, हँसी और गुस्से को त्यागकर और सोच विचार कर समझदारी से माँगो, जिससे अब मैं आँख भर कर भरत का राज्याभिषेक देखूँ।

जिअइ मीन बरु बारि—

मछली चाहे बिना जलके जीती रहे और साँप बिना मणि का दुखी दीन होकर चाहे जीता रह जाय पर मैं कपट-रहित मनसे अपना सहज स्वभाव कहता हूँ, कि मैं बिना रामचन्द्रके जीवित नहीं रह सकता।

समुझि देखु जिय—

हे प्यारी! तू स्वयं चतुर है, मनमें विचारकर देख, मेरा जीवन रामचन्द्रके दर्शन के अधीन है। अर्थात् रामचन्द्र के बिना पल भर भी न जी सकूँगा। राजाकी मीठी वाणी सुनकर, कुमति (कैकेयी) अत्यन्त जलती है, ऐसा मालूम होता है, मानों आग में घी की आहुति पड़ रही है।

कहइ करहु किन कोटि—

वह कहती है, करोड़ों उपाय क्यों न करो, यहाँ आपकी माया, नहीं चलेगी। मेरा माँगा [वर] दो या 'नहीं' कह कर अपयश लो, मुझे अधिक प्रपञ्च अच्छा नहीं लगता।

राम साधु तुम्ह साधु—

रामचन्द्र साधु हैं, तुम भी चतुर और साधु हो,और रामचन्द्र की माता भी सीधीसादी हैं, मैं सबको भली प्रकार पहचानती हूँ। कौशल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है, मैं भी उसे वैसा ही फल चखाऊँगी, उसे बहुत दिन याद रहेगा।

होत प्रात मुनि वेष धरि—

सवेरा होते ही मुनि-वेष धारण करके यदि रामचन्द्र वनको न जायँगे, तो हे राजन्, मनमें समझ लीजिये कि मेरा मरण और आपका अपयश निश्चित है।

अस कहि कुटिल—तरंगिनि = नदी।

इस प्रकारसे कह कर कुटिल [कैकेयी] उठ खड़ी हुई, मानों क्रोधरूपी नदी में बाढ़ आई हो। वह नदी पापरूपी पहाड़ से पैदा हुई और ऐसे क्रोधरूपी जलसे भरी है कि देखी नहीं जाती।

दोउ बर कूल कठिन हठ—

दोनों वरदान इस नदी के दोनों किनारे हैं कठोर हठ ही इसकी धारा है कुबड़ीके उत्तेजक वचन भँवर हैं। राजा-रूपी वृक्ष को वह जड़से उखाड़ती हुई, विपत्तिरूपी समुद्रकी ओर बह चली।

लखी नरेस बात सब—

राजाने देखा कि बात सब सच्ची है, स्त्रीके बहाने मेरे शिरपर मौत नाच रही है। राजाने चरण पकड़कर और विनती करके उसे बैठाया और कहा—सूर्यकुल रूपी वृक्षके लिए कुठार न बन।

मांगु माथ अबहीं—

तू मेरा मस्तक माँगले, तो अभी मैं तुझे दे दूँ, पर रामचन्द्रके वियोगसे मुझे मत मार। जिस तरहसे भी हो,रामचन्द्रको अयोध्या ही में रख, नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी, अर्थात् पछतावा रहेगा।

देखी व्याधि असाधि नृप—

राजाने जब देखा कि केकैयी का हठरूपी रोग असाध्य है। तब वे अत्यन्त दीन वाणीसे 'हा राम! हा राम!! हा रघुनाथ!!!' कहते हुए सिर पीटकर धरती पर गिर पड़े।

व्याकुल राउ सिथिल—पाठीन = एक तरह की मछली।

राजा व्याकुल हो गये, उनके सब अंग ढील पड़ गये, ऐसा मालूम होता था, मानों हथिनीने कल्पवृक्षको उखाड़ कर फेंक दिया हो। उनका गला सूख गया, मुँहसे बात नहीं निकलती, ऐसे जान पड़ता है मानों बिना पानीके मछली तड़फती हो।

पुनि कह कटु कठोर—माहुर = विष।

कैकेयी फिर कडुवे और कठोर वचन बोलने लगी, मानों घावमें विष लगाता हो। [वह कहने लगी] यदि अन्त में ऐसा ही करना था, तो 'माँग-माँग!' किस बिरतेपर कहते थे?

दुइ कि होइ इक समय—

हे राजन्, खिलखिलाकर हँसना और गालों को फुलाना क्या दोनों बातें एक साथ हो सकती हैं? इसी प्रकार दानी कहला

कर कृपणता करते हो शूरवीरता और कुशल-क्षेम तथा ठकुराई क्या एक साथ हो सकती है ?

छाँडहु वचन कि धीरज—

या तो वचन (प्रतिज्ञा) छोड़ दो या धीरज धरो, स्त्रियों की तरह करुणा मत करो। शरीर, स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति और धरती सत्यवादी पुरुषों के लिए तिनके के समान कही गई हैं।

मर्मबचन सुनि—

इस तरह की मार्मिक (चुभने वाली) बातें सुनकर राजा कहते हैं,—चाहे जो कह, इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा काल पिशाच के समान लगा हुआ तुझसे यह कहला रहा है।

चहत न भरत--

भरत तो राज्य-पद भूलकर भी नहीं चाहते, परन्तु होनहार के वश तेरे हृदयमें यह कुमति बसी है। वह सब मेरे पाप का फल है, जिससे विधाता कुसमय में उलटा हुआ है।

सुबस बसिहि फिरि--

फिर भी अयोध्या अच्छी तरहसे ही बसेगी, सब गुणोंके धाम रामचन्द्र राजा होंगे। सब बन्धुगण उनकी सेवा करेंगे और तीन लोकमें रामचन्द्रकी बड़ाई होगी।

तोर कलंक मोर--

पर तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरनेपर भी न मिटेगा और न कभी संसार से जायगा। अब तुझे जो कुछ अच्छा लगे वही कर और मेरी आँखों के आगे से हट कर—ओट में जाकर—मुँह छिपा कर बैठ।

जब लगि जिऊँ--नहारु=सिंह या बाज।

हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ, तब तक तू और कुछ मत कह। अरी अभागिनी, फिर पीछे ऐसे पछताएगी जैसे कोई सिंह के लिए गाय को मारे अथवा बाज के लिए गाय को मारे (बाज गो मांस नहीं खाता आशय यह है

कि जो तू भरत को राज्य देने के लिए राम को बन भेजती है सो भरत को राज्य अच्छा नहीं लगता।

परेउ राउ कहि कोटि विधि—निदान = अन्त।

राजा ने करोड़ों तरह से समझाकर कहा कि क्यों तू वंश का अन्त करती है, (और उसे मानते न देख ऐसा कह) वे धरती पर गिर पड़े। कपट-सयानी कैकेयी कुछ कहती नहीं है, ऐसा मालूम होता है मानों मसान जगाती है कोई अनुष्ठान करनी है (जिसम बोलने स सिद्धि नहीं होगी)।

राम राम रटि विकल—

राम-राम रटते हुए राजा व्याकुल हो गये। वे ऐसे मालूम होते हैं, मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो। वे हृदय में मनाने लगे कि सवेरा न हो और यह बात कोई जाकर रामचन्द्रजी से न कह दे।

उदय करहु जनि—

हे रघुकुल के सूर्य गुरु भगवान, आप उदय न हों, क्योंकि अयोध्या को देखकर आपके हृदय में शूल होगा। राजा की प्रीति और कैकयी की कठोरता इन दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक बना दिया, अर्थात् राजा के समान कोई प्रीतिवान नहीं और कैकेयी के बराबर कोई कठोर नहीं।

बिलपत नृपहिं भयउ—भिनुसारा=सवेरा

राजा को विलाप करते हुए सवेरा हो गया, द्वारपर वीणा, बाँसुरी और शङ्ख आदि बाजों के शब्द होने लगे। भाट यश वर्णन करने लगे और गायक गाने लगे, सुनकर राजा को वे ऐसे मालूम होते हैं मानों वाण लगते हों।

मंगल सकल सुहाइ—सहगामिनी=वह स्त्री जो पति के शव के साथ सती हो जाय।

राजा को वे सम्पूर्ण मङ्गल वैसे ही नहीं सुहाते, जैसे मृत पति के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण बुरे लगते हैं। उस रात को, रामचन्द्र जी के दर्शन की लालसा और उत्साह से किसी को भी नींद नहीं आई।

राम के विनीत वचन

मन मुसकाई भानु—मंजुल=सुंदर।

सूर्यवंश के सूर्य, स्वभाव से आनन्द के घर रामचन्द्र जी मन में मुस्करा कर सब दोषों से रहित ऐसे कोमल और मीठे वचन बोले, मानों वे वाणी (सरस्वती) के आभूषण (गहने) हैं।

सुन जननी सोइ सुत—

हे माता, सुनो, वही पुत्र भाग्यवान् है, जो माता-पिता के वचनों का अनुरागी हो, अर्थात् उनकी आज्ञा को माने। हे जननी, माता-पिता को सन्तुष्ट करने वाला पुत्र सम्पूर्ण संसार में दुर्लभ है।

मुनिगन मिलन—आयसु=आज्ञा।

हे माता, वन में मेरा भला ही है, क्योंकि वहाँ मुनिगणों से विशेष कर मिलना होगा। फिर उसमें पिताजी की आज्ञा और साथ ही माताजी तुम्हारी भी सम्मति है।

भरत प्राणप्रिय पावहिं—

प्राणप्यारे भरत राज्य पायेंगे, आज विधाता मुझपर सब तरह से अनुकूल (प्रसन्न) हैं। यदि ऐसे काम के लिये भी वनमें मैं न जाऊँ, तो मुझे मूर्खों के समाज में प्रथम (महामूर्ख) गिनना चाहिये।

सेवहिं अरंडु कलपतरु—

हे माता, आप अपने मनमें विचार कर देख लीजिये जो

कल्पवृक्ष को छोड़कर एरंड की सेवा करते हैं और अमृत त्यागकर विष माँगते हैं, वे भी ऐसा समय देखकर नहीं चूकते।

अंत्र एक दुख मोहि—नरनायक=राजा।

हे माता, मुझे एक बात का बड़ा दुःख है कि इतनी छोटी बात के लिए महाराज को इतना व्याकुल देख रहा हूँ, बात तो छोटी सी है और पिताजी को बड़ा दुःख हो रहा है, इसी से हे माता मुझे विश्वास नहीं होता।

राउ धीरु गुण उदधि—उदधि=समुद्र।

राजा तो धैर्यवान और गुणों के अगाध समुद्र हैं, (शायद) मुझसे कोई बड़ा अपराध होगया है, जिससे राजा मुझसे कुछ कहते नहीं, हे माता आपको मेरी शपथ है, सच सच कहिये।

देस काल अवसर—

रामचन्द्र देश, काल और अवसर के अनुसार विचारकर नम्रतापूर्वक विनीत वचन बोले—हे पिता जी, मैं कुछ ढिठाई कर कहता हूँ यदि वह अनुचित हो तो लड़कपन समझकर क्षमा कीजियेगा।

अति लघुबात लागि—

आपने इतनी जरासी बात के लिए इतना दुःख पाया! ये बातें किसी ने पहले ही कहकर मुझे न बता दीं। आपकी व्याकुलता देखकर मैंने माताजी से पूछा, उनसे (सब) हाल सुनकर मेरा शरीर शीतल हुआ।

मंगल समय सनेह—

हे तात, इस मङ्गल के समय स्नेह-वश से बढ़े हुए सोच (शोक,व्याकुलता)को छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिये, इस प्रकार से कहकर रामचन्द्र जी शरीर से पुलकित हुए—अर्थात उनके शरीर का बोझ हलका हो गया।

धन्य जनम जगतीतल—

पृथ्वी-तल पर उसी का जन्म धन्य है, जिसके चरित्र को सुनकर पिता को आनन्द हो। चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उसकी मुट्ठी में रहते हैं, जिसको माता-पिता प्राण के समान प्यारे होते हैं।

आयसु पालि—

आपकी आज्ञा का पालनकर और जन्म का फल पाकर तुरन्त ही लौट आऊँगा, (इसलिए) आज्ञा दीजिये। मैं माता से विदा माँग आऊँ, फिर आप के चरण छूकर वनको जाऊँगा। इस प्रकार से कहकर, रामचन्द्र जी वहाँ से चले गये। शोक-विह्वल (शोक में दुःखी) राजा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

राम-सीता संवाद

कहि प्रियवचन—परितोप=सन्तोष, विपिन=जंगल।

विचारपूर्ण प्रिय वचन कहकर रामचन्द्र जी ने माता को सन्तुष्ट किया फिर वन के गुण-दोष कहकर जानकी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत—

माता के पास होने के कारण जानकी जी को कुछ भी कहने में सकुचाते हैं,परन्तु मनमें समय (आपत्काल) समझकर बोले—हे राजकुमारी, मेरी शिक्षा सुनो, अपने मनमें और कुछ और बात न विचारो।

आपन मोर नीक जो—

यदि अपनी और मेरी भलाई चाहती हो, तो मेरी बात मानकर घर ही रहो। हे भामिनि! इसमें मेरी आज्ञा का पालन, सास की सेवा और सब तरह से घर की भलाई है।

सेवा करो

एहि तै अधिक धरम—

आदर पूर्वक सास-ससुर की सेवा करो इससे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जब-जब माताजी मुझे स्मरण करेंगी और भोली बुद्धिवाली ये प्रेम के कारण बेचैन हो जायँगी—

तब तब तुम कहि कथा—

हे सुन्दरी, तब-तब तुम पुरानी कथाओं को कहकर मीठी वाणी से इन्हें समझाना। हे सुमुखी, मुझे सैकड़ों सौगन्द हैं, यह मैं सीधे स्वभाव से ही कहता हूं, कि तुमको माता की भलाई के लिए ही घर में छोड़ता हूं।

गुरु श्रुति संमत धरमफल—

तुम यहाँ गुरु और वेद मे कहे हुए धर्म के फल को बिना क्लेश के ही पा जाओगी। इस विषय में तुम हठ मत करो क्योंकि हठ करने से गालव मुनि[1] और राजा नहुष[2] आदि सबने कष्ट ही सहे हैं।

---

१. गालव मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे। विद्याध्ययन समाप्त करके उन्होंने गुरु-दीक्षा देने का हठ किया। गुरु ने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इनको इकट्ठा करने में गालव मुनि को बहुत कष्ट सहने पड़े।

२. राजा नहुष बड़े ज्ञानी, सन्तोषी और धर्मात्मा थे। एक बार इन्द्र ब्रह्महत्या के कारण छिप गये और इन्द्रासन खाली हो गया। उस समय राजा नहुष इन्द्र हुए। तब उन्होंने इन्द्राणी की शय्यापर आने का दुराग्रह किया। इन्द्राणी ने बृहस्पति की सम्मति से कहला भेजा कि यदि तुम पालकी पर बैठकर और उस पालकी को ऋषियों से उठवा कर आओ तो मैं पति-भाव से तुम्हारा स्वागत करूंगी। राजा ने सप्तर्षियों से प्रार्थना की, वे परोपकार मानकर पालकी कन्धे पर लेकर पहुँचाने चले। कामातुर राजाने रास्ते में मुनियों को जल्दी चलने के लिए संस्कृत में 'सर्प-सर्प' अर्थात् 'जल्दी चलो, जल्दी चलो' कहा। मुनियों ने कुपित होकर

मैं पुनि करि प्रमान—

हे सयानी, हे सुमुखि, मैं पिता की आज्ञा को पूरा करके फिर जल्दी ही लौट आऊँगा। दिन जाते देर नहीं लगती, हे सुन्दरी, हमारी शिक्षा को सुनो।

जौ हठ करहु प्रेमबस—घाम=धूप। कानन=जंगल।

हे प्यारी, यदि प्रेम के वश में होकर हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठोर और भयङ्कर है, वहाँ तेज धूप, बड़ी सरदी, अत्यंत (वर्षा) और तेज वायु चलती है।

कुस कंटक— कंटक = काँटे। पयादेहि = पैदलही पदत्राना=जूता। मंजु=सुंदर। भूमिधर=पहाड़।

रास्ते में कुशा, काँटे और तरह-तरह के कङ्कड़ हैं, जिनमें बिना जूते के पैदल चलना पड़ेगा। तुम्हारे चरण कमल सुन्दर और कोमल हैं, किन्तु रास्ते में दुर्गम और बड़े-बड़े पहाड़ हैं।

कन्दर खोह—निहारना = देखना। वृक = भेड़िया। केहरि = शेर। नाग = हाथी।

कन्दरा, खोह, नदी-नाले ऐसे दुर्गम और गहरे हैं जिनकी ओर देखा तक नहीं जाता। भालू, बाघ, भेड़िये, शेर और हाथी ऐसा शब्द करते हैं—ऐसा चिंघाड़ते हैं—कि उनकी आवाज सुन धीरज भाग जाता है।

भूमिसयन—बसन=कपड़े। असन=खाना।

भूमि पर सोना, पेड़ों की छाल के कपड़े पहनना, और कन्द

पालकी फेंक दी और शाप दिया कि जा तू सर्प होजा। राजा नहुष ने सर्प होकर बहुत समय तक दुःख उठाया और द्वापर-युग में धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्नोत्तर होनेपर, उनका शाप से उद्धार हुआ।

मूल-फलों का भोजन होगा। वे भी क्या सदा (प्रतिदिन) मिलेंगे ? नहीं, समय अनुकूल होगा तो मिलेंगे।

नर अहार रजनीचर—

वहाँ राक्षस मनुष्यों का आहार (भोजन) करते हैं, और कपट से करोड़ों वेष बना लेते हैं। पर्वतीय (पहाड़ी) जल बहुत लगता है, इस प्रकार वन की विपत्तियाँ कही नहीं जा सकतीं।

ब्याल कराल विहग—कराल = डरावने। विहंग = पक्षी। **गहन** = जंगल। **भीरु** = डर।

वन में डरावने साँप तथा भयङ्कर पक्षी रहते हैं, स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले झुण्ड के झुण्ड राक्षस घूमा करते हैं। हे मृगनयनी, वन की याद आते ही बड़े-बड़े धीर भी डर जाते हैं, फिर तुम तो डरपोक स्वभाव की हो।

हंसगवनि तुम नहिं—मराली = हंसिनी। लवणपयोधि = खारा समुद्र।

हे हंस के समान चलनेवाली ! तुम वन के योग्य नहीं हो, तुम्हारा वन में जाना सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे। मानसरोवर के जलरूपी अमृत से पली हुई—हंसिनी, क्या खारे समुद्र में जीवित रह सकती है ?

नव रसाल बन—रसाल = आम।

नये आमों के बगीचे में विहार करनेवाली कोयल, क्या करील के जंगल में शोभा पा सकती है ? हे चन्द्रवदनि, वन में बड़ा दुःख है, ऐसा हृदय में विचार कर तुम घर पर ही रहो।

सहज सुहृद गुरु—

स्वभाव ही से भला चाहनेवाले अपने गुरु तथा स्वामी की शिक्षा को माथे चढ़ा कर जो नहीं मानता, वह पीछे मन में खूब पछताता है और उसके हित की हानि भी अवश्य होती है।

सुनि मृदुवचन मनोहर—ललित = सुन्दर।

प्रियतम के मनोहर, कोमल वचन सुनकर, सीता जी के सुन्दर नेत्रों में जल भर आया। यह शीतल (मनको शान्त करने वाली) शिक्षा उनके लिए वैसी ही जलानेवाली हुई, जैसे चकवी को शरद् काल की चाँदनी रात होती है।

उतरु न आव—अवनिकुमारी=पृथ्वी की कन्या, सीता। विलोचन=आँख।

जानकी जी व्याकुल हो गईं, उनसे कुछ उत्तर नहीं देते बनता। उन्हें यह सोचकर बड़ा दुःख हुआ कि पवित्र प्रेमी स्वामी, मुझे त्यागकर जाना चाहते हैं! आँखों के जल को जबर-दस्ती रोककर पृथ्वी की कन्या सीताजी धीरज धारण करके—

लागि सासुपद—

सास के चरणों में लगकर और हाथ जोड़कर कहने लगीं,—हे देवि, मेरी इस बड़ी ढिठाई को क्षमा कीजिये। प्राणपति ने मुझे वही शिक्षा दी है, जिसमें मेरा परम कल्याण हो। परन्तु मैंने मन में सोच कर देखा कि पतिकी जुदाई के समान संसार में कोई दुःख नहीं है।

प्राननाथ करुनायतन—विधु=चंद्रमा।

हे प्राणनाथ! हे दयानिधान! हे सुन्दर! हे सुख देनेवाले! हे सुजान! हे रघुकुलरूपी कुमुद वन के चन्द्रमा, आपके बिना देवलोक भी नरकके समान है।

मातु पिता—

माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्यारे कुटुम्बी, मित्र-मण्डली, सास-ससुर, गुरु, नातेदार, सहायक और सुन्दर-सुखदायक सुशील पुत्र—

जहँ लगी नाथ नेह—तरनि=सूर्य।

जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, हे नाथ बिना पति के वे स्त्रीको सूर्य से भी बढ़कर तपानेवाले हैं। शरीर, सम्पत्ति, घर, धरती, नगर और राज्य, प्रियतमके बिना सब शोकके समाज (समूह) हैं।

भोग रोग सम—

पति के बिना भोग-विलास रोग के समान है और आभूषण बोझ हैं और संसार यमलोक की पीड़ा के समान है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना संसार में कहीं भी, कुछ भी मेरे लिए सुख देने वाला नहीं है।

जिय बिनु देह—बिधु = चंद्रमा।

जैसे जीव के बिना शरीर और जल के बिना नदी शोभा नहीं पाती, हे नाथ, वैसे ही पुरुष के बिना स्त्री है। हे स्वामी, आपके साथ में रहकर, शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान आपके मुख को देखकर, मुझे सब सुख मिलेंगे।

खग मृग परिजन—परिजन=कुटुम्बी। दुकूल=वस्त्र।

हे स्वामी! आपके साथ में रहनेपर—पक्षी और मृग मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर होगा और वृक्षों की छाल सुन्दर वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की झोपड़ी) स्वर्ग के समान सुख देने वाली होगी।

वनदेवी वनदेव—किसलय = पत्ते। साथरी = बिछौना। तुराई = तुलाई।

वनदेवी और वन के देवता, सास-ससुर के समान मेरी देख-रेख करेंगे। स्वामी के साथ में कुश और नर्म पत्तों का बिछौना कामदेव की तुलाई (शय्या) के समान होगा।

कंद मूल फल अमिय—सौध = महल।

कन्द, मूल और फलों का भोजन अमृत के समान और पर्वत अयोध्या के सौ राजमहलों के समान होंगे। स्वामी के कमल के समान चरणों को क्षण-क्षण में देखकर ऐसी प्रसन्न रहूँगी, जैसे दिन में कोकी (चकवी) रहती है। चकवा-चकवी दिन में एक साथ रहने के कारण प्रसन्न रहते हैं और रात को अलग अलग रहने के कारण दुखी।

बन दुख नाथ कहे—

हे नाथ, आपने कहा है कि वन में बहुत से दुःख, भय, क्लेश

संताप होंगे; परन्तु हे कृपानिधान, वे सब मिलकर स्वामी के वियोग के एक लवलेश की भी बराबरी नहीं कर सकते—अर्थात् वियोग का दुःख उन सब दुःखों से भयंकर है।

अस जिय जानि—

हे चतुर-शिरोमणि, ऐसा मन में समझकर मुझे साथ ले चलिये, यहाँ मत छोड़िये। हे प्रभो, बहुत क्या विनती करूँ? आप अन्तर्यामी (सब के हृदय के भीतरी भावों को जानने वाले) तथा करुणामय हैं।

राखिय अवध जो—

हे दीनबन्धो, हे सुन्दर, हे सुख देनेवाले, हे शील और प्रेम के निधान, यदि आप यह जानते हों कि अवधि (१४ वर्ष) तक मेरे प्राण बने रहेंगे तो मुझे अयोध्या में छोड़ जाँय। भाव यह है कि आप के बिना मेरे प्राण न रहेंगे।

मोहिं मग चलत न—हारि=थकावट। सरोज=कमल।

आपके चरण-कमलों को क्षण-क्षण देखने से मुझे राह चलने में थकावट न होगी। हे स्वामी, मैं सब तरह से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग-गमन से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करूँगी।

पाय पखारि बैठि—बाउ=हवा। श्रमकन=पसीने की बूँदें।

वृक्ष की छाया में बैठकर पाँव धोकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी। पसीने की बूँदों सहित प्राणपति के श्याम शरीर को देखकर मेरे लिए दुःख करने का अवसर कहाँ रहेगा?

सम महि तृन तरु—डासी=बिछाकर। पलोटहि=दबाकर। बयार=हवा। जोही=देखकर।

समतल भूमि पर घास और वृक्षों के पत्ते बिछाकर, यह दासी सारी रात पाँव दाबेगी। बारबार आपकी कोमल मूर्त्ति देखकर मुझे गरम हवा (लू) न लगेगी।

को प्रभुसंग—

स्वामी के साथ रहते हुए मेरी ओर देखनेवाला कौन है? जैसे

सिंह की स्त्री को शशक और सियार खरगोश नहीं देख सकते, अर्थात् आपके रहते मेरी ओर कोई आँख उठा नहीं सकता ? हे नाथ, क्या मैं सुकुमारी हूँ; और आप वन के योग्य हैं ! क्या आपको तप करना चाहिये और मुझे भोग-विलास !

ऐसेहु वचन कठोर—

हे स्वामी, आपके ऐसे कठोर वचन सुनकर भी मेरा हृदय नहीं फटा, तो प्रभु के कठिन वियोग का दुःख इन पापी प्राणों को अवश्य सहना होगा ।

भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध और श्रीराम का उन्हें समझाना

लखन लखेउ प्रभु—सभारु = चिंता, घबड़ाहट ।

लक्ष्मण ने देखा कि स्वामी के मन में घबड़ाहट हुई है, वे समय के अनुसार नीति विचारकर कहने लगे। हे गोसाईं, विना पूछे कुछ कहता हूँ, इसके लिए क्षमा करना, क्योंकि समय पर ढिठाई करनेवाला सेवक ढीठ नहीं कहा जाता। हे नाथ आप तो सर्वज्ञ-शिरोमणि हैं, पर मैं सेवक भी अपनी समझ के अनुसार, कुछ कहता हूँ ।

नाथ सुहृद सुठि—

हे नाथ आप अत्यन्त शुद्ध हृदयवाले, सरल-चित्त और शील तथा स्नेह की खान हैं। इससे आपके हृदय में सबपर प्रीति और विश्वास है और सबको आप अपने ही समान समझते हैं।

विषयी जीव—

परन्तु विषयी-जीव प्रभुता पाकर जानबूझ कर मूर्ख और अज्ञान के वश हो जाते हैं। भरत नीति में तत्पर, सज्जन और चतुर है और स्वामी के चरणों में उसका प्रेम है, यह सारा संसार जानता है।

तऊ आजु—

वह भी आज राजपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाने चला

है। यह कुटिल और दुष्ट भाई भरत बुरा समय देखकर और यह जानकर कि रामचन्द्रजी वन में अकेले ही निवास करते हैं—

करि कुमंत्र मन—

मन में खोटी सलाह ठानकर समाज को सजाकर अकंटक राज्य करने आया है। दोनों भाई करोड़ों प्रकार की कुटिलतापूर्ण कल्पनाएँ करके सेना बटोरकर आये हैं।

जौ जिय होति न—

यदि मन में कपट और कोई बुरी चाल न होती, तो रथ, घोड़े-हाथियों का झुण्ड किसको सुहाता। भरत ही को क्यों दोष दिया जाय, राजपद पाने से सारा संसार पागल हो जाता है।

ससि गुरु तिय—भूमिसुर=ब्राह्मण।

चन्द्रमा[१] ने गुरु की पत्नी से भोग किया, नहुष[२] ब्राह्मणों से कन्धा लगवाकर पालकीपर चढ़े। राजा बेन[३] के समान लोक और वेद से विमुख और नीच दूसरा कोई नहीं हुआ।

---

१. चन्द्रमा के गुरु बृहस्पति थे जिनकी स्त्री का नाम तारा था। जब चन्द्रमा ने त्रिलोक को जीत कर राजसूय यज्ञ किया तब उसने तारा का भी हरण कर उसके साथ संभोग किया। इस पर देवताओं में घोर युद्ध हुआ। उसमें राक्षसों ने चन्द्रमा का साथ दिया। अन्त में ब्रह्मा ने बीच में पड़ कर तारा बृहस्पति को दिलवा दी और उससे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह चन्द्रमा ने लिया। इसका नाम बुध हुआ।

२. राजा नहुषकी कहानी पृष्ठ ४९ पर देखिये।

३. राजा बेन जन्म ही से बड़ा उपद्रवी, दुष्ट-प्रकृति और वाचाल था। पिता के दुखी होकर वन में चले जाने पर उसे राजगद्दी मिली। बस, राज्य मिलते ही उसने उत्पात मचाया। उसने सब धर्म कर्म रोक दिये और ब्राह्मणों से कहा कि विष्णु की जगह मेरी पूजा करो अन्त में सब ऋषियों ने इकठे हो उसके पास जाकर उसे

सहसबाहु सुरनाथ—रंच = थोड़ा।

सहस्त्रबाहु 'इन्द्र' और त्रिशंकु' इनमें से किसको राज्य के मद

बहुत समझाया, पर जब उसने न माना तो उन्होंने क्रुद्ध होकर उसे हुंकार से भस्म कर दिया।

१. राजा सहस्त्रबाहु एक बार शिकार खेलता हुआ जमदग्नि मुनि के आश्रम में जा निकला। मुनि ने राजा का बड़ा आदर सत्कार किया। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुनि के पास इतना सामान कहाँ से आया। मुनि से पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके पास काम धेनु है, उसी के प्रभाव से सब कार्य सिद्ध हुआ है। राजा के माँगने पर मुनि ने कामधेनु नहीं दी, इस पर विवाद बढ़ा। अन्त में राजा मुनि को मारकर गौ को ले चला, पर वह गौ छूट कर इन्द्र लोक में भाग गई। फिर जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी ने युद्ध में सहस्त्रबाहु को मारकर २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया और यज्ञ कर जमदग्नि मुनि को जीवित कर लिया।

२—एक बार इन्द्र अपने सिंहासन पर विराजमान थे, इतने में सुरगुरु बृहस्पति जी वहाँ आये; पर इन्द्र ने अभिमानवश उनका यथोचित आदर न किया। इस पर बृहस्पति जी अप्रसन्न होकर स्वर्ग से चल दिये। गुरु द्रोह के कारण इन्द्र पर घोर विपत्ति आई। दैत्यों ने चढ़ाई कर सब को स्वर्ग से मार भगाया, फिर अंत में ब्रह्मा की सलाह से तपस्वी विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाकर इन्द्र ने अनेक प्रयत्न किये, तब उसकी रक्षा हुई।

३—त्रिशंकु राजा मन्दोमत्त होकर शरीर सहित स्वर्ग जाने का उद्योग करने लगा। वसिष्ठ और उनके पुत्रों से इस कार्य के न होने का उत्तर पाकर वह विश्वामित्र जी के पास गया, उन्होंने अपनी तपस्या के बल पर त्रिशंकु को स्वर्ग भेज दिया पर स्वर्ग-वासियों ने उसे धक्का देकर नीचे को गिरा दिया। अन्त में वह बीच में ही टँगा रह गया। उसे लोग अब त्रिशंकु का तारा बताते हैं।

ने कलङ्क नहीं दिया ? भरत ने यह उचित उपाय ही किया है क्य कि शत्रु और ऋण को थोड़ा भी शेष नहीं रहने देना चाहिए।

एक कीन्ह नहिं--

भरत ने एक ही बात अच्छी नहीं की, जो रामचन्द्रजी को असहाय जानकर उनका निरादर किया। सो आज युद्ध में रामचंद्र जी का क्रोधपर्ण मुख उसे अच्छी तरह मालूम हो जायगा।

इतना कहत नीति—

इतना कहते कहते लक्ष्मण नीति रस (नीति की बात) भूल गये और रोमांच के रूप में उनके शरीर में वीर रस का वृक्ष फूल गया अर्थात् कहते कहते नीति की बात भूल कर वे वीरता की बात कहने लगे। प्रभु के चरणों में प्रणाम कर उनकी रज मस्तक पर रख कर लक्ष्मण ने अपने स्वाभाविक बल को सत्य-सत्य कहा।

अनुचित नाथ न—

वे बोले—हे नाथ आप मेरी बात को अनुचित न मानें, भरत ने हमें मारने के लिए थोड़ा उपाय नहीं किया। हम कहाँ तक सहें, और मन मारे रहें, जबकि नाथ हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है।

छत्रि जाति रघुकुल जनम—

मैं जाति का क्षत्रिय हूँ, रघुकुल में मेरा जन्म है, और रामचन्द्र का मैं छोटा भाई हूँ, यह संसार जानता है। धूलि के समान नीच और कौन है, वह भी लात मारने से सिर पर चढ़ जाती है (फिर मैं चुप क्यों रहूँ ?)

उठि कर जोरि रजायसु—रजायसु=आज्ञा।

लक्ष्मणजी ने उठकर हाथ जोड़कर रामचन्द्रजी से आज्ञा माँगी, मालूम हुआ कि वीर रस सोते से जाग उठा है।

सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस कर और हाथ में धनुषबाण लेकर (वे बोले कि)—

आजु राम सेवक जसु—

आज मैं रामचन्द्र जी का सेवक होने का यश लूँगा और युद्ध में भरत को शिक्षा दूँगा। रामचन्द्र के अनादर करने का फल पाकर दोनों भाई (भरत और शत्रुघ्न) रण की सेज पर सोवो।

आइ भला बन सकल—

आज सारा समाज अच्छा आजुटा है। पिछला क्रोध (जो अयोध्या से चलते वक्त हुआ था) भी आज मैं प्रकट करूँगा। जिस प्रकार सिंह हाथियों के झुण्ड का मर्दन करता है, और बाज जिस प्रकार लवा पक्षी पर झपड़ता है।

तैसेहि भरतहि सेन—

उसी प्रकार सेना और भाई के साथ भरत को तिरस्कार करके रण-क्षेत्र में मार गिराऊँगा। यदि स्वयं शिवजी भी उन की सहायता के लिये आवें, तो भी मैं उन्हें रण में मार गिराऊँगा। यह मैं रामचन्द्रजी की शपथ करके कहता हूँ।

अति सरोष माखे लखन—

लक्ष्मणजी को बड़े क्रोध में भरे देखकर तथा उनकी शपथ को सत्य जान कर सब लोक तथा लोकपाल डर गए और घबराकर उन्होंने शीघ्रता पूर्वक भागना चाहा।

जग भय मगन गगन—

सारे संसार में भय छा गया, उस समय लक्ष्मणजी के बाहु बल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई—हे तात, तुम्हारे प्रताप और प्रभाव का वर्णन कौन कर सकता है और उसे कौन जानने वाला है ?

अनुचित उचित काज—

कोई भी काम हो उसके उचित या अनुचित का विचार करके तब उसे करना चाहिये, जिससे सब लोग अच्छा कहें। बिना विचारे एकदम जो कार्य कर बैठते हैं और पीछे पछताते हैं, वेद और बुद्धिमान कहते हैं कि वे बुद्धिमान नहीं हैं।

सुनि सुर बचन—

देवताओं के वचन (आकाशवाणी) सुनकर लक्ष्मण लज्जित हो गये और रामचन्द्र और सीता ने आदर-पूर्वक उनका सम्मान किया। रामचन्द्र ने कहा, भाई तुमने सुन्दर नीति का वर्णन किया है, राजमद सब मदों से कठिन है।

जो अँचवत माँतहिं नृप—

जिन्होंने सज्जनों की सभा का सेवन नहीं किया वे राज मद का आचमन करते ही (राज्य पाते ही) मतवाले हो जाते हैं हे लक्ष्मण सुनो, ब्रह्मा के इस प्रपञ्च (सृष्टि) में भरत के समान भला न तो कोई देखा गया है और न सुना गया है।

भरतहिं होइ न—सीकरनि=बूंदों से।

ब्रह्मा विष्णु और शिव का पद पाने पर भी भरत को राजमद नहीं हो सकता। क्या कभी कांजी की बूँदों के पड़ने से क्षीर-समुद्र फट सकता है ? अर्थात् दूध में काँजी की बूँद पड़ने से वह फट जाता है, पर दूध का समुद्र नहीं फटता, इसी तरह ऊँचे से ऊँचा पद पाने पर भी भरत को अभिमान नहीं हो सकता।

तिमिर तरुन तरनिहि सकु—तरनिहि=सूर्य को। घटजोनी= घट से उत्पन्न होने वाले,अगस्त्य मुनि। छोनी=क्षोणी, पृथिवी।

अन्धकार मध्याह्न के सूर्य को निगल सकता है और आकाश-मार्ग चाहे बादलों में ही मिल जाय, (समुद्र को अढ़ाई आचमन

में पी जाने वाले) अगस्त जी चाहे गौ के खुर के गढ़े में डूब जायँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़ दे।

मसक फूँक मकु मेरु—

चाहे मच्छर की फूँक से मेरु पर्वत उड़ जाय तो भी हे भाई ! भरत को राज्यमद नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण ! तुम्हारी और पिताजी की सौगन्द है कि भरत के समान शुद्ध आचरण का भाई नहीं है।

सगुन षीर अवगुन जल—

हे भाई लक्ष्मण, गुण-रूपी दूध तथा दुर्गुणरूपी जल को मिलाकर ब्रह्मा ने इस संसार की रचना की है। और सूर्यवंश-रूपी सरोवर में भरत-रूपी हंस ने जन्म लेकर दोष और गुण को अलग अलग कर दिया है।

गहि गुन पय तजि अवगुन—

भरत ने ब्रह्मा की सृष्टि में का दूध-रूपी गुण ग्रहण करके और दुर्गुण-रूपी जल का परित्याग कर अपने यश से संसार को उज्ज्वल बनाया है। इस प्रकार भरत के गुण-शील और स्वभाव का वर्णन करते हुए रामचन्द्र प्रेम समुद्र में मग्न हो गये।

सुनि रघुबर बानी बिबुध—

रामचन्द्र की वाणी सुनकर और उनका भरत पर प्रेम देख कर देवता प्रशंसा करने लगे कि प्रभु रामचन्द्र के समान कौन स्वामी कृपालु हैं।

जौ न होत जग जनम भरत—

यदि संसार में भरत का जन्म न होता तो इस पृथिवी में धर्म के सारे भार को कौन धारण करता। भरत के गुण समूह कवियों के लिये अगम है, कवि उनका वर्णन नहीं कर

सकते, हे रामचन्द्र, आपके अतिरिक्त और कौन भरत के गुणों को जान सकता है। राम लक्ष्मण ओर सोता दैव-वाणी सुन कर बड़े प्रसन्न हुए—वे बहुत सुखी हुए; उनके सुख का वर्णन नहीं हो सकता।

विपाद में विवेक

बरषाकाल मेघ—नभ=आकाश।

वर्षाकाल में आकाश में बादल छाये हुए थे, वे गरजते हुए अत्यन्त सुहावने लगते थे।

लछिमन देखहु—बारिद=बादल। बिरति=वैराग्य। रत= अनुरक्त। पेखि=देख कर।

रामचन्द्र जी ने कहा है—हे लक्ष्मण, देखो मोरों के झुंड बादलों को देखकर कैसे नाचते हैं जैसे वैराग्य में अनुराग करने वाला (वैरागी प्रवृत्ति वाला) कोई गृहस्थ भगवान् विष्णु के भक्त को देखकर प्रसन्न हो।

घन घमण्ड नभ गरजत—

आकाश में घुमड़-घुमड़ कर बादल घोर गरजना कर रहे हैं! ऐसे समय प्रिया के बिना मेरा मन डरता है। बिजली चमकती है, परन्तु बादलों में ठहरती नहीं, जैसे दुष्टजनों की प्रीति स्थिर नहीं होती अर्थात् बार बार होतो है फिर टूट जाती है। मूल पुस्तक में दूसरी पक्ति में "दामिनि दमकि रहत घन माँहीं" पाठ है, उसके अनुसार इस चौपाइ का अर्थ होगा—बिजली बादलों में (ऐसी अस्थिरता से) चमक रही है जैसे दुष्टों की प्रीति स्थिर नहीं होती। परन्तु अन्य रामायणों में "दामिनि दमकि रह न घन माहीं" पाठ है जिसके अनुसार पहला अर्थ दिया गया है। यही पाठ उचित प्रतीत होता है।

बरसहिं जलद भूमि— नवहिं=झुकते हैं।

पृथिवी के समीप पहुँच कर बादल इस तरह बरसते हैं, जैसे विद्या पाकर पण्डित-जन नम्र हो जाते हैं। बूँदों के आघात (चोट) को पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन (फटकार) संतजन सह लेते हैं।

छुद्र नदी भरि—डाबर=मैला। बौराना=उन्मत्त हो जाना।

छोटी-छोटी नदियाँ जल से भर कर वैसे ही उमड़ कर बहने लगीं हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य थोड़ा सा भी धन पा जाने से उन्मत्त हो जाता है। पृथिवी पर गिरते ही निर्मल जल ऐसा मैला हो गया है, मानों जीव को माया लिपट गई हो।

सिमिटि सिमिटि—

पानी चारों ओर से सिमट-सिमट कर तालाब को इस तरह भर रहा है जैसे अच्छे गुण इकट्ठे होकर सज्जनों के पास आते हैं। नदी का जल [बहता-बहता] समुद्र में जा-कर इस तरह स्थिर हो जाता है, जैसे भगवान् को पाकर (इधर उधर भटकता हुआ) जीव स्थिर हो जाता है।

हरित भूमि तृन—संकुल=व्याप्त, छाजाना।

घास के छा जाने से पृथिवी हरी ही हरी हो गई है,जिससे रास्ता इस प्रकार नहीं समझ पड़ता, जैसे पाखण्डपूर्ण विवाद से अच्छे ग्रन्थों का लोप हो जाता है।

दादुर धुनि—दादुर=मेंढक। बटु=ब्रह्मचारी। पल्लव=पत्ता।

चारों दिशाओं में मेंढकों का टरटर शब्द ऐसा सुन्दर मालूम होता है, मानों ब्रह्मचारियों का समूह वेद पढ़ रहा हो। अनेक वृक्षों में नये-नये पत्ते इस प्रकार निकल आये हैं जैसे किसी साधना करनेवाले के मन में ज्ञान उत्पन्न हो गया हो।

अर्क जवास पात—अर्क=आक।

आक और जवासा (एक प्रकार की झाड़ी जिस की पत्तियाँ बरसात में गिर जाती हैं और बरसात के बाद फिर निकल आती हैं) इस तरह पत्तों के बिना हो गये हैं जैसे अच्छे राज्य में दुष्टों का काम-धंधा बंद हो जाता है। खोजने पर भी कहीं धूल नहीं मिलती, जैसे जब क्रोध धर्म को दूर देता है तब वह नहीं मिलता।

ससि संपन्न सोह—खद्योत=जुगुनू। ससि=शस्य।

धान्यों से भरी हुई पृथिवी कैसे शोभा पा रही है, जैसे किसी परोपकारी मनुष्य की सम्पत्ति हो। रात के घोर अंधेरे में जुगुनुओं का समूह ऐसे विराज रहा है मानों दम्भियों (पाखण्डियों) का समाज इकट्ठा हुआ हो।

महावृष्टि चलि फूटि कियारी—

अत्यधिक वर्षा होने से क्यारियाँ ऐसे फूट निकली हैं जैसे स्वतन्त्र हो जाने से स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान खेती को इस तरह निराते—साफ करते, अनाज के भीतर उगे हुए घास कूड़े को उखेड़ते हैं जैसे बुद्धिमान् मनुष्य मोह, मद और मान आदि को त्याग देते हैं।

देखियत चक्रवाक खग—

चकवा-चकवी (एक पक्षी जो जाड़े के दिनों में नदियों के किनारे दिखाई देता है, अधिक गरमी पड़ते ही भारतवर्ष से चला जाता है) इस तरह देखने में नहीं आते जैसे कलियुग को पाकर धर्म नहीं रहते (नहीं दिखाई देते)। ऊसर भूमि में वर्षा होने पर भी घास नहीं जमती, जैसे भगवान् के भक्तों के हृदय में काम-वासना नहीं उत्पन्न होती।

विविध जंतुसंकुल—भ्राजा=शोभित हो रही है।

अनेक प्रकार के जन्तुओं से भरी हुई पृथिवी इस प्रकार शोभित हो रही है, जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा बढ़ती है। जहाँ-जहाँ बहुत से बटोही थककर इस तरह ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती हैं।

कबहुँ प्रबल चल—मारुत=वायु।

कभी प्रचण्ड हवा के चलने से बादल जहाँ-तहाँ इस तरह बिला जाते हैं (लुप्त हो जाते हैं) जैसे कुपूत के उत्पन्न होने पर कुल के अच्छे धर्म नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ—पतंग=सूर्य।

दिन में कभी घना अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य निकल आता है, जैसे कुसंग और सत्संग को पाकर ज्ञान क्रमशः नष्ट और उत्पन्न हुआ करता है।

बरषा बिगत सरद-ऋतु—

(शरद् ऋतु के आने पर श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे) हे लक्ष्मण, देखो वर्षाऋतु बीत गई और परम सुहावनी सुन्दर शरद्-ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथिवी ऐसी छा रही है, मानों वर्षाऋतु का बुढ़ापा प्रगट हो गया हो (कास फूलने से सारा जंगल सफेद ही सफेद हो जाता है)।

उदित अगस्त पंथजल—

अगस्त्य तारा उदय हो गया (यह तारा भाद्रपद मास के अंतिम दिनों में उदय होता है। इसके उदय होने से प्रायः वर्षा समाप्त हो जाती है, मार्ग का जल सूख जाता है और सरोवरों का जल निर्मल हो जाता है) और उसने मार्ग का जल इस तरह सुखा दिया, जैसे संतोष लोभ को सुखा देता है। नदियों

और सरोवरों में निर्मल जल ऐसे शोभित हो रहा है जैसे मद और मोह रहित सन्तजनों का हृदय शोभित हो।

रस रस सूख—रस रस=धीरे धीरे।

नदियों और तालाबों का पानी इस प्रकार धीरे-धीरे सूखने लगा है, जैसे ज्ञानी मनुष्य धीरे-धीरे ममता का त्याग किया करते हैं। शरद्ऋतु को पहचान कर खंजन पक्षी ऐसे आ गये हैं (शोभा पा रहे हैं) जैसे समय पाकर सत्कर्म अच्छे लगते हैं।

पंक न रेनु सोह—रेनु=धूल। अबुध=अज्ञानी, मूर्ख।

अब न तो कहीं कीचड़ है और न धूल, इसलिए पृथिवी ऐसी शोभा पा रही है, जैसे नीति-निपुण राजा के कार्य शोभित होते हैं। जल के कम हो जाने पर मछलियाँ इस प्रकार व्याकुल हो गई, जैसे अज्ञानी और बड़े कुटुम्ब वाले मनुष्य धन न होने से व्याकुल हो जाते हैं।

बिनु घन निर्मल सोह—

बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे सब आशाओं को छोड़कर भगवान् के भक्त शोभित होते हैं। कहीं-कहीं शरद् ऋतु की थोड़ी सी वर्षा हो जाती है, जैसे मेरी भक्ति को कोई-कोई ही पाता है।

चले हरषि तजि नगर—

राजा, तपस्वी, बनिये और भिक्षुक (सन्यासी तथा मँगते) प्रसन्नता से नगर छोड़ कर (अपने अपने कामों पर) इस प्रकार चल दिये, जैसे भगवान् की भक्ति पाकर चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) के लोग श्रम करना छोड़ देते हैं। (वर्षा ऋतु में सब काम-काज बंद रहने से लोग अपने स्थानों में रुके रहते हैं वर्षा के अन्त में राजा अपना देश देखने, तपस्वी जंगल में तपस्या करने, बनिये व्यापार करने, भिक्षुक अर्थात् सन्यासी तीर्थाटन करने और मँगते लोग भीख माँगने को चलते हैं)।

सुखी मीन—

जो मछलियाँ गहरे पानी में हैं, वे सुखी हैं, जैसे भगवान् की शरण में आये हुओं को एक भी बाधा (पीड़ा) नहीं होती। फूले हुए कमलों से सरोवर ऐसा शोभित हो रहा है, जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण हो जाने पर शोभित होता है।

गुंजत मधुकर मुखर—मुखर=खूब बोलने वाले, हर समय गुनगुनाने वाले।

मुखर भौंरे अनुपम गुँजार कर रहे हैं और तरह-तरह के सुन्दर पक्षियों का शब्द हो रहा है। रात देख कर चकवे (रात में चकवा चकई अलग अलग हो जाते हैं और दिन होने पर मिलते हैं इसीलिये) के मन में इस प्रकार दुःख हो रहा है, जैसे पराई सम्पत्ति को देखकर दुष्ट मनुष्य को होता है।

चातक रटत तृषा अति—

पपीहा रट रहा है, और उसे बड़ी प्यास है; वह इस तरह कष्ट में है, जैसे शिवजी का द्रोही सुख नहीं पाता। रात में शरद् ऋतु के ताप को चंद्रमा इस प्रकार मिटा देता है, जैसे संतों का दर्शन पापों को।

देखि इंदु—

चन्द्रमा की ओर चकोरों का समूह इस तरह देखता है, जैसे भगवान् के भक्त भगवान् को पाकर देखते हैं। शीत के दुःख से मच्छर और डाँस इस प्रकार नष्ट हो गये हैं, जैसे ब्राह्मणों से द्रोह करने पर कुटुम्ब नष्ट हो जाता है।

भूमि जीव संकुल रहे—

पृथिवी पर जो अनेक जीव-जन्तु भर रहे थे वे शरद् ऋतु को पाकर ऐसे चले गये, जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर संशय और भ्रम का समूह दूर हो जाता है।

भक्ति का माहात्म्य

एक बार प्रभु—आसीना=बैठे हुए थे।

एक बार जब प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुख से बैठे हुए थे, उस समय लक्ष्मण जी छल-रहित वचन बोले—हे देवता, मनुष्य, मुनि और समस्त चर तथा अचर जगत् के स्वामी, मैं आपको अपना प्रभु जानकर पूछता हूँ—

मोहि समुझाई—चरण-रज=पैरों की धूल।

हे देव, आप मुझे समझा कर वही कहिए, मैं जिससे सब कुछ छोड़कर आपके चरणों की धूल की सेवा करूँ। आप ज्ञान, वैराग्य और माया का निरूपण कीजिए और उस भक्ति के विषय में कहिए जिससे आप भक्तों पर कृपा करते हैं।

ईश्वर जीवहिं भेद—रति=प्रेम।

हे प्रभु, ईश्वर और जीव का सब भेद समझाकर कहिए, जिससे आपके चरणों में प्रेम होवे और शोक, मोह तथा भ्रम दूर हो जावें।

थोरे महँ सब कहउँ—निकाया=समूह।

(श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—) हे तात! थोड़े में ही सब समझाकर कहता हूँ, मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो; "मैं और मेरा", "तू और तेरा" यही माया है, जिसने सब जीवों को वश में कर रक्खा है।

गो गोचर जहँ लग—गो=इन्द्रिय। गोचर=जो इन्द्रियों से जाना जा सके।

जो गो-गोचर है अर्थात् इन्द्रियों से जाना जा सकता है और जहाँ तक मन पहुँचता है, हे भाई, वह सब माया जानो

उसके जो भेद हैं, उन्हें भी सुनो—एक विद्या और दूसरी अविद्या उसके ये दो भेद हैं।

एक दुष्ट अतिसय—भवकूपा = संसाररूपी कुआँ।

इन में एक (अविद्या) दुष्ट और अत्यन्त दुःखरूपिणी है, जिसके वश में होकर जीव संसाररूपी कुँए में पड़ा हुआ है। दूसरी (विद्या) संसार को रचती है जिसके वश में सब गुण हैं, उस माया को निज का कुछ बल नहीं है वह ईश्वर की प्रेरणा से ही सब कुछ करती है।

ज्ञान मान जहँ—तृन = तिनका।

ज्ञान उसे कहते हैं जहाँ तनिक भी अभिमान न रह जाय और जो सब को ब्रह्मसमान देखे। हे तात, परम वैराग्यवान् उसे कहना चाहिए जिसने सब सिद्धियों और तीनों गुणों (तमोगुण, रजोगुण, तथा सतोगुण) को तिनके के समान छोड़ दिया हो।

माया ईस न आपु—

जीव उसे कहा जाता है जो माया, ईश्वर और स्वयं अपने को नहीं जानता। ईश्वर वह है जो सबको बन्ध और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे, और माया को प्रेरणा करने वाला है—अर्थात् जीव अज्ञानी है पर ईश्वर सदा ज्ञानी है।

धर्म में विरति जोग—

धर्म से वैराग्य होता है (और वैराग्य से योग) तथा योग से ज्ञान। यह ज्ञान मोक्ष को देने वाला है, ऐसा वेद वर्णन करते हैं। हे भाई ! जिससे शीघ्र ही मैं द्रवित हो जाता हूँ—जल्दी प्रसन्न हो जाता हूँ—वह तो मेरी भक्ति है, जो भक्तों को सुख देने वाली है।

सो सुतन्त्र अवलंब न—

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसे दूसरे का सहारा नहीं है, ज्ञान और विज्ञान सब उसीके अधीन हैं। हे तात, भक्ति अनुपम सुख का मूल है, वह भक्ति संतजनों के अनुकूल होने से (संत-जनों की कृपा से) मिलती है।

भगति के साधन कहउँ—

अब मैं भक्ति के साधन वर्णन करता हूँ, यह एक सुगम मार्ग है, जिससे प्राणी मुझे पा जाते हैं। सब से पहले ब्राह्मणों के चरणों में अत्यन्त प्रेम हो और वेदोक्त रीति के अनुसार अपने अपने धर्म में तत्परता हो।

यहि कर फल पुनि—

फिर उसका फल यह होता है कि विषयों से वैराग्य होता है और तब मेरे धर्म (भगवद्धर्म) में प्रेम उत्पन्न होता है। और श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण सेवा, पूजा, वन्दन, दास्य, मित्रता और आत्म-समर्पण, नौ प्रकार की भक्ति दृढ़ हो जाती है तथा मन में मेरी लीला से अत्यन्त प्रेम हो जाता है।

संत-चरन-पंकज—

संतजनों के चरणकमलों में जिसे अत्यन्त प्रेम हो; जो मन, वाणी और कर्म से दृढ़ नियमपूर्वक भजन करता हो; गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब मुझे ही समझकर दृढ़ता से सेवा करता हो।

मम गुन गावत—

तथा मेरे गुण गाते हुए जिसका शरीर पुलकायमान हो जाता हो, वाणी गद्‌गद् हो जाती हो और जिसके नेत्रों से जल बहने लगता हो और जिस में काम आदि (काम, क्रोध, लोभ

मोह आदि) मद और दंभ (दिखावटी भक्ति) न हो, हे तात, मैं निरंतर उसी के वश में हूँ।

वचन करम मन—

जिसको मन, वाणी और कर्म से मेरी ही शरण है और जो निष्काम होकर मेरा ही भजन करते हैं, उनके हृदय-कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

भगति जोग सुनि अति

लक्ष्मण जी ने यह भक्तियोग सुनकर अत्यन्त सुख पाया और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में शिर नवाया।

मारीच हनन

तेहि बन निकट—दशानन = दस मुख वाला, रावण। कनक = सोना

जब रावण उस वन के पास गया, तब मारीच कपट से माया का मृग बन गया। उसने अपना शरीर मणियों से जड़ा हुआ सोने का ऐसा विचित्र बना लिया जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता।

सीता परम रुचिर मृग—

सीता जी ने इस अत्यन्त सुंदर हरिण को देखा जिसके अंग अङ्ग का वेष बड़ा मनोहर था। तब उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे देव, हे कृपालु रघुवीर ! सुनिए इस हिरण की खाल तो अत्यन्त सुन्दर है।

सत्यसंध, प्रभु बध कर—

सीताजी ने कहा—हे सत्यसंध, हे स्वामी, इसे मारकर इसकी खाल ले आइये। तब श्रीरामचन्द्रजी, जो सब कारणों को जानते थे, देवताओं का कार्य सँवारने के लिये प्रसन्न होकर उठे।

मृगबिलोकि कटि परिकर—परिकर = कमर बंद। चाप=धनुष।

श्रीरामचन्द्रजी ने हिरन को देख कर कमर कसी और हाथ में

सुन्दर धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया। तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से समझाकर कहा कि हे भाई, वन में बहुत से राक्षस फिरते हैं।

सीता केरि करेहु—

(इसलिए) बुद्धि, विवेक, बल और समय को विचार कर सीताजी की रखवाली करना। उधर प्रभु श्रीरामचन्द्र को देखकर हिरन भाग चला और रामचन्द्रजी भी उसके पीछे धनुष सजाकर दौड़े।

निगम नेति सिव ध्यान न—

जिसकी महिमा का पार न पाने के कारण वेद 'नेति' 'नेति' (उसका अन्त नहीं है) कह कर रह जाते हैं, और शिवजी जिसे ध्यान में भी नहीं पाते वही भगवान् माया के हिरन के पीछे दौड़ रहे हैं। वह हिरन कभी तो पास आ जाता है और कभी दूर भाग जाता है, कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

प्रगटत दुरत करत—

इस प्रकार बार-बार प्रकट होता, छिपता और बहुत सा छल करता हुआ वह कपट-मृग प्रभु श्रीरामचन्द्रजी को बहुत दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने ताक कर एक पैना बाण मारा जिस के लगते ही वह बड़े जोर से चिल्ला कर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

लछिमन कर प्रथमहिं लै—

(चिल्लाते समय) पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे उसने मन ही मन श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया। प्राण त्यागते समय उसने अपने असली शरीर को प्रकट कर दिया और बड़े प्रेम के साथ श्रीरामचन्द्रजी को स्मरण किया। सुजान श्रीराम-चन्द्रजी ने उसके भीतरी प्रेम को पहिचान लिया और उसे वह गति दी, जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

बिपुल सुमन सुर—

देवता बहुत से फूल बरसाने लगे और प्रभु श्रीरामचन्द्रजी के गुण गाने लगे कि रघुनाथजी बड़े दीनबंधु हैं जो उन्होंने राक्षस को भी अपना धाम दे दिया।

राम का विषाद

लछिमन समझाये—

लक्ष्मणजी ने तब रामचन्द्रजी को बहुत तरह से समझाया पर वे बेलों तथा वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले। हे पक्षियो, हे मृगो, हे भौंरों की श्रेणियो, क्या तुमने मृगनयनी सीता को देखा है?

खंजन सुक कपोत मृग—दाड़िम = अनार। उरग-भामिनी = साँप की स्त्री, साँपिन। मनोज = मनमें उत्पन्न होने वाला, कामदेव। केहरि = शेर।

खंजन, तोते, कबूतर, मृग, मछली, भौंरों के झुण्ड, चतुर कोयल, कुंद की कली, अनार, बिजली, कमल, शरदऋतु का चन्द्रमा, नागिनी वरुणपाश, कामदेव का धनुष, हंस, हाथी और सिंह, सब अपनी प्रशंसा सुनने लगे हैं। सीता की अनुपस्थिति के कारण ही इन्हें अपनी प्रशंसा सुनने की हिम्मत हुई है, उनकी उपस्थिति में तो सदा लज्जा के कारण छिपे रहते थे।

श्रीफल कनक कदलि—श्रीफल = बेल। कनक = सोना। कदलि = केला।

बेल, सुवर्ण और केले प्रसन्न हो रहे हैं। उनके मनमें ज़रा भी संकोच अथवा शंका नहीं है! हे सीते, सुन, आज तेरे बिना सब प्रसन्न हो रहे हैं, मानों इन्होंने राज पा लिया है। कवि का आशय यह है कि सीता के नेत्रों के सामने खंजन, मृग, मछली

और कमल लज्जित थे, उनकी नासिका के सामने तोते, कंठ के सामने कबूतर, बालों के सामने भ्रमर, स्वर के सामने कोयल, दाँतों के सामने कुन्दकली और अनार, रंग के सामने बिजली, मुख के सामने कमल और चन्द्रमा, चोटी के सामने नागिन और वरुण का पाश, भृकुटी के सामने कामदेव लज्जित होता था तथा चाल से हंस और हाथी, कटि से सिंह, स्तनों से श्रीफल (बेल), रंग से सुवर्ण और जंघा से केले के वृक्ष लजाते थे।

किमि सहि जात अनख—ईर्षा—

यह ईर्षा तुझ से कैसे सही जाती है ? हे प्रिये (इनका मान भंग करने के लिये) जल्दी क्यों नहीं प्रकट होतीं ? स्वामी श्रीरामचन्द्र जी सीता को इस तरह खोजते और विलाप करते फिरते हैं, मानों कोई बड़ा विरही और अत्यन्त कामी मनुष्य हो। श्रीरामचन्द्रजी पूर्णकाम (जिनको कोई इच्छा शेष न हो) आनन्दकंद, अजन्मा और अविनाशी हैं, परन्तु वे मनुष्य का चरित्र कर रहे हैं।

अनसूया का उपदेश

कह रिषिवधू सरस—

ऋषि-पत्नी अनुसूयाजी सीताजी को शिक्षा देने के बहाने से सरस और कोमल वाणी में कुछ स्त्री-धर्म के विषय में कहने लगीं। हे राजकुमारी सीता, सुनो ! माता, पिता, भाई तथा हितैषी—ये सब मितदाता (अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार थोड़ा-सा देनेवाले) ही होते हैं।

अमित दानि भर्ता—अमित=परिमाण रहित, बहुत अधिक।

परंतु हे वैदेही (सीता) अमित (असीम) देनेवाला पति ही होता है, वह स्त्री अधम है जो उस पति की सेवा नहीं

करती है। धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की परीक्षा विपत्तिकाल में ही होती है।

वृद्ध रोगवस जड़—

बूढ़ा, रोगी, मूर्ख निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी, और बहुत दीन, ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमलोक में अनेक दुःख भोगती है।

एकइ धर्म एक व्रत—

स्त्री का यह एक ही धर्म, एक ही व्रत और नियम है, कि शरीर वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करे। वेद, पुराण और सन्तजन कहते हैं कि संसार में पतिव्रता चार प्रकार की होती हैं।

उत्तम मध्यम नीच लघु—भव=संसार।

उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, इन चारों प्रकार की पतिव्रताओं के लक्षण समझा कर कहती हूँ, हे सीता! मन लगा कर सुनो; जो आगे सुनेंगी वे भी संसार से तर जायँगी।

उत्तम के अस बस—

उत्तम पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बस जाता है कि उसके लिये (अपने पति के सिवाय) सपने में भी दूसरा पुरुष संसार में नहीं है। मध्यम स्त्रियाँ पराये पतियों को अपने भाई, बाप, और पुत्र की नाईं देखती हैं।

धर्म विचारि समुझि कुल—श्रुति—वेद।

जो स्त्री धर्म का विचार कर और कुल को समझ कर रहती है [अर्थात् चित्त तो परपुरुष को देखकर चलायमान हो जावे पर मेरा धर्म बिगड़ जायगा या कुल में कलंक लग जावेगा इत्यादि सोचकर चित्त को रोक ले] वह स्त्री निकृष्ट

(नीच) है, ऐसा वेद कहते हैं। जो समय न मिलने से अथवा भय से अपने धर्म में रहती है उसे संसार में अधम स्त्री समझो।

पतिवंचक परपति—

जो स्त्री अपने पति को ठगकर अर्थात् अपने पति से झूठी बातें बनाकर पराये पति से प्रीति करती है वह सौ कल्प पर्य्यन्त रौरव नरक में पड़ती है। जो क्षण-भर के सुख के लिए सैकड़ों करोड़ों जन्म के दुःख को न समझे उसके समान खोटी स्त्री और कौन है ?

बिनु श्रम नारि परम—

जो स्त्री छल को छोड़ कर पातिव्रत-धर्म का पालन करती है वह विना परिश्रम के ही परम गति (स्वर्ग) पा जाती है। पति से विरुद्ध आचरण करने वाली स्त्री जहाँ भी जाकर जन्म लेती है वहीं युवावस्था में ही विधवा हो जाती है।

रावण तथा हनुमान का सम्वाद

कपिहिं बिलोकि दसानन—सुरति=याद, स्मरण।

बन्दर (हनुमान) को देखकर रावण दुर्वचन कहकर खूब हँसा। फिर जब, उसने पुत्र के वध का स्मरण किया तब उसके हृदय में शोक उत्पन्न हुआ।

कह लंकेस कवन तैं—घालेसि=किया। खीसा=नष्ट।

लंकापति रावण ने कहा कि अरे बंदर, तू कौन है ? किसके बल से तूने वन को नष्ट किया ? क्या कभी तूने मुझे (मेरे नाम को) कानों से नहीं सुना ! अरे दुष्ट, मैं तुझे बहुत ही निडर देखता हूँ।

मार निसिचर केहि अपराधा—

तूने राक्षसों को किस अपराध के कारण मारा ? अरे दुष्ट, ! बतला, क्या तुझे प्राणों का भी डर नहीं है ? हनुमान जी ने उत्तर दिया—हे रावण ! सुन, जिनका बल पाकर माया समस्त ब्रह्माण्डों की रचना करती है—

जा के बल विरंचि हरि—सृजत=पैदा करते हैं। सहसानन= हजार मुख वाले, शेष नाग।

और हे रावण, जिनके बल से, ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमशः जगत् को पैदा करते, पालते, और उसका नाश करते हैं, तथा जिनके बल से हजार सिर वाले शेषनाग पर्वत और वन समेत समस्त ब्रह्माण्डों को अपने सिर पर धारण करते हैं—*

धरे जो विविध देह—सुरत्राता=देवताओं का रक्षक। हरकोदण्ड=शिवजी का धनुष।

जो देवताओं के रक्षक तरह तरह के शरीर धारण किया करते हैं, जो तुम्हारे जैसे दुष्टों को शिक्षा देने वाले हैं, जिन्होंने शिवजी के कठोर धनुष को तोड़ा और तुझ समेत राजाओं के दल का अभिमान चूर्ण किया, जिन्होंने अतुल-बल-सम्पन्न खर, दूषण, त्रिशिरा और बाली—सब को मार डाला—

जा के बल लवलेस—

जिनके बल के लेशमात्र से (अर्थात् शंकर जी ने तुझे

---

*तुझे केवल जरा सी लंका का राज्य चलाने में ही इतना मद है, पर वे सारे संसार को चलाते हैं। तुझे केवल कैलाश उठाने तथा दस सिर वाला होने का घमंड है, पर उनके बल से हजार सिर वाला शेषनाग सारी पृथ्वी को धारण किये है।

जो बल दिया है वह उनके बल का लेशमात्र है) तूने चर (जंगम) और अचर (जड़) सब को जीत लिया है और जिनकी प्यारी स्त्री को तू चुरा लाया है, मैं उन्हीं का दूत हूँ।

जानउँ मैं तुम्हारि—बहरावा=टाल दिया।

(तुमने जो कहा है कि "कीधौं स्रवण सुने नहिं मोहीं" सो) मैं तुम्हारी प्रभुता को जानता हूँ। सहस्रार्जुन से तुम्हारी लड़ाई हुई थी और तुमने बाली से युद्ध करके भी यश पाया था।* हनुमानजी के वचन सुनकर रावण ने उन्हें हँसकर टाल दिया।

खायेउँ फल प्रभु लागी—रूखा=वृक्ष।

हे प्रभु (राक्षसराज) ! मुझे भूख लगी थी इसलिये मैंने फल खा लिये। वृक्षों को तोड़ना बन्दरों का स्वभाव ही होता है, सो मैंने भी उसी स्वभाववश वृक्ष तोड़ डाले। इस पर ये कुमार्गगामी राक्षस मुझे मारने लगे, हे स्वामी, अपनी देह सब को अत्यन्त प्यारी होती है।

---

* एक बार रावण नर्मदा में स्नान कर पार्थिव पूजा कर रहा था। उधर माहेश्वर के राजा सहस्रार्जुन ने अपने १००० हाथों से नर्मदा का प्रवाह रोक दिया। इस पर नर्मदा में बाढ़ आगई और रावण की पूजा-सामग्री बह गई। रावण को इस पर बड़ा क्रोध आया। बाढ़ का कारण पता लगने पर वह सहस्रार्जुन से जा भिड़ा। सहस्रार्जुन ने रावण को कैद कर लिया तब ब्रह्मा ने जाकर उसे छुड़ाया।

एक बार बाली संध्या कर रहा था उस समय रावण ने चुपचाप पीछे से जाकर बाली को पकड़ना चाहा। बाली ने रावण को तुरंत बगल में दबा लिया और ६ महीने तक ऐसे ही लिए घूमता रहा। फिर उससे मित्रता कर रावण ने छुटकारा पाया।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं—तनय=पुत्र।

इसलिये जिन्होंने मुझे मारा, उनको मैंने भी मारा—उस पर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध लिया। मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नहीं है, क्योंकि मैं अपने प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) का कार्य करना चाहता हूँ।

विनती करउँ जोरि कर—

हे रावण, मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने कुल को विचार कर देखो (अर्थात् पुलस्त्य ऋषि के वंशज और ब्रह्मा के पुत्र हो कर तुम राक्षसों का काम करते हो) और भ्रम छोड़कर भक्तों के भय को हरने वाले भगवान् को भजो।

जाके डर अति काल—

जिसके डर से देवता, राक्षस और चराचर को भक्षण करने वाला काल भी डरता है, उससे वैर कभी नहीं करना चाहिए। इसलिये मेरे कहने से जानकी जी को दे दो।

प्रनतपाल रघुनायक—

खर के शत्रु श्रीरामचन्द्रजी दया के समुद्र हैं और शरणागतों को रक्षक हैं। शरण में जाने से वे प्रभु तुम्हारे अपराध भुलाकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

राम-चरन-पंकज उर—

श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों को हृदय में धारण करके लंका में अचल राज्य करो। पुलस्त्य ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा है, उस चन्द्रमा में कलंकरूप मत होवो।

रामनाम बिनु गिरा न—सुरारी=देवताओं के शत्रु।

अभिमान और मोह को त्यागकर विचार करके देखो—श्रीरामचन्द्रजी के नाम के विना वाणी शोभा नहीं पाती। हे देवताओं के शत्रु ! सब गहनों से सजी हुई होने पर भी सुन्दर स्त्री, वस्त्रों के बिना शोभित नहीं होती।

राम विमुख संपति—

जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी से विमुख हैं उनकी सम्पत्ति और प्रभुता गई सी ही समझनी चाहिए, मिलने पर भी वह न मिलने के समान है। जिस तरह जिन नदियों का मूल (उद्गम) सजल (जलपूर्ण) नहीं है, वे वर्षा हो जाने के पश्चात् तुरन्त सूख जाती है।

सुनि दसकंठ कहउँ—

हे रावण ! सुनो, मैं प्रतिज्ञा करके (शर्त्त लगाकर) कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्रजी से विमुख व्यक्ति को बचानेवाला कोई भी नहीं है। हजारों शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी श्रीरामचन्द्रजी के वैरी तुमको नहीं बचा सकते।

मोहमूल बहु सूलप्रद—तम = तमोगुण, अंधकार।

तुम तमोगुण पूर्ण अभिमान (अथवा अभिमान रूपी अंधकार) को त्याग दो, जो अज्ञान की जड़ है और बहुत पीड़ा पहुँचाने वाला है तथा दया के समुद्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो।

जदपि कही कपि—विरति = वैराग्य। नय = नीति।

यद्यपि हनुमानजी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, और नीति से भरी हुई अत्यन्त हित की बातें कही, तथापि वह महाअभिमानी रावण हँसकर कहने लगा कि हमें यह बन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला है।

मृत्यु निकट आई खल—

अरे दुष्ट! तेरी मृत्यु पास आ गई है, इसलिए हे नीच, तू मुझे सीख देने लगा है! हनुमानजी ने कहा ठीक इसका उलटा होगा अर्थात् मेरी मौत आने की तो अभी सम्भावना नहीं पर तेरी मौत निश्चित है। मुझे स्पष्ट मालूम होता है कि तेरी बुद्धि में भ्रम हो गया है अर्थात् तेरी बुद्धि फिर गई है।

सुनि कपिवचन बहुत—

हनुमानजी के वचन सुनकर रावण बहुत क्रोधित हुआ और कहने लगा कि इस मूर्ख को शीघ्र ही क्यों नहीं मार डालते! यह सुनकर राक्षस हनुमानजी को मारने के लिए दौड़े; उसी समय मंत्रियों समेत विभीषण वहां आ गये।

नाइ सीस करि विनय—

सिर नवाकर उन्होंने बहुत विनती की और कहा कि दूत को मारना नहीं चाहिये क्योंकि यह नीति के विरुद्ध है। हे स्वामी, इसलिए कुछ और दण्ड दीजिये। इस पर सब राक्षसों ने कहा कि भाई, यह सलाह अच्छी है। यह सुनकर रावण हँस कर कहने लगा कि बन्दर का अंग भंग कर (कोई अंग काट कर) के भेज देना चाहिए।

कपि कै ममता पूँछि—

रावण ने सब को समझा कर कहा कि बन्दरों की ममता पूँछ पर होती है, इसलिये कपड़े तेल में डुबोकर और फिर उन्हें इसकी पूँछ में बांधकर आग लगा दो।

पूँछहीन बानर तहँ—सारद=शारदा, सरस्वती।

जब बिना पूँछ का यह बन्दर वहाँ जायगा, तब दुष्ट

अपने स्वामी को साथ ले आवेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं भी देखूं तो सही उनकी प्रभुताई (सामर्थ्य) कैसी है ? यह बचन सुनकर हनुमानजी अपने मन ही मन मुस्कराये। सोचने लगे कि मैं समझता हूँ कि सरस्वती जी सहायक हो गई हैं।

अंगद-रावण-सम्वाद

कह दसकंठ कवन तैं—जनकहि = पिता से।

रावणने कहा,—अरे बन्दर ! तू कौन है ? अङ्गद ने कहा—हे दशानन, मैं रामचन्द्रजीका दूत हूँ। मेरे पिता के साथ तुम्हारी मित्रता थी, इसलिए हे भाई, मैं तुम्हारे हितके लिए आया हूँ।

उत्तम कुल पुलस्ति कर—

तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हो, पुलस्त्य मुनिके नाती हो, तुमने शिवजी और ब्रह्माजी की बहुत तरह से पूजा की है। उनसे वर पा कर सब काम किये, और सब लोकपालों तथा राजाओं को जीत लिया।

नृप अभिमानमोह—जगदंबा = जगतकी माता सीता।

हे राजन, अभिमान से अथवा अज्ञान से, तुम जगन्माता सीताजी को हर लाये हो, सो अब तुम मेरा भला कहना सुनो, प्रभु (रामचन्द्रजी) तुम्हारे सब अपराधोंको क्षमा कर देगें।

दसन गहहु तृन कंठ—कुठारी = कुल्हाड़ी।

दाँतोंके नीचे तृण दाब लो और गलेपर कुल्हाड़ी रखकर कुटुम्बियोंके सहित अपनी स्त्रीको साथ लेकर जनक-नान्दनीको आदरपूर्वक आगे करके, सारा भय त्यागकर इस तरह (रामचन्द्र जीकी शरण में) चलो। दाँतों में तिनका पकड़ने का भाव यह है कि मैं आपकी गऊ हूँ, गले पर कुल्हाड़ी रखने का यह भाव है कि मेरा गला भलेही काट डालिए, मैं आपकी शरण हूँ।

प्रनतपाल रघुवंस—त्राहि त्राहि = रक्षा करो, रक्षा करो।

वहाँ जाके प्रार्थना करना—हे शरणागतोंके रक्षक रघुवंशमणि, अब मेरी रक्षा कीजिये—रक्षा कीजिये! प्रभु रामचन्द्रजी तुम्हारी दुःखभरी वाणी सुनते ही तुमको निर्भय कर देंगे।

रे कपि पोत न बोल—कपिपोत = वंदरका बच्चा।

(रावणने,—) अरे बन्दर के बच्चे तू ज़बान संभालकर क्यों नहीं बोलता! मूढ़, तू मुझे नहीं जानता कि मैं देवताओं का वैरी हूँ? अरे भाई, तू अपना और अपने बापका नाम तो बता, किस नातेसे उसकी मित्रता मानी जाय?

अंगद नाम बालिकर—

(अङ्गदने कहा) मेरा नाम अङ्गद है और मैं बालीका पुत्र हूँ, उससे कभी तुम्हारी भेंट हुई होगी? अङ्गदकी बात सुनकर रावण सकुचा गया (और बोला) हाँ, बाली (एक) बन्दर था मैं यह जानता हूँ।

अंगद तहीं बालिकर—

हे अङ्गद, बाली का पुत्र तू ही है! अपने कुलका नाश करने के लिये तू बाँसों की आग होकर उत्पन्न हुआ है। वह गर्भ क्यों नहीं गिर गया जिसमें तुम पैदा हुए? जो तुम अपने मुँह से तपस्वी का दूत कहलावे?

अब कहु कुसल जसि—

अब कह बाली कुशल से तो है वह कहाँ है? तब अङ्गदने हँस कर कहा,—दस दिन बीत जानेपर तुम बाली के पास जाकर वहीं मित्रको छातीसे लगाकर उससे कुशल पूछ लेना।

रामविरोध कुसल—

रामचन्द्रजीके साथ वैर करनेसे जैसी कुशल होती है, वह सब तुझे वही (बाली) सुनावेगा। अरे शठ, सुन, भेद उसी के मनमें होता है, जिसके हृदयमें रघुनाथजी नहीं रहते।

हम कुल-घालक—

हे दशानन, सच है हम तो कुलके नाशक और तुम कुलके पालक हो! ऐसी बात तो अन्धा और बहरा भी नहीं कहेगा, फिर तुम्हारे तो बीस कान और बीस नेत्र हैं।

सिव विरंचि—बिहरु = फटी।

शिव, ब्रह्मा, देवता और मुनियोंके समुदाय जिनके चरणोंकी भक्ति चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुलको डुबो दिया, ऐसी बुद्धि होनेपर भी तेरी छाती नहीं फट जाती?

सुनि कठोर बानी—

बानर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेर कर कहने लगा,—अरे दुष्ट, तेरे सब कठोर वचन इसलिये सहता हूँ कि मैं नीति-धर्म को जानता हूँ अर्थात् दूतको मारना, नीति और धर्म के विरुद्ध है, इसीलिये तू अभी तक जीवित है।

कह कपि धर्मसीलता—

अङ्गद ने कहा,—तुम्हारी धर्मशीलता हमने सुनी है कि तुमने परायी स्त्री चुरायी है। दूत की* रखवाली तो आँखों देखी है, ऐसा धर्मव्रतधारी तू डूबकर क्यों नहीं मर जाता?

---

*रामचरितमानस के अनुसार दूत (हनुमानजी) ने तेरी रखवारी आँखों देखी है, उन्हें मारने के लिये तूने विविध योद्धा भेजे, पूँछमें आग लगवा दी। इस तरह नीति धर्मका पालन अच्छी तरहसे किया। दूसरी बात किसी किसी रामायणमें यह भी लिखी है कि जिस समय अंगद और रावण की बातचीत हो रही थी, उसी समय कुबेरका भेजा हुआ एक दूत आया। उसने कुबेरका संदेशा कहा कि रामचंद्रजीसे युद्ध न करके सुलह कर लीजिये, उनके वैरसे कल्याण न होगा। रावणने क्रोधित हो उस दूतको तुरंत मार डाला। वही अंगद कहते हैं कि तू जैसी दूत-रक्षा करता है, उसे मैंने आँखसे देखा है।

पुनि नभसर मम—

फिर आकाशरूपी सरोवरमें, मेरे हस्त-समूह-रूपी कमलोंपर वास करके कैलाश पर्वतके सहित शिवजी हंसकी तरह से शोभित हुए हैं। अर्थात् जिन भुजाओंने शिवजी सहित कैलाश को उठा लिया है, उनके सामने तुम्हारे मालिक चीज ही क्या हैं ?

तुम्हरे कटक मांझ सुनु—कटक = सेना।

अरे अङ्गद, सुन, यह तो बता, तुम्हारी सेना में से कौनसा ऐसा योद्धा है, जो मुझसे भिड़ेगा ? तेरा स्वामी तो स्त्री-वियोग से बलहीन हो गया है और उसका छोटा भाई बड़े भाईके दुःख से दुखी और उदास है।

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम—कूलद्रुम = किनारे के पेड़।

तुम और सुग्रीव दोनों नदीके किनारेके वृक्षकी तरह हो अर्थात् जैसे जब नदी चढ़ती है तो किनारे वृक्षों को बहा लेजाती है। ऐसे ही जब लड़ाई होगी तब तुम्हारा पता भी न चलेगा। और हमारा छोटा भाई विभीषण बड़ा ही डरपोक है। जामवन्त मन्त्री अत्यन्त बूढ़ा है, वह अब युद्ध के लिए कैसे उद्यत होगा ?

सिल्प कर्म जानत नल—

नल और नील तो केवल शिल्प-कर्म (पत्थर जोड़ना, मकान बनाना) जानते हैं, हाँ एक बन्दर बड़ा बलवान है, जो पहले यहाँ आया था जिसने नगर को (लंका) जला दिया था। (रावण की बात) सुन वालीकुमार हँसकर बोले,—

सत्य वचन कहु निसिचर—

हे निशिचरनाथ (राक्षसराज) सच्ची बात कहो, क्या सच-मुच उस बन्दरने लङ्कापुरीको जलाया था ? रावणकी नगरी को एक छोटासा बन्दर जला दे, ऐसी बात सुनकर कौन सच मानेगा !

जो अति सुभट सराहेहु—

हे ! रावण वड़ा योद्धा समझकर जिसकी तुम बड़ाई कर रहे हो वह सुग्रीव का (एक) छोटा सा हरकारा (इधर उधर दौड़ने वाला दूत) है। जो बहुत चलता है, वह वीर नहीं होता, हमने तो उसे यहाँ केवल खबर लेनेको भेजा था।

सत्य नगर कपि—जारेऊ = जलाया। आयसु = आज्ञा।

मैंने जाना कि सचमुच वन्दर ने स्वामी की आज्ञा पाये विना नगर को जला दिया था इसी डर के मारे वह छिप रहा है और फिर लौट कर अपने स्वामी सुग्रीव के पास नहीं गया।

सत्य कहेहु दसकंठ—कोह = क्रोध

हे दशकण्ठ ! तू सब सत्य कहता है, मुझे भी सुनकर कुछ क्रोध नहीं हुआ। हमारी सेनामें ऐसा कोई वीर नहीं है, जो तुमसे लड़ता अच्छा लगे।

प्रीति विरोध समान—

नीति ऐसी है कि प्रीति और विरोध बराबर वाले से करना, चाहिये। यदि मृगराज सिंह मेंढ़क को मारने लगे, तो उसे क्या कोई अच्छा कहेगा ?

जद्यपि लघुता राम—

यद्यपि तुझे मारना रामचन्द्रजी के लिए छोटी (अपमान जनक) वात है और वड़ा दोष भी है तथापि हे रावण, सुन क्षत्रिय जाति का क्रोध वड़ा भयंकर होता है इसलिए वे तुम्हें मारेंगे ही।

वक्र उक्ति धनु—

अङ्गद की वक्र (टेढ़ी) उक्ति ही मानों धनुप है, और उसके तीव्र वचन ही वाण हैं, उस धनुष पर वचन-रूपी वाण चढ़ा कर रावण के हृदय को अङ्गद ने खूब जला दिया, खूब बींध

दिया। उन वाणों को वीर रावण मानों प्रत्युत्तर-रूपी सँडासी से निकालने लगा—अर्थात् अङ्गदने टेढ़ा बोल कर रावणको शर्मिन्दा किया अब रावण जवाब देकर उन बातों को काटने लगा।

हँसि बोलेउ दसमौलि तब—

तब रावण हँसकर बोला,—बन्दरों में एक भारी गुण होता है, कि जो उनका पालन करता है, उसके हित के लिए वे बहुतसे उपाय करते हैं—कृतघ्न नहीं होते।

धन्य कीस जो निज प्रभु—

वे बन्दर धन्य हैं, जो अपने मालिक के काम के लिये लज्जा त्यागकर जहाँ-तहाँ नाचते फिरते हैं। नाच-कूदकर लोगों को रिझाते और अपने मालिककी भलाई करते हैं और इस धर्मको बड़ी निपुणतासे निबाहते हैं।

अंगद स्वामिभक्त—

हे अङ्गद, तेरी (बन्दरों की) जाति ही स्वामिभक्त होती है, फिर तू अपने स्वामीका गुणगान इस तरहसे क्यों न करे? मैं गुण-ग्राहक और बड़ा चतुर हूँ, इसलिये तेरे कडुवे वचनोंपर कान नहीं देता अर्थात् उनपर ध्यान नहीं देता।

कह कपि तव गुनगाह—

अङ्गद ने कहा,—तुम्हारी गुण-ग्राहकता सच्ची है, उसे पवन-कुमार हनुमान ने भी मुझे सुनाया था। उसने तुम्हारे बगीचेको नष्ट कर दिया, पुत्रको मार डाला, और नगर को जला दिया, तो भी तुमने उसका कुछ अपकार (बिगाड़) नहीं किया।

सोइ बिचारि तव प्रकृति—माषा = खिसियानपन।

हे दशानन, वही तुम्हारी साधु प्रकृति (स्वभाव) ही सोच कर मैंने ढिठाई की है। जो कुछ हनुमानने कहा था, वह आकर मैंने (आँखों) देखा है, तुममें न लज्जा है, न क्रोध और न खिसियानपन ही।

जौं असि मति पितु खायेहु—

हे बन्दर, जो तेरी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तूने अपने पिताको खा लिया, ऐसे वचन कहकर रावण हँसा। अङ्गदने कहा—पिताको तो खा लिया, अब तुझे भी खा लेता पर अभी मुझे कुछ समझ पड़ा है।

बालि विमल जस भाजन—

हे नीच अभिमानी! मैं तुझे बाली के निर्मल यशका पात्र समझकर नहीं मारता हूँ। अर्थात् जब तक तू जीता रहेगा तब तक संसार में यह बात बनी है कि मेरे पिता बालीने तुझको छः महीने तक अपनी बगल में दबा रखा था। हे रावण, कह तो सही, जगत् में कितने रावण हैं? मैंने तो जितने अपने कान से सुने हैं, उन्हें सुन।

बलिहि जितन एकु गयउ—हयसाला = घुड़साला

एक रावण राजा बलिको जीतने पाताल गया था, वहाँ बालकोंने उसे घुड़सालमें बाँध रखा था। सब बालक खिलवाड़में जाकर उसे मारते थे, जब बलिको दया आई तो उसने उसे छुड़वा दिया।

एक बहोरि सहसभुज—

एक रावणको सहस्रार्जुनने देखा, तो इस प्रकारसे दौड़कर उसे पकड़ लिया, जैसे कोई जन्तु-विशेषको पकड़ले। खिलवाड़ करने के लिये उसको वह अपने घर ले आया, तब पुलस्त्य मुनिने जाकर छुड़वाया था।

एक कहत मोहिं सकुच—

फिर एक रावणका वृत्तान्त कहनेमें मुझे बड़ा संकोच होता है, वह बालीकी बगल में रहा था। हे रावण, क्रोध छोड़कर सत्य कहो, इनमें से तुम कौन से हो अर्थात् कहीं ये सब घटनाएँ तुम्हारे साथ तो नहीं घटीं?

सुनु सठ सोइ रावण वल—सुराई = शूरता ।

रावण ने कहा—हे मूर्ख, सुन, मैं वही वलवान रावण हूँ, जिस की भुजाओं की लीलाको महादेवका पर्वत कैलास जानता है और जिसकी शूरता को उमापति शंकर जानते हैं, जिनकी पूजा मैंने अपने मस्तकरूपी फूल चढ़ाकर की है।

सिर सरोज निज करन्ह—त्रिपुरारी = शिव ।

अपने मस्तक-रूपी कमलोंको अपने हाथोंसे उतारकर अनेक बार मैंने शिवजीका पूजन किया है। अरे शठ, मेरी भुजाओंके बल को दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदयमें अब तक शूल हो रहा है।

जानहिं दिग्गज उर—वरिआई = ज़बरदस्ती ।

मेरे हृदयकी कठोरताको दिग्गज जानते हैं, जब-जब मैं जोर-जबरदस्तीसे जाकर उनसे भिड़ा, तब-तब उनके भीषण दाँत, जो कभी न टूटते थे, वे मेरी छाती से लगते ही मूली की तरह टूट गये।

जासु चलत डोलत इमि—जगविदित = संसार-प्रसिद्ध। अलीक-प्रलापी = झूठी डींगें मारने वाला।

जिसके चलनेसे धरती इस प्रकार डगमगाती है, जैसे मतवाले हाथी के चढ़नेसे छोटी सी नाव। मैं वही जग-विदित और प्रतापी रावण हूँ, अरे झूठी डींगें मारने वाले! उस रावण को तूने कान से नहीं सुना ?

तेहि रावन कहँ लघु—खर्व = छोटा ।

उसी रावण को तू छोटा कहता है और मनुष्य (राम) की बड़ाई करता है। अरे बर्बर (बकवादी) छोटे से दुष्ट बंदर मैंने अब तेरा ज्ञान जान लिया।

सुनि अंगद सकोप कह—

अङ्गद यह सुन क्रुद्ध होकर बोले,—अरे अधम अभिमानी,

तू मुँह सँभालकर बोल। सहस्रबाहु की भुजा-रूपी अपार घोर वनको जलाने में जिनका फरसा अग्निके समान है—

जासु परसु सागर खर—खर = तेज़

जिनके परशु-रूपी समुद्रकी तीव्र धारमें अनेक वार असंख्य राजा डूब गये, उन (परशुराम) का गर्व जिन (रामचन्द्रजी) को देखते ही भाग गया, क्यों रे अभागे रावण! क्या वे रामचन्द्रजी मनुष्य हैं?

राम मनुज कस रे सठ—बंगा = व्यंग्य कहनेवाले।

क्यों रे दुष्ट व्यंग्य कहनेवाले, रामचन्द्रजी मनुष्य कैसे हैं? कामदेव (साधारण) धनुर्धीर और गङ्गा (साधारण) नदी कैसे हैं? कामधेनु पशु, कल्पवृक्ष साधारण वृक्ष, अन्नका देना साधारण दान और अमृत साधारण रस कैसे हो सकता है?

वैनतेय खग अहि—वैनतेय = गरुड़। उपल = पत्थर।

हे रावण, गरुड़जी साधारण पक्षी, शेषनाग साधारण सर्प और चिन्तामणि तुच्छ पत्थर तथा वैकुण्ठ साधारण लोकोंमें कैसे हो सकता है? अरे नीचबुद्धि रावण, सुन, क्या रघुनाथजी की अखण्ड भक्ति का लाभ क्या साधारण लाभ है?

सेन सहित तव—

क्यों रे दुष्ट, जो हनुमान सेना-सहित तेरा मान-मर्दन कर, वागीचा उजाड़, नगर जला और तेरे पुत्र अक्षयकुमारको मारकर चला गया, क्या वह साधारण बन्दर है?

सुनु रावन परिहरि—

हे रावण, सुन, चतुराई छोड़कर कृपासागर रघुनाथजीको क्यों नहीं भजता? अरे दुष्ट, यदि तू रामचन्द्रजीका द्रोही हुआ, तो ब्रह्मा और रुद्र भी तेरी रक्षा नहीं कर सकते।

मूढ़ वृथा जनि मारसि—निकट = समूह।

अरे मूर्ख, झूठ-मूठ गाल मत बजा, (शेखी न मार) रामचन्द्रजी

के वैर से तेरा ऐसा हाल होगा कि राम के बाणों के लगने पर तेरे मस्तक-समूह वानरों के सामने धरती पर (कट-कटकर) गिरेंगे।

ते तव सिर कंदुक—चौगान=पोलो का खेल।

तेरे उन मस्तकोंको (लेकर) अनेक भालु और बन्दर मैदानमें गेंदकी तरह खेलेंगे। जब संग्राम में रघुनाथजी क्रुद्ध होंगे और अत्यन्त विकराल बहुतसे बाण छूटेंगे—

तब कि चलिहि अस गाल—परजरा=जल गया।

तब क्या तेरे गाल इसी तरहसे चलेंगे अर्थात् क्या तब भी तू इसी तरह शेखी मारेगा? ऐसा विचारकर उदार रामचन्द्र जी को भज। अङ्गदके वचन सुनकर रावण ऐसा जल गया, मानों जलती हुई प्रचण्ड अग्निमें घी पड़ गया हो।

कुंभकरन सम बन्धु—झारि=सारा।

वह बोला,—मेरा कुम्भकर्ण जैसा भाई और पुत्र इन्द्र का प्रसिद्ध शत्रु मेघनाद है। क्या तूने मेरे पराक्रमको सुना ही नहीं कि मैंने जड़-चेतनमय सारे संसारको जीत लिया था।

सठ साखामृग जोरि सहाई—बारीसा=समुद्र।

अरे शठ, बन्दरोंकी सहायता जुटाकर रामचन्द्र ने समुद्र बाँध दिया, बस, यही, उसकी प्रभुता है न? हे मूर्ख बन्दर, सुन, समुद्रको तो कितने ही पक्षी योंहीं लाँघ जाते हैं, पर वे शूरवीर नहीं हो जाते।

मम भुजसागर बल जल—

मेरे बाहु-रूपी समुद्र बलरूपी जलसे भरे हैं, जिसमें बहुतसे देवता और शूरवीर मनुष्य डूब गये हैं। मेरे ऐसे बीस (भुजा-रूपी) अगाध और अपार समुद्र हैं उनको कौन ऐसा योद्धा है, जो पार पायेगा?

दिगपालन्ह मैं नीर—

अरे दुष्ट! मैंने दिक्पालों से पानी भरवाया है, तू एक

राजाका यश मुझे सुनाता है ! जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कहता है अगर वह तेरा स्वामी सचमुच रणवीर है—

तौ बसीठ पठवा केहि—बसीठ = दूत

तो उसने दूत किस लिये भेजा है ? शत्रुसे प्रीति करते हुए उसे लज्जा नहीं आती ? अरे मूर्ख बन्दर, महादेव के कैलाश पर्वतको मथनेवाली मेरी भुजाओंको देख ! फिर अपने स्वामीकी बड़ाई करना।

सूर कवन रावन—हुत = हवन कर दिये। साखि = साक्षी।

अरे ! रावणके समान शूरवीर कौन है ? जिसने अपने हाथों से अपने सिर काट-काटकर बड़ी प्रसन्नतासे बहुत बार अग्निमें हवन कर दिये, इसके साक्षी गौरीके पति शिवजी हैं।

जरत बिलोकेउँ जबहिं—कपाला = खोपड़ी। अंक = अक्षर।

मस्तकों के जलते समय जब मैंने अपने ललाट में लिखे ब्रह्मा के अक्षरों को देखा और मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु पढ़ी तो ब्रह्मा की बात झूठी जानकर मैं हँसा।

सोउ मन समुझि त्रास नहिं—त्रास=डर। जरठ=बुढ़ापा।

उस बातको जानकर भी मेरे मन में डर नहीं हुआ, क्योंकि मैंने सोचा—ब्रह्मा ने बुढ़ापे की (सठियाई) बुद्धि से भूल कर ऐसा लिख दिया हैं। अरे मूर्ख ! मेरे सामने दूसरे योद्धा के बल का वर्णन लज्जा और विश्वास को छोड़कर बार-बार करता है ?

कह अंगद सलज जग—

अङ्गद ने कहा—हे रावण, तेरे समान लज्जावाला संसार में कोई नहीं है। तेरा सहज स्वभाव ही लज्जावाला है। इसी से तू अपने गुण अपने मुख से कुछ भी नहीं कहता।

सिर अरु सैल कथा चित—सैल=पहाड़। उरघाली=हृदय में छिपा कर।

शिर काटने और पर्वत उठाने की बात तेरे मन में बनी रहती है, इसी से वही तूने बीस बार कही। और भुजाओं के उस बल को तूने हृदय में छिपा रक्खा है, जिनसे सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था! अर्थात् तुम्हारी भुजाओं में इतना बल था तो उन्हें क्यों नहीं जीत लिया था?

सुनु मतिमंद देहि अब—

हे मतिमन्द, सुन, अब पूरा उत्तर दे, क्या शिर काटने से कोई शूर होता है? यदि होता हो तो इन्द्रजाल करनेवाले (बाजीगर) को शूरवीर क्यों न कहा जाय, जो अपने हाथ से सारा शरीर काट डालते हैं।

जरहिं पतंग विमोह बस,—

अरे मतिमन्द रावण, समझकर देख, पतिंगे अज्ञान के वश होकर जलते हैं और झुण्ड के झुण्ड गदहे बोझ ढोते हैं, पर वे शूरवीर नहीं कहलाते।

अब जनि बत बढ़ाव खल—

अरे दुष्ट, अब बातों को मत बढ़ा, अभिमान को त्याग दे और मेरी बात सुन। हे दशानन, मैं दूत के काम के लिये नहीं आया हूँ। रघुनाथजी ने ऐसा सोचकर मुझे भेजा है।

बार बार असि कहइ—गजारि=गज का शत्रु, शेर।

कृपालु रामचन्द्रजी ने बार-बार ऐसा कहा है कि गीदड़ को मारने से सिंह का यश नहीं होता। स्वामी के यही वचन मन में समझकर हे शठ, मैंने तेरी कठोर बातें सहन की हैं।

नाहिं त करि मुखभंजन—

नहीं तो तेरा मुँह तोड़कर जबरदस्ती से सीताजी को ले जाता। हे नीच राक्षस, मैं तेरे पराक्रम को जानता हूँ; जो तू सूने में (राम लक्ष्मण के न रहने पर) परायी स्त्री को हर लाया है।

तैं निसिचर-पति—

तू राक्षसों का राजा है, इसका तुझे बड़ा अभिमान है और मैं रघुनाथजी के सेवक (सुग्रीव) का दूत हूँ। यदि मैं रामचन्द्रजी के अपमान से न डरता, तो तेरे देखते देखते ऐसा खेल करता।

तोहिं पटकि महि सेन—

अरे शठ, तुझे धरती पर पछाड़कर और तेरी सेनाको मार कर और तेरे नगर को चौपट करके तेरी स्त्रियों सहित जनक-नन्दिनी को ले जाता।

जो अस करउँ तदपि न—कौल=वाममार्गी, शराबी।

यदि ऐसा करूँ तो भी कुछ बड़ाई नहीं है, क्योंकि मुर्दे को मारने में कुछ बहादुरी नहीं होती। वाममार्गी या शराबी, कामी, कृपण (कंजूस), महामूर्ख, अत्यन्त दरिद्री, कलङ्की और अत्यन्त बूढ़ा—

सदा रोगबस संतत—

सदा-रोगी, निरन्तर क्रोध करनेवाला, विष्णु से विमुख, वेद तथा सज्जनों का विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करने-वाला, दूसरे की निन्दा करनेवाला और पापों की खान, ये चौदह प्राणी जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं।

अस बिचारि खल बधउँ न—दसन=दांत।

हे खल, मैं ऐसा विचारकर तुझको नहीं मारता। परन्तु अब

मुझे क्रोध मत उत्पन्न करा। यह सुन, रावण क्रुद्ध हो—होठों को दांतों से चबाकर हाथ मलता हुआ बोला—

रे कपि अधम मरन अब—

अरे नीच बन्दर, अब तू मरना चाहता है, तू छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। हे जड़मति बन्दर, जिसके बल पर तू कड़वी बातें बकता है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि और तेज कुछ भी नहीं है।

अगुन अमान विचारि—

उस राम को गुणहीन और मानरहित (जिसकी प्रतिष्ठा न हो) विचारकर उसके पिता ने वनवास दे दिया। उसे वह दुःख और स्त्री-वियोग का दुःख है साथ ही रात-दिन का मेरा डर लगा है।

जिन्हके बल कर गर्व—

जिनके बल का तुझको गर्व है, उन जैसे अनेक मनुष्यों को राक्षस दिन-रात खाते रहते हैं। मूर्ख हठ छोड़कर (इस बात को) समझ।

जब तेहि कीन्ह रामकै—

जब उसने रामचन्द्रजी की निन्दा की, तो अङ्गद अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। क्योंकि विष्णु और शङ्कर की निन्दा को जो कान से सुनते हैं; उनको गोहत्या के समान पाप होता है।

कटकटान कपिकुंजर—

वानरों में हाथी के समान अंगद ने जोर से दांत कटकटाये और तड़पकर उसने अपने भुज-दण्डों को जोर से धरती पर ऐसा मारा कि धरती मानों डगमगाने लगी और सभासद गिर गये, वे भयरूपी वायु से ग्रस्त हो भाग चले।

गिरते संभारि उठा दसकंधर—

रावण भी गिरते-गिरते सँभलकर उठा, पर उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट धरती पर गिर पड़े। उनमें से कुछ रावण ने लेकर अपने सिरों पर सजाये और कुछ अङ्गद ने उठाकर प्रभु रामचन्द्रजी के पास फेंक दिये।

आवत मुकुट देखि कपि—लूक परन=उल्कापात, तारों का गिरना।

उन मुकुटों को आते देखकर वानर भागे, भ्रमवश वे कहने लगे कि हे विधाता, क्या दिन में ही तारे टूट-टूटकर गिरने लगे। या रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाये हैं, जो बड़े वेग से दौड़े आ रहे हैं।

कह प्रभु हँसि जनि हृदय—किरीट=मुकुट।

श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर कहा—तुम लोग मनमें डरो मत, ये न उल्का हैं और न वज्र, न केतु और न राहू हैं। ये वालि-कुमार अंगद द्वारा फेंके हुए रावणके मुकुट चले आते हैं।

ताकि पवन सुत कर—दिनकर=सूर्य

हनुमानजीने उछलकर उनको हाथसे पकड़ लिया और लाकर श्रीरामचन्द्रजी के पास रख दिया। वे मुकुट सूर्यके समान तेजयुक्त थे, भालू और वानर आश्चर्य से उनका तमाशा देखने लगे।

उहां सकोप दसानन--

वहाँ रावण क्रुद्ध होकर सबसे कहने लगा—अरे इस बन्दर को पकड़ लो और पकड़ कर मारडालो। यह सुनकर अंगद मुस्कारने लगा।

एहि विधि वेगि—

रावणने कहा—इस प्रकारसे सब योद्धा जल्दी दौड़ो और जहाँ रीछ और वानर मिलें, उन्हें खा जाओ। जाकर पृथ्वीको

वन्दरों से रहित कर दो और तपस्वी भाइयों (राम लक्ष्मण) को जीते जी पकड़ लो।

पुनि सकोप बोलेउ जुवराजा—

फिर क्रुद्ध होकर युवराज अंगद बोले,—तुझे गाल बजाते लज्जा नहीं आती ? अरे निर्लज्ज कुलघातक, गला काटकर मर जा, रामके बलको देखकर तेरी छाती नहीं फटती।

रे तिय चोर कुमारगगामी—

अरे स्त्री-चोर, कुमार्गपर चलनेवाले, दुष्ट, पापों की राशि, मन्दमति और कामी ! रे दुष्ट मनुष्य-भक्षक, क्या तुझे सन्निपात (एक तरह का बुखार जिसमें मनुष्य अंड-बंड बकने लगता है) हो गया है, जो दुर्वचन बक रहा है या तू काल के वशमें हुआ है ?

याको फल पावहुगे आगे—

इस बकवास का फल तू आगे पायेगा, जब बानर और भालुओं की चपेटें लगेंगी। अरे अभिमानी, रामचन्द्र मनुष्य हैं, ऐसी वाणी बोलते ही तेरी जीभ (कटकर) नहीं गिर पड़ती ? ये जीभें मस्तकों सहित रण भूमिमें गिरेंगी इसमें संशय नहीं है।

सो नर क्यों दसकंध—

अरे रावण, जिन्होंने एक ही बाणसे वालीको मार डाला, वे मनुष्य कैसे हो सकते हैं ? तू बीस आँखें रखता हुआ भी अन्धा है, हे कुजाति मूर्ख, तेरे जन्मको धिक्कार है।

तब सोनित की प्यास—

अरे नीच राक्षस, रामचन्द्रजी के प्यासे बाणों के समूह तेरे लोहू के प्यासे हैं, अरे नीच राक्षस तू जो कड़ुवा बोलता है इस पर मैं तुझे इसी डर से छोड़ता हूँ कि कहीं रामचन्द्रजी के बाण प्यासे न रह जाँय।

मैं तव दसन तोरिबे

मैं तेरे दाँतों को तोड़ने लायक हूँ, परन्तु क्या करूँ रघुनाथजीने मुझे आज्ञा नहीं दी है। मुझे ऐसा क्रोध होता है कि तेरे दसों मुख तोड़ डालूँ और लङ्काको लेकर समुद्रमें डुबा दूँ।

गूलर फल समान—

(क्योंकि) तेरी लङ्का गूलरके फलके समान है और उसके भीतर तुम राक्षस ऐसे निःशङ्क रहते हो जैसे गूलरमें छोटे-छोटे जीव। मैं बन्दर हूँ, मुझे फल खाते देर नहीं लगती परन्तु क्या करूँ उदार रामचन्द्रजीने मुझे आज्ञा नहीं दी।

जुगुति सुनत रावन—लबारा = झूठा।

ऐसी युक्ति सुनते ही रावण हँसा (और बोला) अरे मूर्ख, इतना झूठ बोलना तूने कहाँसे सीख लिया ? बालीने तो कभी इस तरह गाल नहीं बजाये, तू तपस्वियोंसे मिलकर बड़ा गप्पी हो गया है।

सांचहु मैं लबार—

अङ्गदने कहा—हे बीस भुजा वाले ! मैं सचमुच ही झूठा हूँ, जो तेरी दसों जीभें नहीं उखाड़ता। रामचन्द्रजी के प्रताप को समझ कर क्रुद्ध अङ्गद ने प्रतिज्ञा करके सभाके बीच में अपना पाँव रख दिया।

जौं ममचरन सकसि—

अरे शठ, यदि तू मेरे पाँवको हटा सके, तो रामचन्द्रजी लौट जायँगे और मैं सीताजीको* हार जाऊँगा। इस पर रावण ने

---

* सीताजी को हार जाने की बाजी लगाने का अङ्गद को क्या अधिकार था लोग ऐसी शंका करते हैं। परन्तु अङ्गदको रामचन्द्रजीने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। अंगद राजदूत होकर और सब अधिकार प्राप्त करके रावणकी राज-सभामें गये थे। ऐसी दशामें वे जो कुछ कहते थे,

कहा—हे शूरवीरो, सुनो, इस बन्दरका पैर पकड़कर इसे पृथ्वी पर पछाड़ दो।

इन्द्रजीत आदिक—

मेघनाद आदिक बहुतसे योद्धा, प्रसन्न होकर जहाँ-तहाँसे उठे। वे अंगद पर झपटते, बहुत जोर लगाते और बहुत से उपाय करते थे परन्तु अङ्गदका पाँव नहीं हिलता, तब शिर नीचा करके (अर्थात् लज्जित होकर) वे अलग बैठ जाते।

पुनि उठि झपटहिं—सुरआराती=देवताओं के शत्रु, राक्षस, उरगारी=सापका शत्रु, गरुड़।

कागभुशुण्डिजी कहते हैं,—हे गरुड़जी, राक्षस फिर उठकर झपटते और बल लगाते थे पर अंगदका पैर इस तरह से नहीं हटता था जैसे कुयोगी (असंयमी) मनुष्य, मोहरूपी वृक्ष को (हृदय रूपी भूमि में से) नहीं उखाड़ सकते।

कोटिन्ह मेघनाद सम—

मेघनादके समान करोड़ों योद्धा प्रसन्न होकर उठे। सब झपटते थे, परन्तु जब अङ्गदका पैर न हिलता था, तब वे शिर झुकाकर बैठ जाते थे।

भूमि न छाड़त कपिचरण—

जैसे करोड़ों विघ्नों के होने पर भी सन्तजनोंका मन नीति नहीं छोड़ता ऐसेही अंगदका चरण पृथिवीको न छोड़ता था, यह देखते ही शत्रुका घमंड भाग गया।

वह अधिकारपूर्ण था। दूसरे वे रामचन्द्रजी को भगवानका अवतार समझते थे। ऐसी दशामें उनके पाँवको हिला ही कौन सकता था? दूसरे वे रावण के सिवा सभी राक्षसों को अपने से निर्बल समझते थे, जो वास्तव में उनके पाँव को हिला भी न सके। तीसरे रावण को इस घटना द्वारा वे चेतावनी देना चाहते थे, जैसा कि उन्होंने पीछे से रावण के उठने पर किया भी।

कपि बल देखि सकल हिय—

अङ्गद का बल देखकर जब सब राक्षस अपना दिल तोड़ बैठे, तब अङ्गदके ललकारने पर रावण स्वयं उठा। चरण पकड़ते ही वालीपुत्र अंगद कहने लगे.—मेरे चरण पकड़ने से तेरा उद्धार न होगा।

गहसि न रामचरन सठ—श्री = शोभा, कान्ति।

अरे दुष्ट, तू जाकर श्रीरामचन्द्रजी के पैर क्यों नहीं पकड़ता! यह सुनते ही रावण मन में अत्यन्त सकुचाकर लौट पड़ा। रावण का तेज फीका पड़ गया, उसकी शोभा जाती रही, जैसे मध्याह्नके समय चन्द्रमा फीका पड़ जाता है।

सिंहासन बैठेउ सिर—

रावण सिर नीचा कर सिंहासनपर बैठ गया, मानों उसने सारी सम्पत्ति खो दी हो। श्रीरामचन्द्रजी जगतकी आत्मा और प्राण-नाथ हैं, उनसे विमुख होने पर विश्राम कैसे मिल सकता है?

उमा रामकी भृकुटि बिलासा—कुलिस = वज्र।

शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती श्रीरामचन्द्रजीके भृकुटि-विलाससे यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट हो जाता है। जो तिनकेको वज्र और वज्रको तिनका बना देते हैं भला बतलाओ उनके दूतकी प्रतिज्ञा, कैसे टल सकती है?

पुनि कपि कही नीति विधि नाना—

फिर अङ्गदने अनेक तरह की नीति कही, परन्तु रावणका काल समीप आ गया था, इसलिये उसने एक न मानी। राजा वालीके पुत्र अंगदने शत्रुके अभिमानको चूर्ण कर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का सुयश सुनाया और वे यह कहकर चल दिये कि रण-क्षेत्र में तुझे खिला-खिलाकर यदि न मारूँ तो अभी अपनी बड़ाई क्या करूँ?

सूक्ति सुमन

रामचरण अवलंब—अवलंब=सहारा । परमारथ=मोक्ष, सुख । वारिद=बादल ।

तुलसीदास कहते हैं कि राम के चरण के सहारे के बिना मोक्ष की आशा करना ऐसे ही व्यर्थ है जैसे कि कोई वर्षा की बूँद को पकड़ कर आकाश में उड़ना चाहे (तो उसका प्रश्रिम व्यर्थ होगा ।)

स्वारथ परमारथ सकल—तुलसीदास कहते हैं कि जब केवल एक (रामचन्द्र जी) की ओर ध्यान लगाने से स्वार्थ और परमार्थ सब सुगमता से मिल जाते हैं, तब दूसरों के (दूसरे देवताओं के दरवाजे पर जाकर दीनता दिखाना (माँगना, उपासना करना) तुझे उचित नहीं है ।

जहां राम तहां काम नहिं—जहाँ राम हैं वहाँ कोई इच्छा नहीं रहती, और जहाँ इच्छाएँ बनी हैं, वहाँ राम नहीं रहते । तुलसीदास कहते हैं ये दोनों इस प्रकार कभी एक साथ नहीं होते जैसे कि सूर्य और रात कभी एक साथ नहीं रहते ।

तुलसी कहत विचारि—बिसद=विशद, स्वच्छ । अमान=मान रहित, अभिमान शून्य । सरिस=समान । रुचि=पवित्र । आन= और, दूसरा ।

तुलसीदास विचार कर कहते हैं कि राम के समान कोई दूसरा गुरु नहीं है, जिसकी कृपा से रुचि पवित्र हो जाती है और अभिमान रहित स्वच्छ ज्ञान पैदा होता है ।

वरु मराल=मराल=राजहंस । मानस=मानसरोवर । घाम=गरमी ।

चाहे राजहंस मानसरोवर को छोड़ दे, चाहे चंद्रमा ठंढे

पन को छोड़ दे, चाहे सूर्य गरमी को छोड़ दे, (जीव चाहे) मोह मद आदि को छोड़ दे परन्तु तुलसीदास राम को नहीं छोड़ेगा। कहीं-कहीं 'मोह मदादिक के तजै' की जगह 'मोर मदादिक कै तजे' पाठ है। उसका अर्थ होगा कि चाहे मोर (वर्षा ऋतु) में मदमत्त होना छोड़ दे।

आसन दृढ़—जोय=स्त्री।

चाहे आसन (समाधि) दृढ़ हो, चाहे आहार खानपान) नियमित हो, तथा बुद्धि और ज्ञान भी चाहे ठीक हों, परन्तु तुलसीदास कहते हैं, ये सब चीज़ें (राम की) उपासना के बिना ऐसे ही हैं जैसे पति के बिना स्त्री। अर्थात् राम की उपासना के बिना ज्ञान आदि की कोई कीमत नहीं।

स्वामी होनो—गाडर=भेड़

स्वामी होना आसान है पर दास होना बड़ा कठिन है। ऊन के लिए भेड़ को लाये थे पर वह भी आकर कपास चरने लगी—अर्थात् आकर मालिक बन बैठी।

हित सन हित—हित=हितू, प्रेमी, मित्र। रति=प्रेम। सन=से। विहाय=छोड़कर।

तुलसीदास कहते हैं कि मित्रके साथ मित्रता,और रामके साथ प्रेम करना तथा शत्रुओं से भी शत्रुता छोड़ कर संसारसे उदासीन रहना यह रामभक्तका सहज स्वभाव होता है।

तुलसीराम कृपालु—पीत=मोटा।

तुलसीदास कहते हैं कि कृपालु राम से (बिना किसी छल कपट के) अपने गुण दोष कहदो। इससे दीनता दुर्बल होजायगी अर्थात् कायरता दूर होजायगी, और संतोष खूब बढ़ जायेगा।

सब संगी बाधक—बाधक = रुकावट डालने वाला। साधक = जिससे कोई कार्य सिद्ध हो, कार्य सिद्धि में सहायक।

सब साथी कार्यसिद्धिमें रुकावट डालने वाले हो गये कोई भी कार्य पूरा करने में सहायक न हुआ। इसलिये तुलसीदास कहते हैं कि कृपालु रामद्वारा ही अगर भली होगी तो होगी।

तुलसी मिटइ न—कल्पना = इच्छा। कल्पतरु = कल्पवृक्ष, एक प्रकारका पेड़ जो स्वर्ग में होता है, उससे जो कुछ माँगा जाय वही मिल जाता है। द्रवई = पसीजेंगे। नाह = नाथ स्वामी।

तुलसीदास कहते हैं कि कल्पवृक्ष की छाँह में, चले जाने पर भी तब तक इच्छाएँ नहीं मिटेंगी जब तक कि सीतापति रामचन्द्र कृपा करके नहीं पसीजेंगे—अर्थात् जब तक रामचन्द्रजी कृपा न करेंगे।

लगन मुहूरत—काहि = किसी चीज को। दाहिने = अनुकूल।

तुलसीदास लग्न, मूहूर्त, योगबल (आदि किसी चीज) को नहीं गिनता। उसका यह मत है कि जिसके राम अनुकूल हो गये उसके सभी अनुकूल होगये (फिर कोई विघ्न नहीं रहता)

डोलत विपुल—डोलत=घूमते फिरते हैं। विपुल=बहुत से। विहंग=पक्षी। पोखरिन=जोहड़,छोटे छोटे तालाब। नवल=अद्-भुत। दस चारि=चौदह।

जङ्गल में कितने ही पक्षी घूमते फिरते हैं और जोहड़ों का पानी पीते फिरते हैं। परन्तु हे चातक! चौदहों लोकों में केवल तू ही निर्मल यश वाला है (और कोई पक्षी नहीं) तेरे ही प्रण की सब प्रशंसा करते हैं।

मुख मीठे मानस—मानस=मन। सलिल=जल। वलित= आच्छादित, छाया हुआ।

कोकिल, मोर और चकोर मुखके बड़े मीठे हैं, बहुत

मीठा बोलते हैं, परन्तु मन के मैले (पापी) हैं। हे प्यारे चातक तेरा ही स्वच्छ यश रूपी जल सारे संसार में छाया हुआ है।

मांगत डोलत है नहीं—डोलत = फिरता। अनत=अन्यत्र, दूसरी जगह।

जो इधर-उधर माँगता नहीं फिरता और घर छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाता। ऐसे चातकरूपी भगतकी तुलसीदास उपमा देते हुए लज्जित होते हैं, अर्थात् उपमा नहीं दे सकते।

है अधीन जाँचै नहीं—अधीन=दास। नाइ=झुकाकर। मानी=अभिमानी, घमंडी। वारिद = बादल।

दास होकर माँगता नहीं, न सिर झुकाकर (नम्रता दिखा कर) ही लेता है। ऐसे अभिमानी माँगने वाले (चातक) को बादल के बिना और कौन देता है ?

उपल बरखि—उपल = ओले। तरजि = डराकर। कुलिश = वज्र। चितव = देखता है।

(बादल चातक के ऊपर) ओले बरसाता है, डरा डरा कर गरजता है, कठोर वज्र गिराता है (तो भी) क्या चातक मेघ को छोड़ कर किसी दूसरे की ओर ताकता है ?

बरखि परुख पाहन—बरखि = बरपि, बरसाकर। परुख = परुष, कठोर। पाहन = पाषाण, पत्थर—ओले। जलद = बादल। पच्छ = पंख।

बादल कठोर पत्थर (ओले) बरसाकर पंखों के टुकड़े टुकड़े भले ही करदे पर (प्रेम करने में या अपना प्रण पूरा करने में) चतुर चातक को भूल नहीं करनी चाहिये।

चरग चंगु गत—चरग = बाज। चंगु = चंगुल, पंजा। पीर = पीड़ा, चिन्ता। परबस=दूसरे के अधीन। हाड़=हड्डी।

पर=पंख। पुहुमी-नीर=पृथिवी का पानी, स्वाति नक्षत्रके जलके अतिरिक्त अन्य साधरण जल।

बाजके पंजे में फँसे चातक को अपने नियम (स्वातिनक्षत्र में बरसे हुए जलके अतिरिक्त अन्य जल न छुऊँगा) और प्रेमकी पीड़ा (चिन्ता) रहती है (प्राणोंकी नहीं)। चिन्ता यह सोच कर होती है कि शत्रुके वश में पड़ हुए मेरी हड्डियाँ और पंख पृथिवी के साधारण पानी में न पड़ जायँ।

एक भरोसो—स्वाति सलिल=स्वाति नक्षत्र में बरसा हुआ पानी।

तुलसीदास रूपी चातक का एक मात्र भरोसा, एक मात्र बल और एक मात्र आशा और विश्वास रामचन्द्र रूपी स्वाति नक्षत्र में बरसे हुए पानी पर है।

तुलसी राम सनेह—उपचारु=उपाय, इलाज।

जैसे नौ का पहाड़ा लिखते हुए नौ का अंक कभी कम नहीं होता सदा एक-सा रहता है, तुलसीदास कहते हैं, इसी प्रकार सब उपचार (इलाज) छोड़कर रामचन्द्र से एक-रस स्नेह करो। ९ के अंक को जितनी ही वार गुणा करें उसके अंकों का जोड़ ९ ही रहता है जैसे—९×२=१८, इसमें ८ और १ का जोड़ ९ है। इसी पकार ९×३=२७, इसमें २ और ७ का जोड़ ९ ही है। इसी प्रकार आगे भी होगा, और किसी अंक में यह बात नहीं है।

तुलसी सन्त सुअंबु—सुअंबु=आम। तरु=पेड़। परहेत= दूसरे के लिए। पाहन=पत्थर। हनत=मारते हैं।

तुलसीदास जी कहते हैं कि सन्त लोग आम के पेड़ के समान हैं जो कि दूसरों के लिए ही फूलेत फलते हैं। इधर से

(नीचे से) लोग उन्हें पत्थर मारते हैं और उधर से वे मीठे-मीठे फल देते हैं।

गोधन गजधन—जब मनुष्य के मनमें सन्तोष आजाता है तब गोधन, गजधन (हाथी) वाजिधन (घोड़े) तथा रत्न धन आदि सब धूलि के समान हो जाते हैं—अर्थात् इनकी उसे चिन्ता नहीं रहती।

तौ लगि—तौ लगि = तभीतक। निरास = आशा रहित। तभी तक योगी जगत गुरु है जब तक वह निराश रहता है (अर्थात् जब तक उसके मनमें किसी फल की आशा नहीं होती) जब मन में आशा जग पड़ी तो संसार का गुरु योगी (गुरु नहीं रहता पर) दास बन जाता है।

दुर्जन दरपन सम—दुर्जन सदा दर्पण के समान है इसे हृदय में अच्छी तरह सोचकर देख लो। क्योंकि दोनों की गति सम्मुख (मुँह के सामने) होने पर और होती है और विमुख (मुँह से परे) होने पर और होती है। दुर्जन आदमी जब तक हमारे मुँह के सामने हैं तब तक तो हमें खुश करने की बातें करेगा और जब परे हुआ तो दूसरी तरह की। उसी प्रकार दर्पण जब तक हमारे मुँह के सामने है तब तक तो हमारी प्रतिमा दिखायेगा पर जब विमुख हुआ तो दिखाना बन्द कर देगा।

घर कीन्हें घर—घर करने से (घरकी परवाह करने से—स्त्री पुत्र में आसक्ति रखने से) ही घर होता है, और घर छोड़ने से (स्त्री पुत्र की परवाह न करने से) घर चला जाता है—सम्बन्ध टूट जाता है! तुलसीदास कहते हैं कि घर और वनके बीच में ही गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के बीचमें ही, अर्थात् तपस्वियों की तरह निष्काम होकर— घर में ही प्रेमपुर बसाकर रहो भावार्थ

यह है कि घर में रहते हुए प्रभुभक्ति में चित्त लगा कर रहना ही सर्वोत्तम है।

असन वसन—

असन = भोजन। बसन = वस्त्र। सुत-नारि-सुख = पुत्र और स्त्री का सुख।

भोजन, वस्त्र तथा पुत्र और स्त्री का सुख पापियों के घर में भी होता है। तुलसीदास कहते हैं कि सन्तों का समागम और राम नाम रूपी धन ये दो ही चीजें दुर्लभ हैं (जो किसी किसी को ही मिलती हैं)।

राम कामना हीन—कामना = इच्छा। सकल = सब। कामदाता = इच्छाओं को पूराकरने वाला। अकाम = जिसमें कोई विकार नहीं, जो सदा एकसा रहे, जिसपर दुःख-सुख का प्रभाव न पड़े। अमल = मलरहित स्वच्छ।

श्रीरामचन्द्रजी यद्यपि स्वयं इच्छा से रहित हैं, फिर भी वे भक्तोंकी सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। इसीसे वे परमात्मा अव्यय (सदा एक रस रहने वाले) मल रहित और उदार हैं।

जो करता है करम—बोअनहार = बोने वाला। लुनिहै = काटेगा। निदान = अंत में।

जो कर्म करता है वही उस का फल भोगता है, दूसरा नहीं। जो बोने वाला है वही काटेगा, ऐसे ही, दानी ही अंत में पावेगा दूसरा नहीं।

जग ते रहु —छत्तीस है = ३६ में जिस तरह तीन और छः की आपस में पीठ है इस तरह पीठ करके, अर्थात् विमुख होकर। छः तीन = ६३ में जिस तरह दोनों अंकों का आमने सामने मुख है इसी तरह, सम्मुख मुख करके अर्थात्, अनुकूल होकर।

संसार से विमुख होकर रहना चाहिये और राम के चरणों के

अनुकूल होकर। तुलसीदास कहते हैं कि हृदय में विचार करके देखो यही प्रवीणों का मत है।

आदि म है=शुरू में जिसके 'म' अक्षर है, अंत में भी जिसके 'म' अक्षर है, बीच में जिसके 'र' अक्षर है—अर्थात् मरम (मर्म, भेद,रहस्य)—उसको समझो। इस रहस्य को जड़ जीव सब कोई नहीं समझते केवल चतुर संत ही उस रहस्य को समझते हैं। मूल पुस्तक में 'मध्य रहै' में 'र' और 'है' को मिला देने से अर्थ कुछ समझ नहीं आता,वहाँ 'रहै' के बदले 'र है' होना चाहिए।

आदि द है मध्य—शुरु में जिसके 'द' है बीच में जिसके 'र' है और अंत में जिसके 'द' है वह बात (अर्थात् दर्द, दुख) राम से विमुख पुरुष को होती है, और राम की भक्ति से दूर हो जाती है। मूल पुस्तक में 'दहै' 'रहै' में 'द' 'है' तथा 'र है' को मिला दिया है जिससे अर्थ कुछ समझ नहीं पड़ता। ऐसे ही 'हेत है' के स्थान पर 'होत है' होना चाहिये।

अपने खोदे कूप—(वेदांत का मत है कि संसार वास्तविक नहीं है, अपितु भ्रममात्र है। भ्रम में पड़ा हुआ जीव जो कुछ विचार करता है, उसे ही वह देखता है और वही संसार है। मनुष्य इसी भ्रम से माया का जाल फैलाता है कि उसे उससे सुख मिलेगा, पर अन्त में दुःख ही पाता है) तुलसीदास कहते हैं कि यह संसार सुख देने वाला होगा यही विचार कर सब मनुष्य इस संसार को (सांसारिक बंधनों को) बनाते हैं। (परन्तु अन्त में ऐसे ही दुःख पाते हैं) जैसे अपने ही खोदे कुँए में गिरने से दुःख होता है।

सोई सेमर सोई सुआ—एक बहुत बड़ा वृक्ष जिस के फलों या डोडों में केवल रूई होती है गूदा नहीं।

वही सेमर है और वही तोता है, पर बसंत आने पर (हर

साल निराश होने पर भी) उस पर जा बैठता है (उस मोह के अंधे तोते को यह खयाल नहीं रहता कि इसमें गूदा नहीं अपितु रुई है ।) तुलसीदास कहते हैं कि इस बात को सुनकर संत लोग मोह की महिमा की प्रशंसा किया करते हैं कि अहा ! मोह भी कैसा प्रबल है ।

बिना बीज तरु—भव = हुआ । अकल = जिसके टुकड़े न हों, अखंड, सर्वांग, पूर्ण । अतूल = जो तोला न जा सके ।

बिना बीज के (परब्रह्म राम वा विराट् रूप) एक वृक्ष पैदा हुआ जिसमें शाखा (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) पत्ते (अनेक देवता) और फल फूल (त्रिलोकादि सृष्टि) हैं । इस अपरिमित सब प्रकार से अखंड और अतुल वृक्ष का वर्णन कौन कर सकता है ?

को नहिं सेवत—भव = संसार । बादहिं = व्यर्थ ही । पचत = बहुत परिश्रम करता है, बहुत दुःख सहता है ।

कौन आकर इस संसार का सेवन नहीं करता—इस संसार में नहीं फँसता, और कौन इसका सेवन करके (फँसकर) नहीं पछताता । तुलसीदास कहते हैं कि सब व्यर्थ ही बहुत दुःख सहते है और अपने ही आप नष्ट हो जाते हैं । इस सांसरिक मायाबंधन में सब व्यर्थ फँसते हैं, और फँसकर पछताते हैं, क्षणिक सुख के लिए व्यर्थ ही हैरान होते हैं और अंत में अपने आप नष्ट हो जाते हैं ।

कीर सरिस—कीर (तोते) की तरह बिना अर्थ समझे बूझे वाणी (राम नाम) बोलते है, परन्तु खाँड (उत्तमोत्तम भोजन) खाना चाहते हैं मन तो दिखावे के लिये वैराग्य में लगाते हैं पर घर में राँड (वैश्या) रखे हुए हैं ।

राम चरन परचै नहीं—

रामके चरणों से परिचय (अभिज्ञता) नहीं है और साधुओं

के चरणों में प्रेम (भक्ति) नहीं है, व्यर्थ ही मूँड-मुँडाकर घर छोड़ कर भाँड (झूठे साधु) बन गए हैं।

करम मिटाए मिटत नहीं—

तुलसीदास विचार कर कहते हैं कि कर्म मिटाने पर भी नहीं मिटते। इस प्रकार इस संसार में सार-असार जो कुछ है केवल कर्मों का ही फेर है।

एक किये है—बहुरि = फिर।

जिस प्रकार वायु के झोंके से जल में एक लहर उठती है और उसके धक्के से दूसरी, और दूसरी के धक्के तीसरी शुरू हो जाती है, इसी प्रकार एक काम करने पर दूसरा प्रारम्भ हो जाता है फिर तीसरा शुरू हो जाता है। इस लिए तुलसीदास कहते हैं कि कर्म रूपी तरंग किसी प्रकार नहीं मिटती, अर्थात् एक कर्म के बाद दूसरा कर्म शुरू होजाता है, इस तरह मनुष्य कभी कर्म के बिना रह ही नहीं सकता।

तुलसी जे कीरति—खोई = नष्ट करके। मसि = स्याही, कालिख।

तुलसीदास कहते हैं दूसरे की कीर्ति को नष्ट करके जो अपनी कीर्ति चाहते हैं उनके मुँह में ऐसी स्याही लगती है (उनको इतना कलंकित होना पड़ता है) कि चाहे उसे धो-धो कर मर जाँय तो भी नहीं मिटती।

नीच चंग सम—

अच्छी तरह देख और सुन कर नीच आदमियों को चंग (पतंग) के समान समझो। जिस तरह यदि पतंग को खींचो तो वह आकाश में चढ़ती है और ढील देने पर जमीन पर गिर पड़ती है, इसी तरह नीच आदमी को भी जब तक खींचे रहो—नियन्त्रण में रक्खो—तब तक ठीक काम करता है और जब ढीला छोड़ दो तो काम छोड़ देता है।

रामनाम मनि—जीह = जीभ।

तुलसीदास कहते हैं कि यदि (शरीर के) भीतर और बाहर (दोनों तरफ) प्रकाश चाहता है तो जीभ रूपी दरवाजे की देहली पर राम नाम की मणिरूपी दीपक को रख। यदि किसी मकान के बाहर और अन्दर दोनों तरफ प्रकाश करना अभीष्ट हो तो देहली पर ही दीपक रखना होगा पर शरीर रूपी मकान में साधारण दीपक से प्रकाश नहीं हो सकता उस के लिए तो राम नाम का मणिरूपी दीपक चाहिए।

सूर समर करनी—

सूर (शूरवीर) युद्धक्षेत्र में करनी (कार्य) ही करते हैं, अपने आपको बातें कह कह कर जनाते नहीं हैं। और कायर आदमी रणक्षेत्र में शत्रु को विद्यमान पा कर प्रलाप (बकवाद) ही करते हैं।

तौ लगि हम तें—चाह = इच्छा। परमपद = मोक्ष

तब तक हमसे सब बड़े हैं, जब तक हममें कुछ इच्छाएँ बनी हैं। इच्छारहित आदमी से कहो कौन बड़ा है, वह तो मोक्ष की थाह (पता) पा लेता है।

तुलसी काया खेत है—लुनै = काटता है।

तुलसीदास कहते हैं कि यह काया (शरीर) खेत है; और मन ही किसान है; पाप और पुण्य ये दो बीज हैं; जैसा बोवेगा वैसा ही निश्चय से फल मिलेगा। अर्थात् मन यदि पाप करेगा तो बुरा फल मिलेगा और यदि पुण्य करेगा तो अच्छा फल।

ब्राह्मण बर बिद्या—सुरति = सुरत, स्मरण। पथ-रति = पथ (सन्मार्ग) में प्रीति रखने वाला। अनय-अतीतमति = अन्याय से अपनी बुद्धि दूर रखने वाला। निधान = घर। स्रुति = वेद।

ब्राह्मण विद्या, नम्रता, प्रभुस्मरण तथा ज्ञान का भंडार होता है,

वह सन्मार्ग में प्रेमरखने वाला, अन्याय के रास्ते से दूर रहने वाला दयालु, और वेदों को जानने वाला होता है।

विनय छत्र सिर जासु—व्यभिचार = बुरा या दूषित आचार।

जिसके सिर पर नम्रतारूपी छत्र है, और जो पग-पग पर दूसरों का उपकार करने वाला है, और जो सब बुरे आचारों से रहित है, तुलसीदास कहते हैं वही असली क्षत्रिय है।

वैश्य विजय मगु—मगु = मार्ग, रास्ता। ऐन = घर।

जो वैश्य नम्रता के मार्ग में पैर रखने वाला है, और जो सुन्दर (मीठी) वाणी से कटुता (कड़वेपन) को दूर कर देता है, जो सदा दयालु तथा अच्छी और सरल प्रकृतिवाला है, उसको अचल सुख का भंडार मिलता है।

सूद्र छुद्र पद—विप्र = ब्राह्मण। परिहरे = दूर कर देता है।

जिस शूद्र के हृदय में ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति (प्रेम) है, जिसके मन में समता और अच्छी बुद्धि है और जो सब जीवों को समान समझने वाला है वह अपने छुद्र (क्षुद्र) पदको (छोटे पन को) दूर कर देता है।

सुनत कोटि कोटिन—कोटि करोड़।

केवल करोड़ों की संख्या कहने से या सुनने से एक कौड़ी भी हाथ नहीं लगती। ऐसे ही सब पुराण और वेदों के देखने पर भी प्रायः मनुष्य विवेकरहित रहते हैं।

चाह किये दुखिया—निहचलता = निश्चलता, स्थिरता।

चाह करने पर—इच्छाओं के बने रहने पर—ब्रह्मा आदि

सब कोई दुखी रहते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि स्थिरता—इच्छाओं के पीछे इधर-उधर न भटकने की शक्ति—बड़ी कठिन है, और वह केवल राम की कृपा से होती है। कहा जाता है कि ब्रह्मा के शरीर से एक अत्यन्त सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई, तब वे उस पर मोहित हो उसे ताकने लगे, पर वह उनके चारों ओर घूमने लगी। जिधर वह जाती उधर देखने के लिए ब्रह्मा का एक सिर उत्पन्न होता। इस प्रकार उनके चार मुख हुए और इच्छा-पूर्त्ति के लिए उन्हें कष्ट उठाना पड़ा।

सब विधि पूरण धाम—कटाच्छ = कटाक्ष, तिरछी दृष्टि।

सब प्रकार से पूर्ण और पवित्र धाम वाला राम के सिवाय दूसरा कोई नहीं है। जिनकी कृपादृष्टि मात्र से हृदय में दृढ़ ज्ञान हो जाता है।

सो स्वामी सो वर—वही स्वामी है, वही अच्छा मित्र है, वही सब प्रकार के सुख देने वाला है, वही पिता है, वही माता है, वही आपत्तियों को दूर करने वाला है, और वही बुरे समय का सहारा है।

तुलसी संतन तें सुने—सन्तत = निरंतर, हमेशा।

तुलसीदास कहते हैं कि हमने संतों से हमेशा यही विचार सुना है, कि शरीर और धन सब चंचल हैं, नष्ट हो जाने वाले हैं, संसार में केवल पर उपकार ही युग-युग बना रहता है। अर्थात्—शरीर और धन सब नष्ट होजाता है,पर दूसरों के साथ जो उपकार किया है उसकी कहनी हमेशा बनी रहती है।

होंहिं बड़े लघु समय—समय सह = कालचक्र में पड़कर। बरो = दुर्बल। कूबरो = कुबड़ा। नखत = नक्षत्र, तारे।

कालचक्र के फेर में पड़ कर बड़े आदमी चाहे छोटे हो जाँय तब भी उन्हें दूर नहीं कर सकते, (उनके बिना काम नहीं चलता) क्योंकि महापुरुष छोटे होने पर भी लघु मनुष्यों से बड़े ही रहते हैं। देखिये (द्वितीया, तृतीया आदि तिथियों का) चन्द्रमा बिलकुल दुर्बल और कुबड़ा क्यों न हो तो भी ताराओं से बड़ा ही होता है।

दीरघ रोगी दारिदी—दीरघ रोगी = बहुत देर का रोगी। कटु-वच = कटुभाषी। लोलुप = लालची।

देर का रोगी, दरिद्री, कटुभाषी और लालची ये लोग यदि प्राणों के समान प्यारे हों तो भी त्याग देने योग्य हैं।

विद्या विनय विवेक रति—

विद्या, नम्रता तथा ज्ञान, प्रेम, (भगवान के चरणों में प्रीति) और भक्ति की रीति जिसके हृदय में हो वह सदा राम का भक्त होता है, उसे कोई आपत्ति नहीं आती।

जो मूरख—बोधि किन आये = ज्ञान क्यों न दे आये, क्यों न समझा आये। सुजान = चतुर।

यदि संसार में मूर्ख आदमी उपदेश के योग्य होते तो चतुर श्रीकृष्ण दुर्योधन को क्यों न समझा आये।

रीझ आपनी बूझ पर—महोदधि = महासमुद्र।

जो अपनी ही बूझपर (बुद्धि पर) प्रसन्न रहते हैं—अपनी बुद्धि को सर्वोत्तम समझते हैं, और बिना विचारे ही दूसरों पर बिगड़ उठते हैं, वे मोहरूपी महासागर में मछलियों के समान निमग्न पुरुष दूसरे के उपदेशों को नहीं मानते।

तुलसी तीनि—हित = हितू, मित्र। अनहित = शत्रु। परे मामला = काम पड़ने पर, मुकद्दमा बनने पर।

तुलसीदास कहते हैं कि तीन तरह से मित्र और शत्रु की पहचान होती है—एक परवश होने पर, दूसरा पड़ोस में बसने पर और तीसरा किसी मुकद्दमे के बनने पर।

जो मधु दीन्हें—माहुर = ज़हर । मधु = शहद ।

जो शहद देने से ही मर जाय उसे कभी ज़हर देकर नहीं मारना चाहिये—अर्थात् जो मीठे वचनों से ही वशीभूत हो जाय उसे कठोर वचन कहना व्यर्थ है । संसार को जीतने पर भी परशुराम ने रामचन्द्र जी के वचनों के सामने हार मानी, और परशुराम जी के सामने (दीनता दिखाने के कारण) हार मानने पर भी रामचन्द्र अपने मीठे वचनों से जीत गये ।

रोस न रसना खोलिए—रोस = रोष, क्रोध । रसना = जिह्वा हित = हितकर ।

क्रोध में तलवार भले ही निकाल लीजिए पर जिह्वा न खोलिए, अर्थात् कटुवचन न बोलिए । वचन विचार-पूर्वक ऐसे बोलिए जो सुनने में भी मीठे हों और परिणाम में भी हितकर हों ।

तुलसी मीठी अमिय—कालकूट = ज़हर । सुधा = अमृत । सुधाकर = चन्द्रमा । मीच = मृत्यु ।

तुलसीदासजी कहते हैं कि अगर समय पर माँगने से मौत मिल जाय तो वह अमृत से भी बढ़कर मीठी जान पड़ती है । परन्तु असमय में (जब आवश्यकता नहीं तब) यदि अमृत और चन्द्रमा भी मिलें तो वे भी कालकूट विषसे बुरे हैं ।

दंभ सहित कलि धरम—दंभ = पाखण्ड । छल = धूर्तता । सनेह = प्रेम । अनुहरत = पीछे चलता है ।

कलियुग में सब धर्म पाखंड-युक्त होते हैं, सब व्यवहार (कारोबार) धूर्ततापूर्ण होते हैं । सब प्रेम-व्यवहार स्वार्थवश होते हैं और सब आचार लोगों की रुचि के पीछे चलते हैं ।

का भाखा का संस्कृत—कामरि = कम्बल । कुमाच = दुशाला ।

(राम गुण गान के लिए) सच्चा प्रेम चाहिए भाषा चाहे

हिन्दी हो अथवा संस्कृत इस से क्या ? अर्थात् दोनों में किसी में भी गुणगान किया जा सकता है। यदि कम्बल काम में आ जाय अर्थात् कम्बल से ठीक तरह काम निकल जाय तो दुशाला ले कर क्या करोगे ? (उस में व्यर्थ के ही ज्यादा दाम लगेंगे)

रैनको भूपन—इन्दु=चन्द्रमा।

रात का भूषण चन्द्रमा है, अर्थात् रात की शोभा चन्द्रमा से है, दिन का भूषण सूर्य्य है; दास का भूषण भक्ति है अर्थात् भक्ति से दास की शोभा है; और भक्ति का भूषण ज्ञान है।

ग्यानका भूपन—ज्ञान का भूषण ध्यान है, ध्यान का भूषण त्याग है और त्याग का भूषण वैराग, निर्मल, शांतिपद (वासनाओं आदि की निवृत्ति) प्राप्त करना है।

तुलसी मिटै—मोहतम=मोहरूपी अन्धकार। कोटि=करोड़ों। रवि-कुल रवि=सूर्यकुल के सूर्य। ग्राम=समूह।

तुलसीदास कहते हैं कि करोड़ों उपाय करने पर भी मोहरूपी अन्धकार नहीं मिटता। सूर्यकुल के सूर्य रामचन्द्र जी के बिना हृदय-कमल नहीं खिलता।

सोइ ग्यानी—तुलसीदास कहते है कि वही ज्ञानी है, वही गुणी है, वही दाता है और वही ध्यान करने वाला है, जिस के चित्त से राग-द्वेष नष्ट होगया हो।

सरलता में अनुराग

पुरते निकसी रघुबीर बधू—निकसी=निकली। मग में डग द्वै दये=रास्ते में दो कदम दिये अर्थात् थोड़ी दूर चली। भरि भाल=सारे ललाट पर। जल की कनी=पसीने की बूँदें।

मधुराधर=कोमल अधर-पुट (होंठ)। वै=दोनों। केतिक=कितनी दूर। कितहै=कहाँ पर। आतुरता=व्याकुलता, घबराहट। चारु=सुन्दर। अँखियाँ चलीं जल च्वै=आँखों से आँसू वह चले।

सीताजी (पहले पहल इस प्रकार पैदल) नगर से बाहर निकली थीं। (रामचन्द्र जी के समान वीर पुरुष की पत्नी होने के गर्व से) दो चार कदम धैर्य धारण करके चलीं। इतने ही परिश्रम से उनके सारे ललाट पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं, और अति कोमल दोनों अधर-पुट (होंठ) सूख गये। अत: पूछने लगीं कि अब कितनी दूर और चलना है? पर्णकुटी कहाँ पर बनाओगे? सीताजी की ऐसी व्याकुलता देख कर रामचन्द्रजी की अतीव सुन्दर आँखों से आँसू टपकने लगे।

जल को गए लक्खन हैं लरिका—परिखौ=बाट देखो। घरीक=घड़ी एक, कुछ देर तक। पसेउ=पसीना। बयारि करौं=हवा करूँ,पंखा झलूँ। भूभुरि=गरम धूल। डाढ़े=दग्ध, जले हुए। नाह=नाथ,पति। कंटक=काँटे। विलोचन=आँखें।

सीताजी रामचन्द्रजी से कहती हैं कि लक्ष्मण जल लाने को गये हैं, अभी वे बालक ही हैं, (अत: देर में आएँगे) हे प्यारे, थोड़ी देर इस छाँह में खड़े होकर उनकी प्रतीक्षा कीजिए। आप भी थक गये हैं इस लिए मैं आप के पसीने को पोंछकर आप को पंखा झल दूँ और गरम धूलि से जले हुए आपके पैरों को धो डालूँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी इन वचनों से सीताजी को थकी हुई जानकर, देर तक बैठ कर काँटे निकालते रहे। सीताजी अपने पर स्वामी (रामचन्द्रजी) का स्नेह जान कर प्रेम से पुलकित होगईं, और उनकी आँखों से प्रेमाश्रु वह चले।

कबीर

वैराग्य में अनुराग

मन लागो—हे यार, मेरा मन तो फकीरी में लग गया है, जो सुख मैंने प्रभु के नाम के भजन में पाया है वह सुख अमीरी में नहीं है । सब का भला बुरा—ऊँच नीच वचन—सह लो और गरीबी में ही गुजारा करो । हमारा रहना तो प्रेम नगर में है और सबूरी (सन्तोष) से सब भली होती आई है । हाथ में कूँडी है, बगल में सोटा है पर चारों दिशाओं में—सर्वत्र ही--अपनी जागीर है, जहाँ डेरा लगा दो वही अपना स्थान है । हे जीव ! आखिर यह शरीर खाक में मिल जायगा सो क्यों मगरूरी (घमण्ड) में फिरता है ! कबीर कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो, साहब (परमात्मा) सन्तोष में ही मिलते हैं ।

प्रोत्साहन

सूर संग्राम—खेत = युद्ध का मैदान । साही = शाही, सवार, सैनिक । समसेर = तलवार । जूझिहै = लड़ेगा । भाजै = दौड़ जाते हैं ।

शूरवीर संग्राम को (युद्ध को) देख कर भागता नहीं है, जो देख कर भाग उठता है वह तो वीर नहीं है । काम, क्रोध, मद (अभिमान) और लोभ आदि (भीतर के शत्रुओं) से उसे घमासान युद्ध के मैदान में लड़ना है । सील (उत्तम आचरण)

सत्य और सन्तोष उस युद्ध में सिपाही हैं और (प्रभु के) नाम की तलवार वहाँ खूब चलती है (शील, सत्य, सन्तोष तथा प्रभु के नाम द्वारा काम क्रोध, मद, लोभ से लड़ा जा सकता है)। कबीर कहते हैं कि उस मैदान में कोई शूरवीर ही लड़ेगा, कायरों की भीड़ तो वहाँ से तुरन्त ही भाग उठती है

सेवक और दास का अंग

सेवक सेवा में रहै—जो सेवक सेवा में लगा रहे—जो प्रभु की भक्ति में लीन रहे, वही सेवक कहाता है। कबीरदास कहते है कि सेवा के बिना कभी कोई सेवक नहीं हो सकता। कबीरदास अपने प्रभु (परमात्मा) की उपासना दास भाव से करते हैं, सेवक से उनका तात्पर्य प्रभु भक्त से है।

सेवक स्वामी एक मति—मति = बुद्धि, राय, सलाह। भाय = भाव।

सेवक और स्वामी एक राय के होते हैं, जो उनकी सलाह आपस में मिल जाय। प्रभु चतुराई पर—नौकर की कुशलता पर नहीं रीझते अपितु मन के भावों पर रीझते हैं।

द्वार धनी—नेवाजई = कृपा करेगा; अनुग्रह करेगा।

धनी के दरवाजे पर पड़े रहो, उसी की ठोकरें खाओ, जो दरवाज़ा छोड़ कर और कहीं नहीं जाओगे तो कभी न कभी तो धनी अवश्य कृपा करेगा।

निरबंधन बँधा रहे—निरबंधन = बिना किसी बंधन के।

जो बिना किसी बंधन के भी हमेशा बँधा रहता है, अर्थात् अपनी इच्छा से ही प्रभु की चाकरी में लगा रहता है, और जो प्रभु के बंधन में—नियंत्रण में—रहता हुआ भी स्वतंत्र है, इसी प्रकार जो कर्म करते हुए भी उन कर्मों में लिप्त नहीं होता वह दास कहाता है।

गुरू समरथ सिर पर—ऋद्धि=समृद्धि, बढ़ती। सिद्धि= सफलता, कामयाबी। कहा=क्या।

जब समर्थ गुरु तेरे सिर पर खड़े हैं, तो हे दास! हे प्रभु भक्त! तुझे किस चीज की कमी है। समृद्धि और सफलता, (बढ़ती और कामयाबी) तेरी सेवा करती हैं, और भक्ति तेरा साथ नहीं छोड़ती।

दास दुखी तो हरि दुखी—आदि और अंत तीनों कालों में यदि दास (प्रभु भक्त) दुखी है, तो प्रभु भी दुखी रहते हैं। भक्त के दुख को देख कर प्रभु एक पल में ही प्रकट होकर एक क्षण में उसे निहाल कर देते हैं।

दास धनी याचै नहीं—याचना=मांगना। घात=चोट, मार।

जो दास प्रभु की दिन रात सेवा करता है, पर कभी कुछ मांगता नहीं—अर्थात् बिना किसी फल की इच्छा के निष्काम सेवा करता है, कबीरदास कहते हैं उस सेवक को काल भी नहीं मारता।

मुक्ति मुक्ति मांगो—मैं मुक्ति नहीं माँगता, मुझे तो केवल अपनी भक्ति का—अपने चरणों में प्रीति का—दान दो। मैं और किसी से कुछ नहीं माँगता हूँ, केवल तुझ से ही रात दिन माँगता हूँ।

धरती अंबर जायँगे—अंबर=आकाश।

जब पृथिवी और आकाश चले जायँगे (नहीं रहेंगे), कैलाश आदि पहाड़ नष्ट हो जायेंगे, और सब कुछ एकमेक हो जायगा (अर्थात् प्रलय के समय जब सब पानी ही पानी हो जायगा) तब भी दास (प्रभु भक्त) रहेंगे।

काजर केरी कोठरी—केरी=की। पैठि=घुसकर।

यह संसार काजल की कोठरी के समान है। उस दास की बलिहारी है जो इस में घुसकर भी फिर बाहर निकल आता है।

अर्थात् जो प्रभुभक्त इस संसार के मायाजाल में नहीं फँसता और प्रभुभक्ति में ध्यान लगाता है, वह धन्य है।

कबीर गुरु का भावता—भावता = प्रेमपात्र, भक्त। तन = शरीर। छीना = क्षीण, दुर्बल। अनमना = उदास, उचटे हुए चित्त का।

कबीरदास कहते है कि गुरु का प्रेमपात्र (भक्त) दूर से ही दिखाई दे जाता है। उसका शरीर दुर्बल होता है, मन उचाट रहता है और वह जगत से रूठा फिरता है, अर्थात् जगत् से कुछ संबंध नहीं रखता।

राता राता सब कहैं—राता=अनुरक्त, प्रेमी। रक्त=खून। तन=शरीर।

सब अपने को प्रेमी प्रेमी कहते हैं, कोई अपने को अनराता (प्रेमरहित) नहीं कहता। वास्तव में उसे ही प्रेमी समझना चहिये जिसके शरीर में रक्त (खून) नहीं—जिसे अपने शरीर की चिन्ता नहीं। प्रेमी अपने प्रियतम की चिन्ता अपने को सुखा देता है। मूल पुस्तक में 'जानत' के स्थान पर 'जा तन' पाठ चाहिये।

सब घट मेरा—मेरा स्वामी (परमात्मा) सब जगह है, कोई सेज उससे सूनी नहीं—कोई जगह उससे खाली नहीं। उस हृदय की बलिहारी है जिस में वह प्रकट होता है। अर्थात् जो प्राणी यह समझ लेता है कि परमात्मा मेरे अन्दर ही है वह धन्य है।

सूरमा का अंग

सूरा सोइ सराहिये—धनी = स्वामी। पुरजा = टुकड़ा। खेत = लड़ाई का मैदान।

वही सूरमा धन्य है जो अपने स्वामी के लिए लड़ता है, और चाहे पुरजा-पुरजा (टुकड़ा-टुकड़ा) हो जाय तो भी लड़ाई का मैदान नहीं छोड़ता।

सूरा सोइ सराहिये—लोह=लोहे का कवच। जूझै=लड़े। बंद=बंधन। अंग=शरीर।

वही सूरमा धन्य है, जो अपने शरीर पर लोहे का कवच नहीं पहनता। बल्कि जो सब बंधन खोलकर (छाती नंगी करके) और शरीर का मोह छोड़कर मैदान में लड़ता है।

अब तो जूझे ही—अब तो केवल लड़ने-मरने से ही काम बनता है; वापिस जाने में घर बहुत दूर रह गया है। अपने स्वामी को अपना सिर सौंपते हुए, हे सूर! सोच नहीं करना चाहिये।

सूरा सीस उतारिया—शूरवीर ने जब अपने शरीर की आशा छोड़दी और अपना सिर उतार दिया, तब गुरु अपने (अनन्यभक्त) दास को आगे से आता देख प्रसन्न हो गया।

साधु सती और सूरमा—पटतर=समता, बराबरी, उपमा। पंथ=रास्ता। ठाहर=ठिकाना, स्थान।

साधु, सती और सूरमा इनकी समता कोई नहीं कर सकता, ये अगम (बड़े टेढ़े) रास्ते पर—चलते हैं, और फिसलने पर इनके लिए कोई जगह नहीं रहती।

सिर राखे सिर जात—सिर रखने से—सिर का मोह करने से—सिर (मान) चला जाता है। सिर कटवाने से सिर (मान) रहता है। जिस तरह दीपक की जलती बत्ती का अगला हिस्सा काटने से और भी अधिक प्रकाश होता है।

लड़ने को सब ही चले—सब लोग अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बाँधकर लड़ने को चले, पर अपने स्वामी के सामने कोई विरला ही लड़ सकेगा—अर्थात् परमात्मा को कोई विरला ही पा सकेगा।

सूरा के मैदान में—शूरवीरों के मैदान (लड़ाई) में एक कायर आकर फँस गया है, वह न तो वहाँ से दौड़ ही सकता है, और न लड़ ही सकता है पर मन ही मन पछताता है (कि मैं यहाँ क्यों आगया।)

रणहिं धँसा जो—ऊबरा = उद्धार हो गया। गिरह = गृह, घर। बधावा = बधाई।

युद्ध के मैदान में जो घुस गया उसका उद्धार हो गया और वह अगले घर में (परमात्मा के घर में) स्थान पागया। जब वह उस घर में पहुँचता है तो बधाई के बाजे बजते हैं, इसके सिवाय उसे दूसरी आशा भी नहीं है।

ऊँचा तरवर गगन को—पचना = यत्न कर कर के हार जाना। झूर = खाली, व्यर्थ ही।

आकाश रूपी वृक्ष (परमात्मा का स्थान) बहुत ऊँचा है, उसके निर्मल फल बहुत दूर हैं, उसके पाने में अनेक सयाने यत्न करके हार गये और—खाली रास्ते में ही मर गये।

दूर भया तो क्या—वह परमात्मा दूर हुआ तो क्या हुआ, सद्गुरु उसे मिला देते हैं। उसी सद्गुरु के चरणों में अपना सिर सौंपते ही कार्य की सिद्धि हो जाती है।

खोजी को डर—खोजी को बहुत डर रहता है, उसे पल पल में वियोग सहना पड़ता है, (कभी दिखता है कि अब उद्देश मिल गया, अब संयोग होगया है, पर थोड़ी देर बाद फिर वियोग होजाता है) प्रण रखते हुए (खोजते हुए) जो शरीर गिरे वह शरीर उस साहब (परमात्मा) के ही योग्य है।

अगिनि आँच सहना—अग्नि के ताप को सहना आसान काम है, और तलवार की धार पर चलना भी सुगम है, परन्तु एक रस (जैसा शुरू में हो वैसा अन्त तक) प्रेम निभाना बड़ा कठिन है।

कोने परा न छूटिहौ—हे मूर्ख जीव कोने में—एकान्त में—पड़े रहने से तू छूट नहीं सकेगा। कबीरदास कहते हैं कि बीच मैदान में आकर तू इन्द्रियों से लड़—अर्थात् संसार में रहता हुआ इन्द्रियों पर विजय पाकर रह, तभी तू इस माया से छूट सकेगा। मूल पुस्तक में 'परा और न' को मिला दिया है, जो अशुद्ध है,

सूरा नाम धराय कै—अपने को शूरवीर कहला कर, (अपना शूरवीर नाम धराकर) हे वीर! अब क्यों डरता है! अब तो मैदान में सज्जित रहना होगा और सन्मुख तीर सहन होगा।

भागे भली न होयगी—कुदाँव = धोखा।

(रणभूमि के मैदान से) भागने से भला न होगा (यहाँ से) भाग कर कहाँ पाँव धरोगे—कहाँ ठहरोगे? इसलिये अपना सिर कटवा दो और सीधा होकर लड़ो, क्यों धोखा करते हो।

सूर सिलाह—सिलाह = जिरहबख्तर, कवच। तूर = तुरही, नगारा।

जब रण में तुरही बज उठी तब—अर्थात् रण-भेरी के बजने पर—शूरवीर कवच नहीं पहनते। माथा कट जाने पर भी जब धड़ लड़ता रहे तब समझो कि वास्तविक शूरवीर है।

नाम रसायन—रसाल = रसीला। कलाल = शराब बेचनेवाला।

प्रभु का नाम-रसायन रूपी प्रेम रस पीने में बहुत मधुर है परन्तु कबीरदास कहते हैं इसको पीना बहुत कठिन है, क्योंकि शराब बेचनेवाला सिर मांगता है अर्थात् इस रसायन की कीमत सिर देना है। प्रभु-भक्ति बहुत उत्तम वस्तु है, परन्तु उसका करना बहुत कठिन है।

चेतावनी का अंग

कुसल कुसल—जरा = बुढ़ापा।

(एक दूसरे के) कुशल-समाचार पूछते-पूछते ही संसार में कोई न रहा, अर्थात् मनुष्य यह देखते हुए भी कि इस नश्वर संसार में कोई भी नहीं बचता एक दूसरे के कुशल-समाचार पूछते रहते हैं। भला जब बुढ़ापा नहीं मरा (इस संसार से नहीं गया) और डर भी बना रहा तब कुशल कहाँ से होगी?

पानी केरा—केरा = का। परभात = प्रभात, सवेरा।

मनुष्य-जीवन पानी के बुलबुले के समान क्षण-भङ्गुर (क्षण भर में नष्ट हो जाने वाला) है। जो देखते ही देखते ऐसे ही छिप जायगा जैसे प्रातःकाल के समय तारे।

रात गँवाई—रात सोकर और दिन खाने-पीने में गँवा दिया यह मनुष्य जन्म-रूपी अमोल हीरा था, जो कौड़ियों के बदले चला जारहा है—तुच्छ विषय-वासना में नष्ट होरहा है।

आछे दिन पाछे—अच्छे दिन—जवानी के दिन—पीछे बीत गये, तब गुरु से प्रेम नहीं किया, उसका उपदेश नहीं सुना। सो अब पछताने से क्या होता है, जब कि चिड़ियाँ खेत चुग गई हैं, अर्थात् जब समय हाथ से निकल गया है।

काल्ह करै—जो कल करना है, वह आज ही कर ले, जो आज करना है, सो अभी कर ले। क्योंकि पल में ही प्रलय होयगी अर्थात् पल भर में ही इस नश्वर शरीर से पंचभूत विदा हो जायँगे, तब फिर उस काम को कब करेगा?

जिनके नौबत—नौबत बजना = आनंद उत्सव होना, प्रताप या ऐश्वर्य दिखाना। बार = दरवाजा।

जिनके घर आनंद उत्सव मनाये जाते थे, या जिनके ऐश्वर्य का दबदबा चारों ओर छाया हुआ था, और जिनके दरवाजों पर

मंगल-सूचक पत्ते आदि बँधते थे, वे सब केवल एक सतगुरु के नाम के बिना अपना जन्म हार बैठे—अपना जन्म व्यर्थ गँवा बैठे।

ऊजड़ खेड़े ठीकरी—खेड़ा = गाँव।

उजाड़ गाँव में कई कुम्हार ठीकरे गढ़-गढ़ कर (बर्तन बना बना कर) चले गये। उन बेचारों का तो कहना ही क्या जब कि रावण सरीखा लंका का सरदार भी चल बसा।

पांच तत्व का—पूतरा = पुतला। ठाम = स्थान।

पांच तत्व—पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश, इन पाँच तत्वों—के इस पुतले का नाम ही मनुष्य रख दिया है। और यह चार दिनों के लिए—छोटे से जीवन के लिए फिर फिर स्थान रोकता फिरता है।

पकी खेती देख—अजहूँ = अब भी। झोला = झोंका, आपत्ति।

हे किसान, खेती को पकी देखकर तू घमंड क्यों करता है? अब भी इनको नष्ट करनेको बहुतसी आपत्ति (आँधी का झोंका आदि) शेष हैं, इसलिए जब खेती घर आ जाय तब समझना।

जेहि घट प्रेम न—रसना = जीभ। खये = नष्ट हो गये।

जिसके हृदय में प्रेम या भक्ति नहीं और जिसकी जीभ प्रभु-नाम नहीं लेती, वे मनुष्यरूपी-पशु संसार में उत्पन्न होकर व्यर्थ ही नष्ट हो गये।

ऐसा यह—यह संसार सेमर के फूल के समान है—अर्थात् जैसे सेमर का फूल केवल तीन-चार दिन चटक दिखाकर फिर मुरझा जाता है और उसका रंग भी बदल जाता है ऐसे ही यह संसार भी है। अतः केवल दस दिन के जीवन में इस झूठी माया में न फँस।

पांच पहर धन्धे—पहर = दिन रात का आठवाँ हिस्सा।

पांच पहर के लगभग समय तो काम-काज में बीत गये, बाकी तीन पहर सोते रहे (दिन रात में केवल आठ ही पहर होते हैं) इस तरह एक घड़ी भी हरि का भजन नहीं किया, अब मुक्ति कहाँ से होवे !

सपने सोया मानवा—सपने में सोये हुए (अज्ञान में फँसे हुए) मनुष्य ने जब आँख खोलकर देखा तो पता लगा न कुछ लेना है और न देना है पर जीव व्यर्थ ही लूट में फँसा हुआ है।

घर रखवारा—बाहरा = बहराया बेहोश। ऊबरै = बच जायगा।

घर की रखवारी करने वाला बेहोश है, इसलिए चिड़ियों ने खेत खा लिया है। अब भी आधा बच जायगा, इस लिये यदि होश में आ सके तो आ। अर्थात् मनुष्य जीवन सब योंही व्यर्थ गया, अब भी यदि तू चेत जाय तो कुछ सुधार हो सकता है।

माटी कहे—मिट्टी कुम्हार से कहती है कि तू मुझे क्या रौंदेगा ? एक दिन ऐसा होगा कि मैं तुझे (मरने पर) रौंदूँगी।

जिन गुरु की चोरी करी—गादुर = चमगादड़। अरध = नीचे।

जिन्होंने गुरु की चोरी की है,जो (प्रभुके) नामके गुन भूल गये हैं, उन्हें विधि ने चमगादड़ बनाया है, वे नीचे मुख करके लटकते रहते हैं। अर्थात् जो गुरु का नाम भूल गये हैं, वे अँधेरे में—जहाँ ज्ञान नहीं पहुँचता वहाँ औंधे मुँह लटकते रहते हैं।

कहा कियो इन आई—इन्होंने यहाँ आकर—इस संसार में आकर—क्या किया, और यहाँ से जाकर ये क्या करेंगे ? न इधर के हुए न उधर के, अर्थात् न संसार-सुख ही पाया न ईश-भजन ही किया—अपना मूल (मनुष्य जीवन) भी गँवाकर चल दिये।

जगतहि में हम रांचिया—राँचिया = अनुरक्त हो गये, फँस गये। छीजै = क्षीण होना, सूखना।

झूठी कुल की लाज से हम जगत ही में फँस गये और प्रभु-नाम-रूपी जहाज़ पर नहीं चढ़े—प्रभुनाम नहीं लिया। अब शरीर सूख जायगा, और कुल नष्ट हो जायगा।

मोर तोर की जेवरी—जेवरी = रस्सी।

मेरी और तेरी की रस्सी ने—यह मेरा है, यह तेरा है, इस माया के बँधन ने—यह सारा संसार बाँध लिया है। परन्तु कबीरदास इसमें क्यों बँधे जिनको प्रभु के नाम का सहारा है। अर्थात् प्रभु-नाम के भक्त इस माया में नहीं फँसते।

जिन जाना निज गेह—जिन्होंने अपने गेह (घर) को समझ लिया है कि यह घर केवल चार दिन का है वे क्यों मित्रता जोड़ते फिरें ? जैसे दूसरे के घर में अतिथि हमेशा विरक्त रहता है, वहाँ किसी पदार्थ से ममता नहीं जोड़ता, इसी प्रकार जिन्होंने यह समझ लिया है कि यह संसार-रूपी घर केवल चार दिन का है, वे यहाँ के मोह-ममता में नहीं फँसते।

जा जानहु जिव—सार करना = रक्षा करना, सार्थक करना। जियरा = जीव।

जिसको तुम अपना जीव समझते हो, उस जीव को सार्थक बनाओ, क्योंकि ऐसा-जीव रूपी पाहुना (अतिथि) दूसरी वार न मिलेगा—अर्थात् यह मनुष्य जीवन दुबारा न मिलेगा।

बनजारा का बैल ज्यौ—बनजारा = वह व्यक्ति जो बैलों पर अन्न लाद कर बेचने के लिए एक देश से दूसरे देश को जाता है। टांडा = अन्न आदि व्यापार की वस्तुओं से लदे हुए बैलों या पशुओं का झुंड जिसे व्यापारी लेकर चलते हैं।

बनजारों के बैलों के झुण्ड के समान इस संसार में जीव समूह आकर ठहरा है, उनमें से किसी एक ने तो अपने मूल का दूना कर लिया और कोई अपना मूल ही गँवाकर चल दिया

है। अर्थात् सँसार में कई जीव आकर अपना जीवन सफल कर जाते हैं, और कोई यों ही गँवा देते हैं।

या दुनिया में आइ के—पैंठ=हाट, बाजार।

इस दुनियाँ में आकर तू ऐंठ छोड़ दे और जो कुछ लेना हो सो ले ले क्योंकि यह बाजार या हाट उठने वाली है—अर्थात् यह मनुष्य-जीवन क्षणिक है, जो कुछ धर्म-कर्म करना हो कर ले।

तन सराय मन पाहरु—मनसा=मनशा, कामना, इच्छा। पाहरु=पहरेदार, जमादार।

यह शरीर ही सराय है, और मन पहरेदार है, उसमें कामना यात्री के समान आकर बसी है। सबको ठोक बजाकर देख लिया है कि कोई किसी का नहीं है।

अपने पहरै जागिये—अपने पहरे में—अपनी बारी में—जागते रहो, पड़ कर सोये न रहो। न जाने एक क्षण में किसका पहरा हो जाय।

कुल खोये कुल ऊबरे—अकुल=कुल रहित, परिवार-विहीन अर्थात् परमेश्वर। बिलाय=नष्ट होना।

कुल खोने पर (कुल से सम्बन्ध तोड़ कर परमात्मा का भक्त बन जाने से) कुल का उद्धार हो जाता है, और कुल रखने पर (कुल के सम्बन्ध में लगे रहने से) कुल चला जाता है। यदि कुलहीन (परमात्मा) के नाम को मिटा दिया तो सब कुल नष्ट हो गया। परमात्मा का नाम भूल जाने से सारा कुल का कुल नष्ट हो जाता है।

कबीर बेड़ा जरजरा—जरजरा=जर्जर, टूटा-फूटा। हरुए=हलके। सरना=खिसकना, निकल जाना।

कबीरदास कहते हैं कि इस संसार-रूपी समुद्र को पार करने का बेड़ा टूटा-फूटा है। इसमें हज़ारों छेद हैं, इसमें से हलके हलके तो निकल गये हैं, और जिनके सिर पर (पापों का, माया-बंधन का) भार था वे डूब गये।

मैं भँवरा—हे भौंरे ! मैं तुझे मना कर रहा हूँ कि वन-वन में सुगंध न ले। अगर किसी बेल में अटक जायगा, तो वहीं तड़प तड़प कर तुझे जान देनी पड़ेगी—अर्थात् हे मनुष्य ! विषय-वासना में न फँस, इनसे दूर रह।

बाड़ी के बीच—फुलवारी में भौंरा कलियों को सुगंध लेता फिरता था पर अंत में वह वाटिका की आशा छोड़कर उड़ गया ! भाव यह है कि मनुष्य विषयों में कितना ही फंसे उससे उसकी तृप्ति नहीं हो सकती, अंत में निराश ही होना पड़ता है।

भय बिनु भाव न अपजे—भय = डर । भाव = आदर प्रेम। रस-रीति = प्रेम का व्यवहार ।

डर के बिना न आदर उत्पन्न होता है, और न प्रेम ही पैदा होता है। जब हृदय से डर चला जाता है तो सब प्रेम का व्यवहार मिट जाता है।

यह जग कोठी—यह संसार काठ की कोठी के समान है, इसमें चारों ओर आग लगी हुई है। जो इसके भीतर रहे हैं, वे जल मरे हैं, और साधु भाग कर उद्धार पा सके हैं। साधु संसार से अलग रहते हैं अतः वे ही उद्धार पा सकते हैं।

यह बिरिया तो फिर—बिरिया = समय, वक्त।

मन में विचार कर देख कि यह समय तो फिर नहीं मिलेगा, तू इस संसार में लाभ के लिए आया है इसलिये जन्म-रूपी जुआ मत हार।

शब्द का अंग

सीखे सुनै विचारि—लाहा = लाभ ।

जो (गुरु के) शब्द को सीखकर, सुनकर और विचार कर लेता है, उसे शब्द सुख देता है, जो बिना समझे बूझे, लेता है उसे कुछ लाभ नहीं होता है ।

सब्दहि मारे मरि—शब्द के मारने से मर गये, शब्द के कारण ही राजपाट छोड़ना पड़ा, जिन्होंने शब्द को (गुरु के शब्द के) पहचान लिया, उनका काम सफल हो गया है ।

सब्द हमार हम सब्द—शब्द हमारा है, हम शब्द के हैं, और शब्द ब्रह्म के कूप के समान रहस्यमय है । अतः यदि तुम प्रभु के दीदार (दर्शन) को चाहते हो तो शब्द के रूप को पहचानो ।

काल फिरै सिर—जीव के सिर पर काल फिरता रहता है, परन्तु नजर नहीं आता । कबीरदास कहते हैं कि गुरु के शब्द को ग्रहण कर (मानकर) ही जीव यमराज से बच जाता है ।

शब्द बराबर धन—शब्द के बराबर कोई धन नहीं यदि उसके मोल को कोई पहचानता हो । हीरा तो दामों से मोल मिलता है, पर शब्द का मोल और तोल नहीं होता ।

शीतल शब्द उचारिये—मुख से शीतल शब्द बोलिए और मन में अहंभाव (अहंकार) न लाइये, क्योंकि तेरा प्रीतम और तेरा शत्रु तुझ में ही है— अर्थात् सरलता से शीतल वाणी

बोलने से सब मित्र बन जाते हैं, और कड़वी वाणी से सब शत्रु।

वह मोती मत जानियो—उसे मोती मत समझो जो काँच के दानों के साथ पिरोया जाता है। वास्तव में शब्द ही मोती है जो कि सारे शरीर में छिदा रहता है।

जंत्र मंत्र सब झूठ है—जंत्र-मंत्र सब झूठ है, इनके भ्रम में में कोई न पड़े। शब्दके महत्व को (अर्थ को) जाने बिना कौआ (अज्ञानी) हंस (ज्ञानी) नहीं होता।

सत्त सब्द निज—जिन्होंने अपने (गुरु के) शब्द को सत्य समझकर उस पर विश्वास कर लिया है, वे कौवे (अज्ञानी) कुमति बुरी (बुद्धि) को छोड़ कर हंस (ज्ञानी) बन कर संसार-रूपी जल को जीत कर चले।

सांच का अंग

सांच बराबर तप नहीं—सत्य के बराबर तप नहीं है, और झूठ के बराबर कोई पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य है उसके हृदय में स्वयं गुरु विराजमान हैं।

सांचे स्राप न—सच्चे आदमी को श्राप नहीं लगता, और सच्चे आदमी को काल नहीं खाता। सच्चे को सच्चा (ईश्वर) मिलता है, और वह उसी में ही समा जाता है।

जो तू सांचा—अगर तू सच्चा बनिया है, तो सच्ची दुकान लगाकर अंदर झाड़ू देकर कूड़ा दूर बहा दे। अर्थात् अपने अंदर की मन के दोषों को दूर कर उसे साफ कर।

कंचन केवल हरि—कांच = शीशा । कथीर = रांगा ।

हरि का भजन ही केवल सोना है, और दूसरा सब शीशा और रांगा है । इसलिए झूठे जाल जंजाल को छोड़कर कबीर ने केवल सच को पकड़ लिया है ।

साधू ऐसा चाहिये —साधू ऐसा चाहिये, जो सच कह दे, चाहे फिर मित्रता टूट ही जाय, या जुड़ जाय (इसकी उसे परवाह न हो) क्यों कि सत्य कहे बिना भ्रम नहीं जाता ।

झूठ बात नहिं—जब तक हो सके—जहाँ तक बस चले—वहाँ तक झूठी बात नहीं बोलनी चाहिये । हे कबीर! तू सत्य को ही ग्रहण कर जिससे आवागमन (बार बार का जन्म और मरण) नष्ट हो जाय ।

साँच हुआ—सच्चा हुआ तो क्या हुआ, यदि सच्चे (ईश्वर) का नाम नहीं जाना । सच्चा होकर यदि सच्चे (ईश्वर) से मिले तब सच्चे (ईश्वर) में ही समा जाता है । फिर आवागमन नहीं होता ।

विचार का अंग

पानी केरा—मनुष्य पानी का पुतला है, जिसमें वायु का संचार कर रक्खा है, वह पुतला नाना तरह की वाणी बोलता है। उसमें परमात्मा ने अपनी ज्योति [प्रकाश] धर दी है ।

एक सब्द में—सब अर्थ सोच कर एक शब्द में ही सब कुछ कह दिया है कि निर्गुन प्रभु के नाम को भजो, और विषय-वासना छोड़ दो ।

फूटी आँखि--(संसार की) विवेक की आँख फूट गई है, वह संत और असंत की—साधु और ढोंगी की—पहचान नहीं करता। जिसके संग दस-बीस आदमी इकट्ठे हुए हैं, उसी को लोग महंत कहने लगते हैं।

साधू मेरे--अपने अपने स्थान पर सभी साधु बड़े हैं, परंतु जो ज्ञानी शब्द को परखने वाला है, वह सबका सिरमौर (सिरताज) है।

कहै कबीर—कबीरदास पुकार-पुकार कर कहते हैं कि विवेकी साधु कोई कोई ही होता है। जिसमें शब्द का ज्ञान हो—जो शब्द को पहचानता है—वह छत्र का धनी है, सबसे श्रेष्ठ है।

जीव जंतु—जो जीव जंतु जलाशय में रहते हैं, विवेकशून्य होने पर वे भी कहते हैं कि हम भी तारों के समान है। भाव यह है कि अज्ञानी मनुष्य अपने को बहुत बड़ा समझने लगता है।

निष्कर्ष

रहना नहीं—बिराना = पराया, दूसरे का। वाड़ी = वाटिका, फुलवारी।

हे मनुष्यो, इस संसार में सदा नहीं रहना, यह तो पराया देश है। यह संसार कागज की पुड़िया के समान है जो कि एक बूंद के पड़ने से ही घुल जायगा (नष्ट हो जायगा)। यह संसार तो काँटों की फुलवारी है, जिस में उलझ-कर—जिसके विषय-वासना-रूपी काँटों में फँस कर--मर जाना

है। यह संसार तो झाड़ और झँखड़ है, जो कि आग लगने से—एक चिनगारी के लगने से ही जल जायगा। कबीरदास कहते हैं कि इस संसार में केवल सतगुरु का नाम ही असली स्थान—एक मात्र आसरा—है।

घूंघट का पटः—घूँघट का पट = अज्ञान (माया) का परदा। पचरंग = पाँच रंग का—पाँच भूतों का बना हुआ। चोल = वेश, शरीर। सुन्न = शून्य, एकान्त। अनहद = हृदय की भीतरी आवाज जो योग-साधन के समय सुनाई देती है।

हे जीव! तू अपने अज्ञान (माया के परदे) को दूर कर दे, तुझे प्रिय (परमात्मा) मिलेंगे। वह साँई घट-घट में (सर्वत्र) रम रहा है, अतः कडुवे वचन मत बोल। धन और अपने यौवन का गर्व मत कर, यह पाँच रंग का चोला (पाँच भूतों का बना शरीर) झूठा है—नश्वर है। शून्य (एकान्त हृदय-मन्दिर) में ज्योति जगा ले, और योगासन से विचलित मत हो। इस योग की युक्ति (साधन) से रंगमहल में अनमोल प्रियतम (परमात्मा) को पा लिया है। (प्रिय के मिलने पर आनन्द होता है और ढोल बजाते हैं) कबीरदास कहते हैं कि अब आनन्द हो गया है और हृदय के भीतरी ढोल बज रहे हैं—हृत्तंत्री की आवाज सुनाई दे रही है।

नाम अमल उतरै—अमल = नशा। सवाई = सवाया, अधिक। सुरत = ध्यान, याद, सुध। गनिका = वेश्या।

हे भाई नाम का (हरिभजन का) नशा नहीं उतरता और सब (भांग अफीम आदि के) नशे क्षण-क्षण में चढ़ते और उतरते हैं, परन्तु (भक्तों का) नाम का नशा दिन-दिन सवाया बढ़ता है। (हरि-मूर्ति को) देखनेसे यह नाम का नशा चढ़ता है, (हरिकीर्तन) सुननेसे यह हृदय में लगता है। और स्मरण (हरि-ध्यान) करने पर यह शरीर

को घुमा देताहै, विह्वल कर देता है। हरि-भक्ति-रूपी मदिरा का प्याला पीते ही मैं मतवाला हो गया हूँ, मैंने प्रभु का नाम पा लिया है तथा दुचिताई—चित्त की अस्थिरता—मिट गई है। वेश्या* तथा सदन† नामक कसाई आदि जिन जनों ने नाम के नशे के रस को चख लिया है वे भवसागर से तर गये हैं। कबीरदास कहते हैं कि गूँगे ने यदि गुड़ खाया हो तो वह बिना जीभ के उसकी क्या बड़ाई कर सकता है। इसी प्रकार प्रभु-भक्ति के स्वाद का हम वर्णन नहीं कर सकते।

हिरदे भीतर—हृदय के भीतर ही शीशा है, पर मुख नहीं देखा जाता। मुख तो तब ही दिखाई देगा जब कि दिल की द्विविधा नष्ट हो जायगी।

नैनों अन्तर—हे प्रीतम—परमात्मा—तू मेरी आँखों के भीतर आ जा और मैं अपनी आँखें बंद कर तुझे वहाँ बिठा लूँगा। इस तरह न मैं किसी और को देखूँगा और न तुझे ही किसी दूसरे को देखने दूँगा।

निराकार—निराकार = बिना शरीर का परमात्मा। आरसी= आईना, दर्पण। अलख = अप्रत्यक्ष, जो दिखाई न दे।

---

* सतयुग में परशु नाम का वैश्य युवावस्था में ही मर गया। उसके बाद उसकी विधवा पत्नी वेश्यावृत्ति में लग गई। एक बार उसने एक बहेलिये से एक तोता खरीदा। कोई संतान न होने के कारण वह तोते को ही पुत्र की तरह प्यार करती और राम नाम रटाती थी। तोता भी निरंतर 'राम-नाम' रटता था। उसी नाम के प्रभाव से दोनों तर गये।

† सदन कसाई—कसाई होता हुआ भी प्रसिद्ध भगवद्भक्त था, अतएव वह तर गया था।

साधुओं का शरीर ही निराकार परमात्मा का दर्पण है जो उस परमात्मा को देखना चाहते हो, तो इन्हीं में देख सकते हो। अर्थात् सच्चा साधु ईश्वर की ही प्रतिमूर्त्ति है ।

गत गँवाई—अर्थ इसी पुस्तक के पृष्ठ १२१ पर देखिये।

मैं भँवरा—अर्थ इसी पुस्तक के पृष्ठ १२६ पर देखिये !

भंवर बिलंबे—बिलंबना = रम जाना, आवश्यकता से अधिक देर तक रहना।

भौंरा बहुत से फूलों की आशा से बाग में बड़ी देर तक आकर रहता है, (वहीं रम सा जाता है) ऐसे ही जीव विषयों में आकर रम जाता है और अन्त में दोनों निराश होकर चल देते हैं।

सुपने में—स्वप्न में मुझे प्रीतम मिले और उन्होंने मुझे सोते हुए को जगा दिया। लेकिन मैं इस डर से आँख नहीं खोलता कि कहीं वह सुपना न हो जाय, अर्थात् आँख खोलते ही प्रियतम अदृश्य न हो जायँ।

तरुवर—ऐसे वृक्ष का आश्रय लेना चाहिए जो बारह महीने फल-फूल देता हो, जिसकी शीतल छाया हो, सघन फल हों और जिस पर पक्षी क्रीड़ा करते हों—अर्थात् ऐसे परम प्रभु का आश्रय लीजिये जो सदा ही एकरस रहते हैं।

सूरदास

बाललीला

घुटुरुन चलत—मनि आँगन=मणि जटित आँगन। किलकिलात=हँसते हैं। हेरत=देखते। पेखत=निहारते हैं। लटकन=कलगी या सिर में लगे हुए रत्नों का गुच्छा जो नीचे की ओर झुका हुआ हिलता रहता है। ललित=सुन्दर। भाल=मस्तक। भ्रुव=भौंह। घुटुरुवनि=घुटनों के बल इत=इधर। उत=उधर। दम्पति=पति-पत्नी (नन्द-यशोदा) होड़=प्रतिस्पर्द्धा चढ़ा-चढ़ी।

मणि-जटित आँगन में श्रीकृष्ण घुटुनों के बल चल रहे हैं। (उनके) माता-पिता, नन्द और यशोदा उनका चलना देखते हैं। श्रीकृष्ण कभी उनकी तरफ देख कर हँसते हैं और कभी माँ, यशोदा के मुख की ओर निहारने लगते हैं। (बालक कृष्ण के) सुन्दर माथे के ऊपर लटकन झूल रहा है तथा काजल की टिकी भौंहों के ऊपर लगी है। आँखों से देखने वाले को इस सुन्दरता की तीनों लोक में समानता करने वाली (कोई वस्तु) नहीं मिलेगी—उनकी सुन्दरता अनुपमेय है। कभी वे घुटनों के बल दौड़ कर खड़े होते हैं, कभी गिरते हैं; फिर उठते और दौड़ते हैं। इधर से नन्द बुला लेते हैं, तो उधर से यशोदा बुलाती हैं। मालूम पड़ता है, उन पति-पत्नी में (कृष्ण को अपने पास बुलाने में) प्रतिस्पर्द्धा होरही है, इस तरह कृष्ण को उन्होंने कभी इधर कभी उधर जाने वाला खिलौना बना लिया है, (और वे उससे खेल रहे हैं।) 'सूरदास जी' कहते

हैं कि उन दोनों पति-पत्नी ने सनातन ब्रह्म के अवतार भगवान् कृष्ण को अपना बालक मान लिया है ।

कहाँ लगि बरनो—सुन्दरताइ=सुन्दरता । कनक-आँगन = सुवर्ण मंडित आँगन । कुलहि = टोपी । लसत=शोभा पाती है । सुभग = सुन्दर । बहु विधि = बहुत तरह के । मघवा = इन्द्र । धनुष = इन्द्र-धनुष । सुदेश = सुंदर । मृदु=स्निग्ध,कोमल । चिकुर = बाल । मनमोहन = कृष्ण । बगराइ = फैले । मंजुल = सुन्दर । प्रगट = खिले हुए । कंज = कमल । अलि-अवली = भौंरों का समूह । शनि = शनिश्चर ग्रह । गुरु असुर = शुक्र तारा देवगुरु = वृहस्पति तारा । भौम = मंगल । द्युति = शोभा,कांति । दुरत = छिपती । विज्जु छटाइ = बिजली की चमक । खण्डित बचन = तुतली बातें । पूरन = पूरा । अलप = थोड़ा । जलपाइ = कही हुई । रेणु = धूल ।

उस सुन्दरता का कहाँ तक वर्णन करूँ, (नन्दके कुमार) कृष्ण सोने के आँगन में खेलते फिरते हैं, उन्हें देख कर नेत्र उनकी छवि से भर जाते हैं । उनके सिर पर बहुत तरह के रंगों की सुन्दर टोपी है वह ऐसी प्रतीत होती है मानों नवीन मेघ के ऊपर इन्द्रधनुष शोभा पारहा हो । (इसके अलावा) मनमोहन कृष्ण के मुँह पर लहराते हुए चिकने-कोमल केश बड़े सुहावने लगते हैं । (ऐसा मालूम होता है) मानों सुन्दर खिले हुए कमल के फूल के ऊपर भौंरों का समूह फिर रहा हो । नीलम, पुखराज और पन्नों आदि से जड़ा हुआ लटकन जो उनके मस्तक पर हिल रहा है, वह मानों मस्तकरूपी आकाश में शनिश्चर, शुक्र, वृहस्पति और मंगल का समुदाय इकट्ठा हुआ हो । (शनि का रंग काला, शुक्र का सफेद, वृहस्पति का पीला और

मंगल का लाल माना गया है) दूध के दाँतों की शोभा का कहना ही क्या, उसके लिए तो एक अजीब ही उपमा की ज़रूरत है। उनके हँसने, किलकने से वह (दंतपंक्ति) कभी छिप जाती और कभी दिखाई देती है, मानों बादल में बिजली की चमक हो। धीरे-धीरे कही हुई उनकी अस्फुट और टूटी-फूटी तोतली बातें (श्रोता को) पूर्ण सुख देती हैं। (इस प्रकार) घुटनों के बल चलते हुए और शरीर में धूल लपेटे हुए, (बालक कृष्ण) के ऊपर सूरदास अपने आपको निछावर करता है।

गहे अँगुरियाँ—अँगुरियाँ=उँगलियाँ। सुवन=पुत्र। अरबराय=लटपटाकर। बकि=बोलकर। दुँहुघां=दोनों ओर (ऊपर-नीचे)। दँतुली=दांत। द्वैक=दो एक। रिंगावत=चलाते हैं। धाम=घर। महरि=यशोदा। कान्ह=कृष्ण।

बेटे (कृष्ण) की उँगलियाँ पकड़कर नंद उसे चलना सिखाते हैं। लेकिन वह लटपटा कर गिर पड़ता है तब हाथ का सहारा देकर उसे उठाते हैं। बार-बार कुछ न कुछ बोल कर कृष्ण से भी कुछ बुलवाने का प्रयत्न करते हैं। कृष्ण के मुख में अभी दोनों तरफ दो ही दो दाँत निकले हैं, इस लिए उनका मुँह बड़ा अच्छा लगता है। चलाते चलाते नंद जी कृष्ण का हाथ कभी छोड़ देते है (और इस तरह) एक दो पग, उन्हें खुद चलाते हैं। कृष्ण कभी हाथों और घुटनों के बल, घूमकर, घर की तरफ भागने लगते हैं। (यह सब करते हुए) कृष्ण का मुख देख देख कर यशोदा के मन में अपार हर्ष होता है।

मैया कब बढ़िहै—किती=कितनी। बेर=देर। मोहि=मुझको। अजहूँ=अभी तक। बल=बलराम। बेनी=चोटी

ह्वै है=होगी। नागिनी=सर्पिणी । भुंइ=पृथ्वी पर। काचो=कच्चा। रिस=गुस्सा। रिझयो=प्रसन्न किया। हलधर=बलराम जोटी=जोड़ी।

(कृष्ण माता यशोदा से पूछते हैं) माँ, बता तो मेरी चोटी कब बढ़ेगी ? मुझे कितनी देर दूध पीते हो गई अर्थात् मैं तो बहुत दिनों से दूध पी रहा हूँ लेकिन यह अब भी उसी तरह छोटी बनी है। तू तो कहती है कि यह बलराम की चोटी की तरह ही लंबी और मोटी हो जायगी और काढ़ते, गूँथते तथा नहाते समय नागिनी की भाँति पृथ्वी पर लोट जायगी। तू मुझे कच्चा दूध ही पिलाती है, मक्खन-रोटी नहीं देती। (तब यह भला कैसे बढ़ेगी ?) 'सूरदास' जी कहते हैं कि इस प्रकार गुस्से द्वारा माँ को रिझाने वाली हरि और बलदाऊ की जोड़ी मुझे भाती है।

मूल पुस्तक में 'पिलावत मोहन' की जगह पर 'पिलावत मोहिं न' चाहिये।

खेलनि दूरि जात—कान्हा=कृष्ण। हाऊ=हौवा। नान्हा=छोटे। कान तोरि लेत=कान काट लेता है।

हे कृष्ण, तुम खेलने के लिए दूर क्यों जाते हो ? मैंने सुना है कि आज एक हौवा आगया है। तुम अभी छोटे हो, तुम्हें कुछ खबर नहीं है (कि वह कितना भयानक है)। अभी-अभी एक लड़का भाग कर आया था। (मैंने) उसे रोते हुए देखा है। (वह हौवा) जिसे लड़का देखता है उसके कान उखाड़ लेता है। इसलिए तेज़ भाग चलो न, जल्दी ही भाग कर अपने घर पहुँच जाँय। 'सूरदासजी' कहते हैं कि यह बात सुनते ही कृष्ण ने बलराम को भी बुला लिया।

दूरि खेलन जनि—जनि=मत। ललन=बच्चे। किन्हें=किसने। झाऊ=नदी के किनारे पर होने वाली एक प्रकार की झाड़ी। तट=किनारा। धेनु=गाय। ब्याल=काली नाग।

नाथना = नकेल डालना, बल-पूर्वक वश में करना। सुरत = याद। शंखसुर = (शंखासुर) एक राक्षस। लुकाऊ = छिपा। मीन रूप = मत्स्यावतार। असुरन = दैत्यों के। मन्दर = (मन्दराचल) पर्वत विशेष। खसाऊ = डाला। कमठरूप = कच्छपावतार। सुरराऊ = इन्द्र। हरणाक्ष = (हिरण्याक्ष) एक दैत्य का नाम। गरवाऊ = गर्व। बाराहरूप = शूकरावतार। क्षिति = पृथ्वी। दन्त अगाऊ = दाँत के अग्रभाग पर। विदारेउ = मारा। परग = पैर, डग। वसुधाऊ = पृथ्वी भी। श्रम जल = श्रम के कारण पैर से निकला हुआ जल, जो गंगाजल हो गया। दरशि = दर्शन। परसाऊ = स्पर्श। मुनि = जमदग्नि ऋषि। निक्षत्रि = क्षत्रिय विहीन। छिति = क्षिति, पृथिवी। क्षार = राख। मिस = बहाने। बदन = मुख। विकास्यो = खोला। नृपति = जरासन्ध से तात्पर्य है। निगम = वेद।

माता यशोदा ने कृष्ण को डराने के उद्देश्य से कहा—मेरे लाल, तुम दूर खेलने मत जाना, (सुना है) हौवा आया हुआ है। तब कृष्ण (बिल्कुल बालक की सी स्वाभाविकता से) हँसकर पूछते हैं कि अरी माँ, उन्हें किसने भेजा है ? इस पर बलराम हँसते हँसते बोले, कि अब ये बातें (हौवे संबंधी) सुन-सुनकर तो तुम भय का भाव दिखा रहे हो लेकिन जमुना के उस किनारे पर जहाँ झाऊ के सघन जंगल हैं, गोएँ चराते हुए जब तुमने पाताल में घुसकर कालीनाग* को नकेल डाली थी, तब वहाँ तुम्हें

---

* गोकुल के पास कालीदह नामक तालाब में एक भयानक विषैला सांप रहता था। उसके विष के प्रभाव से उस तालाब का सारा जल विषैला हो गया था। एक बार खेलते-खेलते कृष्ण की गेंद उस तालाब में गिर पड़ी। गेंद लेने के लिए कृष्ण जल में कूद पड़े। कालीनाग यह देख उनपर झपटा पर कृष्ण उसके फण पर चढ़कर खूब नाचे। अंत में कालीनाग को उनकी वशता स्वीकार करनी पड़ी।

हौवे का डर नहीं हुआ ? उस दिन की भी याद भूल गये हो जब सप्तरसातल के नीचे तुमने (निर्भय) शेषनाग की शैया बनाई थी* जब शंखासुर† चारों वेदों को ले जाकर जल में छिप रहा था, और जब मत्स्यावतार धारण कर तुमने उस को मारा था तब यह हौवा कहाँ था ? देवता और दैत्यों के लिए, समुद्र मथते समय मन्दराचल पर्वत को समुद्र में डालने पर तुमने कच्छपावतार‡ धारण कर उसे अपनी पीठ पर धारण किया था, जिससे इन्द्र को भी आनंद हुआ था । जब मन में अत्यंत घमंड करके हिरण्याक्ष ने युद्ध की इच्छा की थी, तब तुमने

---

* पुराणों के अनुसार प्रलयकाल में विष्णु भगवान तीनों लोकों को अपने पेट में धारणकर शेषनाग की शय्या बनाकर उस पर सोये थे। कुछ काल के उपरान्त उनकी नाभि से एक कमल हुआ, जिस पर ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, फिर सृष्टि क्रम चला।

† एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुराकर समुद के गर्भ में जा छिपा था। इसी को मारने के लिए भगवान् ने मत्स्यावतार धारण किया था।

‡ एक बार देवता और दैत्य अमृत निकालने के लिए समुद्र मथने को एकत्र हुए। मंदराचल पर्वत की मथानी और वासुकी सर्प की रस्सी बनाई गई। अगाध समुद्र में पर्वत धँसने लगा। ठहरे तो किस पर ? बड़ी कठिनता हुई। देवताओं के स्तुति करने पर विष्णु भगवान् ने कच्छप रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया और इस तरह समुद्र-मंथन बड़ी सुगमता से हो सका। यही कच्छप-अवतार का रहस्य है।

बाराहावतार* धारण कर शत्रु का नाश किया था और पृथ्वी को दाँत के अग्रभाग (थुथनी) पर रख लिया था। और बताओ जब तुमने (भक्त शिरोमणि) प्रह्लाद की रक्षा के लिए भयानक रूपवाला नृसिंहावतार लेकर हिरण्यकश्यप को मारा था† तब वहाँ तुम्हें कोई हौवा नज़र नहीं आया था ? तुम्हीं ने तो राजा बलि को छलने के लिए वामन का रूप धरा था और तमाम पृथ्वी को तीन डगों में नाप लिया था। श्रम के कारण निकला हुआ तुम्हारे ही चरणों का जल ब्रह्मा ने कमण्डल में रक्खा था और उन्हीं चरणों के दर्श-स्पर्श की कामना की थी (यही पवित्र गंगाजल था। पुराणों के अनुसार

---

* कश्यप प्रजापति के उनकी स्त्री दिति के गर्भ से दो महाबलवान पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप थे। ये दोनों ही बड़े पराक्रमी थे। देवताओं को सताना इनका धर्म था, और भगवान का धर्म है देवताओं की रक्षा करना। जब उपद्रव यहाँ तक बढ़ा कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को पातल में ले जाने लगा, तब भगवान विष्णु ने वाराह अवतार ले कर उस दुष्ट का वध किया और अपनी थूथनी पर उठा कर पृथ्वी का उद्धार किया।

† हिरण्यकश्यप ने विष्णु से भाई का बदला चुकाने के लिए घोर तपस्या की। ब्रह्मा से यह वर मांगा कि मैं न मनुष्य से मारा जाऊँ, न पशु से और न देवताओं से ही; इसी प्रकार न अस्त्र-शस्त्र से और न दिन में न रात में। बस फिर क्या था, देवताओं को सताना शुरु कर दिया।

इस के चार पुत्र थे। सब से छोटा प्रह्लाद था। यह जन्म लेते ही ... नारद जी के ज्ञानोपदेश से भगवद्भक्त हो गया था। दैत्यराज ने उसे पढ़ाने लिखाने की बहुत चेष्टा की, पर प्रह्लाद सिवा राम नाम के एक

गंगा भगवानके चरणोंसे निकली है।) बिना अपराध ऋषि (जमदग्नि) को मारकर कामधेनु ले जाने वाले सहस्रबाहु पर कुपित होकर जब तुमने इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित कर दिया था, तब तुमने हौवा नहीं देखा ? जब राम बन कर तुमने दशशीश और बीस भुजा वाले रावण को मारा था, और लंका को जला कर जब राख कर दिया था तब वहाँ क्या हौवा नहीं था ? (जब माँ यशोदा ने तुम्हें मिट्टी खाने पर डांटा), तब मिट्टी (दिखाने) के बहाने ही तुमने मुँह खोल करके मुख के अंदर विश्वब्रह्मांड दिखा कर उसे डरा दिया था॰, तब भी (मोहमयी माँ यशोदा तुम्हें शिशु ही समझ रही थी) तुम्हारी (परमशक्ति) पर उसे विश्वास नहीं आया था।

अक्षर भी न पढ़ा। राम का नाम लेने पर पिता प्रह्लाद पर बहुत नाराज़ होने लगा। बेचारे को नाना कष्ट दिये गये, पर उसका बाल भी बाँका न हुआ। अंत में राम नाम भुलाने के लिए, हिरण्यकश्यप ने अपने प्यारे पुत्र को आग से धधकते हुए लोहे के लाल खंभे से बाँध दिया और तलवार ले कर धमकाने लगा—'बता तेरा राम कहाँ है ?' सत्याग्रही, प्रह्लाद बोल उठा—'मो में, तो में खड़्ग खंभ में, कहाँ बताऊँ तोहि ?' इतना कहते ही खंभ से भगवान नृसिंह प्रकट हो गये। ठीक संध्या समय था। भगवान आधे मनुष्य के रूप में थे और आधे सिंह के। देखते देखते दैत्य को पकड़ कर चीर फाड़ डाला और उसके स्थान में प्रह्लाद को राजा बना दिया।

॰ एक बार माँ यशोदा ने अपने पुत्र कृष्ण को इसलिए डांटा कि उसने मिट्टी खाई है। तब कृष्ण ने कहा—मां, अगर तुझे विश्वास नहीं होता तो मुँह देख ले। यह कहकर उन्होंने मुँह खोला तो मुख के भीतर तीनों ब्रह्मांड देखकर यशोदा डर गई।

राजा जरासन्ध और भीममें जब परस्पर युद्ध हो रहा था तब तुम्हीं ने उस भाव का संकेत किया था जिससे (भीम ने) तुरन्त (जरासन्ध) को चीर कर उसके दो टुकड़े कर दिये थे। ऐ तीनों लोक के स्वामी, तुम्हारी तो इस प्रकार की महिमा है ! तुमने तो भक्तों के लिए अवतार धारण किया है, और (यह निश्चय है कि) समस्त राक्षसों को मारकर बहा दोगे या समस्त राक्षसों का भार भूतल पर से बहा दोगे। सूरदास के प्रभु (आप) की यह लीला ऐसी (रहस्यमयी और विविधतापूर्ण) है कि वेद भी उसके विषय में 'नेति नेति' ही कहते हैं।

गोवर्धन लीला

प्रथमहिं देऊँ—गिरहि=गोवर्धन पर्वत को। वज्रघातनि=वज्र की मार से। चूरण=चूर्ण। बिलाय=लुप्त। धोइ डारौ=बहा दूँ। उपाधि=उपद्रव, उत्पात। कोप=क्रोध। सोउ=वह भी। सुरपति=इन्द्र। मघवा=इन्द्र। वेगि=शीघ्र। भहराय परौ=टूट पड़ो, बरस पड़ो।

(अपनी पूजा लुप्त होते देखकर इन्द्र कुपित होकर कहता है) पहले मैं इस (गोवर्धन) पर्वत को ही बहा दूँगा। वज्र की मार से उसको चूर्ण करके पृथ्वी पर से उसका अस्तित्व ही मिटा दूँगा। इन (व्रजवासियों) ने मेरी महिमा नहीं समझी, उसे इन्हें प्रगट करके दिखा दूँगा। जलवृष्टि करके व्रजभूमि और व्रजवासी दोनों को बहा दूँगा। (मेरी ही कृपा से) ये अब तक आनन्द-पूर्वक खाते-खेलते रहे हैं, और अब मेरे ही साथ उपद्रव खड़ा कर दिया है। वर्ष दिन पर मुझे पूजा देते थे, उसका भी इन्होंने अब लोप कर दिया है। कवि कहता है, कि इस प्रकार कुपित होकर इन्द्र ने बलवान मेघों को बुला लिया और फिर क्रोध के साथ इन्द्र उनको कहने

लगे कि व्रज पर आक्रमण करो और जल्दी वहाँ जाकर उस पर बरस पड़ो।

बरपि बरपि सब—कैहैं = कहेंगे। कादर = कायर। गिरिवरधर = गोवर्धन धारण करने वाले, कृष्ण।

सब बादल बरस-बरस कर हार गये। (कवि कहता है, तब वे आपस में इस प्रकार परामर्श करने लगे)—इन्द्र ने हमें आदरपूर्वक कहा था कि व्रजवासियों को वर्षा द्वारा बहा दो। अब हम लोग चलकर स्वामी को क्या जवाब देंगे ? यह सुनकर (कि हम व्रज को बहा न सके) स्वामी हमारा निरादर करेंगे। हम इधर वर्षा करते हैं, उधर बरसते ही जल सूख जाता है और व्रजवासी सब सकुशल हैं। फिर गुस्सा करते हुए और प्रलय जल की वर्षा करते हुए वे कायर सब यही कहते हैं कि (उनमें वर्षा द्वारा व्रजवासियों का सामना करने की शक्ति नहीं है कारण कि) व्रजनागर गिरिधारी कृष्ण ने सब गायों और बछड़ों (तक) की रक्षा करली है।

वृन्दावन प्रवेश शोभा

मैया हौं न चरैहौं—हौं = मैं। सिगरे = सारे। पाइँ = पैर। पिराय = दर्द करते हैं। पत्याहि = विश्वास करती है। रिसाय = क्रुद्ध होकर। पठवति = भेजती हूँ। लरिका = लड़के को। रिंगाई = दौड़ा दौड़ा कर।

कृष्ण माँ यशोदा से शिकायत करते हुए कहते हैं—मैया ! अब मैं गायें नहीं चराऊँगा। सब ग्वाले मेरे से गायें हँकवाते हैं और मेरे पाँव पीड़ा करने लगते हैं। जो तुम मेरे पर विश्वास नहीं करतीं तो बलराम से अपनी कसम दिलाकर पूछ लो। यह सुन-सुन कर यशोदा क्रुद्ध होकर ग्वालों को गालियाँ देती है और कहती है कि मैं अपने लड़के को उन के संग इस लिए भेजती हूँ कि वह दिल

बहला आवेगा। मेरा बालक तो छोटा-सा है और ये उसे दौड़ा दौड़ा कर मार देते हैं।

मथुरा-गमन लीला

यशुदा बार बार—हितू=प्रेमी। छगन मगन=बच्चों, लड़ैतों। मधुपुरि=मथुरा। सुफलक सुत=अक्रूर जी। वरु=चाहे। बन्दि मेलै=कैद कर दे। कमलनैन=(कमल के समान सुन्दर नेत्र वाला, कृष्ण। दधि=दही। बहुरेउ=फिर भी। मेरु=पर्वत। कर लैहै=हाथ पर लेगा। बासर=दिन। असु=प्राण। कर्मवश=भाग्यवश। कण्ठ=गले। धर=(धरा) पृथ्वी। बिलखानी=दुखी हुई। सु=वह।

यशोदा बार बार यही कहती है कि ऐसा कोई व्रज में मेरा शुभचिंतक है जो जाते हुए श्रीकृष्ण को (मथुरा जाने से) रोक रक्खे। भला, इन मेरे छोटे-छोटे लाड़ले बच्चों का वहाँ क्या काम है, जो महाराज (कंस) ने उन्हें मथुरा में बुलाया है? ये अक्रूर मेरे प्राणों को ही निकालने को मृत्यु बनकर आये हैं। कंस चाहे मेरी सारी गोयें ले ले अथवा मुझे ही कारागार में डाल दे किन्तु मैं तो केवल इतना ही माँगती हूँ कि मेरा प्यारा कृष्ण मेरी आँखों के सामने खेलता रहे। (यदि वह चला गया) तो कमल के से कोमल हाथों से कौन मेरी मथानी को पकड़ेगा, और कौन दही-मक्खन खायेगा? व्रज पर इन्द्र जब फिर वर्षा करेगा तब कौन पहाड़ हाथ पर लेगा? मैं तो रात दिन उसे ही देखकर जीती हूँ, और उसी के साथ लगी, उसे झुलाती रहती हूँ। यदि उसके चले जाने पर भी भाग्यवश मेरे प्राण बचे रहे तो मैं किसे गले लगाऊँगी। (इस तरह) रोती हुई यशोदा तन बदन से दुखी हो पुकार पुकार कर पृथ्वी पर गिर

पड़ती है। कवि कहता है, कि नन्द की रानी इस कदर दुखी है कि उसकी वह दशा मैं कहाँ तक वर्णन करूँ!

तब न विचारी—चकित = चकित । अगोचर = अदृश्य । अजान = मूढ़ । औसर = अवसर। ढिग = पास।

तब इस बात का अनुमान भी नहीं किया था, अब क्या पछता रही हो? (अगर ऐसा ही था) तो जाते समय कृष्ण की फेंट क्यों नहीं पकड़ ली थी? अब क्यों पछताती हो। यशोदा सबके मुख देख देख कर चुप हो और चकित होकर दुख उठा रही है। रथ जब से नज़रों से ओझल हुआ है तब से आँखें बहुत व्याकुल हो रही हैं कवि कहता है, कि उस समय (कृष्ण के मथुरा चले जाने पर) सभी ज्ञान खोकर मूढ़ हो रही हैं। माताएँ (अपने-अपने) बेटों को अत्यंत समीप खींचकर पकड़ रखती हैं, (और इस तरह अपनी विवशता, विकलता और ममता का प्रदर्शन करती हैं।) सच है, स्वामी से दूर हो जाने पर व्यक्ति का मान घट जाता है, वह कौड़ी मोल का नहीं रहता।

नीके रहिये यशोदा मैया—इस पद में 'उद्धव' श्रीकृष्ण का मथुरा से भेजा हुआ संदेशा कहते हैं।

हलधर = बलदेव जी। वेणु = वंशी, बांस की बनी हुई बाँसुरी। विषान = विषाण, हरिण का सींग जिसे लोग बजाया करते हैं। अबेर सबेरौ = समय समय पर। जिनि = मत। कलेऊ = कलेवा, प्रातःकाल का भोजन। धैया = ताजे और बिना मथे हुए दूध पर उतराता हुआ मक्खन, जो झाग रूप में होता है अथवा थनों से निकली हुई ताजी दूध की धार। अपनो जायौ = अपना पैदा किया हुआ, अपना पुत्र।

हे माता यशोदा! सुनो, कृष्ण ने कहला भेजा है कि हलधर और

हम—दोनों भाई चार-पाँच दिन में लौट आवेंगे, आप सकुशल रहिये। तब तक आप समय समय पर मेरी मुरली, वंशी, विषाण, आदि की रखवाली करते रहिये, ऐसा न हो कि मेरा कोई खिलौना राधिका चुरा ले जाय। जिस दिनसे हम तुमसे बिछुड़े हैं उस दिन से हमें कोई कन्हैया नहीं कहता अर्थात् कोई दुलार से नहीं बुलाता। न प्रातःकाल कभी ठीक तरह से कलेऊ ही किया है और न शाम को कभी ताजे दूध की झाग (ताजे दूध की धार) ही पी है। वे कहते हैं, कि हे माँ! मैंने जितने दुःख उठाये हैं उनका क्या वर्णन करूँ कुछ कहते नहीं बनता। अब सुनते हैं कि वसुदेव और देवकी हमें अपना पुत्र कहते हैं। बाबा नंद से जाकर कहना कि उन्होंने तो अपना मन एक दम निठुर बना लिया है, वे जब से हमें मथुरा छोड़ गये हैं तब से उन्होंने फिर हमारी कुछ खोज-खबर नहीं ली।

मेरे कान्ह—बेर=बार। बहुरि=फिर। लालसा=कामना। अठान=अकरणीय कार्य, न करने योग्य काम। जोरी=जोड़ी। ऊतर=जवाब, उत्तर। सूतर=सूत्र, सम्बन्ध।

कमल की पंखुड़ी के समान आँखों वाले मेरे कृष्ण, इस बार फिर व्रज आओ। न मालूम तुम मन में क्या विचार करने लगे हो? मेरी केवल यही कामना शेष है कि मैं बैठ कर तुम्हें देखती भर रहूँ। कभी भूलकर भी तुमसे न कहूँगी कि तुम गायें चरा आओ। तुम्हारे जो जी में आये करना मैं तुम्हें अयोग्य काम और मक्खन की चोरी करने पर भी कभी न रोकूँगी। मैं तो अपने जीते जी (एक बार फिर) हीरों की सी, बलराम और कृष्ण की जोड़ी को आँखें भर कर देखना चाहती हूँ। बस एक बार यहाँ तक आकर मिल जाओ इसके अतिरिक्त और मैं क्या जवाब दूँ—क्या सन्देशा कहूँ?

मेहमानी के ही सम्बन्ध-सूत्र से चार दिन के लिए आकर मुझे सुखी कर जाओ।

अब नन्द गैयां—गइयाँ=गायें। आन=आकर। परगट=जन्म लिया। दिन चार=कुछ समय तक। प्रतिपार=(प्रतिपाल) पूरा करके।

हे नन्द, अब आप अपनी गायें सँभाल लीजिये। (तुमने जो किया था उसी को पूरा करने के लिये) मैंने तो तुम्हारे यहाँ जन्म लिया, और कुछ दिनों तक तुम्हारी गायें चरायीं और तुमने जो मेरा कुछ दिन तक पालन पोषण किया सो हमने उसके बदले कुछ दूध-दही सब चुराकर खाया। कवि कहता है, इस प्रकार सूरदास के स्वामी, कृष्ण, कपट रूपी-कागज फाड़ करके (मोह का सम्बन्ध छिन्न-भिन्न करके) ब्रज को छोड़ कर चल दिये।

१३. पाछहि चितवत—पाइ=पग। अम्बर=वस्त्र। रेणु=धूल सजनि=सखि। माधुरी=सुन्दर। रथ के अंग=रथके पहिये। पताका=ध्वजा।

मेरी आँखें पीछे की ओर ही देखती हैं, मेरे पैर भी (ब्रजकी ओर) आगे नहीं पड़ते। मेरा मन तो उस मधुर मूर्ति ने (लावण्य-प्रतिमा ने) हर लिया है अब ब्रज में जाकर क्या करूँगी ? मैं न हवा ही बन पायी न और आकाश ही बन सकी, न उनके रथ की ध्वजा ही हुई और न ही रथ का पहिया ही बनी। मार्ग की धूल भी न हुई नहीं तो उनके चरण से लिपटती हुई मथुरा तक तो उनके साथ जाती। हे सखी, अब किस प्रकार क्या उपाय किया जाय जिससे गोपाल कभी फिर आकर मिल सकें। कवि कहता है, इस

प्रकार, कृष्ण को मथुरा के लिए बिदा करके, गोपियाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

ऊधो हुतो—मधुबन=मथुरा। सुधि = खबर। सौंह = कसम। निठुराई = निष्ठुरता। कर्म की रेख = भाग्य के अक्षर।

ऊधो, तुम माँ (यशोदा) से मिलना और कुशल-क्षेम कहना। बाबा नन्द से हमारा प्रणाम कहना और बार बार उनके चरण छूना। उनसे प्रेम सहित शपथपूर्वक यह भी कहना कि जब से हम मथुरा आये हैं तब से उन्होंने खबर भी नहीं ली; भला इतनी निष्ठुरता का क्या कारण था ? यह भी कहना कि बलराम और कृष्ण, दोनों, ने कहा है कि हम दोनों भाई आयेंगे। (लेकिन) कृष्ण ने यह भी कहा है कि भाग्य में जो लिखा होता है वह अवश्य होता है, उसे कोई नहीं मिटा सकता।

गोपालहि बारे—बारे = लड़कपन। टेव = आदत। छल छेव = कपट व्यवहार। दह्यो = दही। हौं = मैं। कानि=शर्म, संकोच। मो पै = मुझसे। मन-माणिक = मन रूपी रत्न। हानि = नुकसान।

कृष्ण को बचपन से ही यह (चोरी की) आदत है। पता नहीं चोरी की यह छल-छिद्रता वे कहाँ से सीखे हैं ? लेकिन उस समय (बचपन में) दूध-दही ही चुराकर खाते थे। मैं भी कुछ न कहती थी, संकोच करती थी, और तरह दे जाती थी। लेकिन अब तो (दूध-दही का नुकसान नहीं है) मन जैसे (अमूल्य) रत्न का नुकसान है, भला इसे मैं कैसे (चुपचाप) सह सकती हूँ ?

ऊधौ नन्दनंदन—नन्दनंदन = कृष्ण । सो = से । वचन चातुरी = वाक्पटुता । कासो = किससे ।

हे ऊधो, कृष्ण को राजनीति समझाकर कहना कि तुम राजा होने पर भी लोभ नहीं छोड़ते; यह बात अब गुप्त नहीं रही। (उसी लोभ के वश होकर तुमने हम अबलाओं की) बुद्धि,ज्ञान और वाक्पटुता सब चुरा ली है । भला जब स्वामी (राजा) के ही ऐसे गुण हों तो फ़रियाद किससे की जाय ?

फिरि फिरि कहा—मौन = चुप रहना । दुसह = कठिनता से सहने योग्य । अलि = भौंरे । पजरे = जले । लौन = नमक । सींगी = शृंगी, सींग का बना हुआ एक प्रकार का बाजा जिसे कनफटे साधु बजाते हैं । मुद्रा = काठ के गोल कुंडल जिन्हें योगी कानों में पहनते हैं । भस्म = राख । अधारी = काठ के डंडे पर लगा हुआ काठ का पीढ़ा, जो साधु लोग सहारे के लिए रखते हैं । पौन = पवन । आराधन = अवरोधन, रोकना । पौन आराधन = प्राणायाम । शठ = दुष्ट । मधुकर = भौंरा । मत = सिद्धांत । तिनहि = उनको । सोहत = अच्छा लगता है। पोत = काँच की छोटी छोटी गुरिया, (दाने) जिनकी माला बनती है । पूतरी = पुतली । पोहत = गूँथते, पिरोते ।

ऐ भौंरे, तू बार-बार हमें क्या मौन रहना सिखाता है ? तेरी बातें हमें, जले पर नमक छिड़कने के समान, असह्य लगती हैं। ऐ दुष्ट, हम तो (गँवार, भोली-भाली) अहीर बालाएँ हैं; हम भला किस तरह शृंगी, कुंडल, राख और अधारी आदि धारण कर सकेंगी और हमसे कैसे प्राणायाम होगा ? तुम

यह (योग) सिद्धांत तो जाकर उन्हें ही सिखलाओ जिनको यह पसंद हो। पुतलियों को आज तक कांच के दानों की माला गूँथते न कभी सुना है, न देखा है, ऐसे ही हम योग साधन नहीं कर सकतीं।

ऊधौ जी हमहिं—नेम नियम। गूँदे = गुहे, गूँथे। भसम = राख।

ऐ ऊधो जी, हम लोगों को आप योग न सिखायें। हमें तो वही उपदेश दें और वैसे ही उपवास-नियम आदि बताएँ जिनसे कृष्ण मिल सकें। मुक्ति अपने घर बैठी रहे, हमें उसकी परवाह नहीं। निर्गुण की तो चर्चा चलाते हमें दुख होता है। (तुम्हीं बताओ) जिस सिर के बालों को फूलों से भर-भर करके गूँथा था उन पर अब राख कैसे मल सकेंगी! (खोज करने से) अपने आप में ही (निर्गुण रूप) दृष्टि-गोचर होंगे, यह सुन सुनकर तो हम सब आनंदित हो ली हैं, लेकिन यह बताओ कि नवनिधि भगवान् क्या फिर कभी व्रज में आयेंगे? "सूरदास प्रभु सुनहु न वा विधि" का अर्थ अस्पष्ट है। वियोगी हरि द्वारा संपादित "संक्षिप्त सूरसागर" में इसकी जगह "सूरदास प्रभु सुनहु नवोनिधि" पाठ है। इसी पाठ को ठीक मान कर हमने यह अर्थ किया है।

विनय पत्रिका

काहू के कुल—कुल = वंश। अविगत = ईश्वर, जो जाना न जा सके। ब्योहारत = (प्रेम का) व्यवहार करते हैं। तुष्टि = तृप्त होकर। ओछे = नीच। अनत = अन्त में।

भगवान् की भक्तवत्सलता का मैं कैसे बखान करूं, वे तो सभी पापियों का उद्धार करते हैं; किसी के (ऊँच-नीच) कुल की परवाह नहीं करते। विदुर को ही लीजिये, उनकी जाति और उनका वंश क्या था, जिनके साथ उन्होंने प्रेम का व्यवहार किया। राजा के सम्मान (दुर्योधन ने भी कृष्ण को बुलाया था) और अपने पद (अपनी मान मर्यादा) का परवाह न कर खूब तृप्तिपूर्वक उनके घर भोजन किया। जो जन्म और कर्म दोनों के विचार से नीच हैं और जो नीच ही कह कर पुकारे जाते हैं उन भक्तों के लिए तो अन्त में सूर के स्वामी की ही सहायता काम आती है

गोविन्द प्रीति—भाय=भाव। अन्तर=हृदय। कटु=खट्टे। भिलड़ी=शबरी, भीलनी। भक्ष=खाना। सदभाय=स्वाद से। सन्तत=निरन्तर, सदा। मीत=मित्र। कदली=केला। छिलरा=छिलका। शाक के पत्र=शाक के पत्तों से। अघाये=संतुष्ट हुए। ऋषि=दुर्वासा से तात्पर्य है।

भगवान् सबके प्रेम को मान देते हैं। जो भक्त जिस भाव से सेवा कर रहा है उसके हृदय के उस भाव का उन्हें पता है। शबरी ने बेरों को चखकर खट्टे-खट्टे निकाल कर मीठे-मीठे लाकर उन्हें दिये थे, लेकिन उन्होंने बेरों के जूठे होने की कुछ परवाह न की थी बल्कि उन्हें खूब स्वाद ले लेकर खाया था। सदा से ही भक्त और मित्रों के हितैषी भगवान् जब विदुर के घर गये तो भक्ति से गद्गद् विदुर द्वारा दिये गये केले के छिलकों को खाने में उन्होंने संकोच न किया। कौरवों के

काम पर जाते हुए ऋषि(दुर्वासा)* को उन्होंने अपने एक शाक के पत्ते से तृप्त कर दिया। कवि कहता है कि इसी प्रकार दयासिन्धु भगवान् सदा भक्तों को उत्साह देते हैं।

---

*पांडवों के वनवास के समय एक वार महर्षि दुर्वासा कौरवराज दुर्योधन के यहाँ अपने १० हज़ार शिष्यों सहित पधारे। दुर्योधन ने यह सोचकर कि अगर मैं अपनी सेवा से इन्हें सन्तुष्ट कर लूँ और इन से युधिष्ठिर आदि को शाप दिला दूँ, तो उनका बचना कठिन है, महर्षि की खूब सेवा की। अंत में दुर्वासा ऋषि उस पर प्रसन्न हुए और बोले—वर माँग। दुर्योधन ने हाथ जोड़ कर कहा—भगवान्, हमारे कुल में महाराज युधिष्ठिर सब से बड़े और सब से श्रेष्ठ हैं, सो जिस तरह आपने हमारे यहाँ पधार कर हमें अनुगृहीत किया है ऐसे ही आप वन में जाकर उनके भी अतिथि हूजिए, और ऐसे समय जाइये कि जब कि सौभाग्यवती द्रौपदी सब ब्राह्मणों और पतियों को खिलाकर और आप भी भोजन करके विश्राम कर रही हो।

'तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यही करूँगा,' ये वचन कहकर ऋषि वहाँ से चल दिये।

दुर्योधन ने पिछली बात इसलिए जोड़ी थी कि द्रौपदी को सूर्य भगवान की एक अक्षयस्थाली मिली हुई थी जिसके द्वारा वह जब तक आप भोजन न कर ले तब तक चाहे जितने आदमी आवें सबको भोजन करवा सकती थी।

महर्षि दुर्वासा कौरवराज के यहाँ से चलकर शिष्यों सहित पांडवों के पास उस समय पहुँचे जब कि द्रौपदी सहित पांडव भोजन कर विश्राम कर रहे थे। युधिष्ठिर ने उनका सत्कार किया और कहा कि

अब हौं नाच्यो—चोलना=चोला, लंबा कुरता । नुपूर=घुँघरू। पखावज=मृदंग । असंगत चाल=बेसुरा। फेंटा=कमरबन्द। कोटिक कला काछि दिखराई=भेष बदल बदल कर अनेक स्वांग किये अर्थात् अनेक जन्म जन्मान्तरों में

आप स्नान आदि से निवृत होकर भोजन कीजिये। दुर्वासा तो इसी लिये आये ही थे। वे नहाने गये तो द्रौपदी बड़ी चिंता में पड़ गई। तब उसने भक्त-वत्सल कृष्ण का स्मरण किया। द्रौपदी की करुण पुकार सुन भगवान कृष्ण स्वयं वहाँ आ उपस्थित हुए। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने भी द्रौपदी से खाने को माँगा। द्रौपदी ने कहा—सूर्य भगवान की दी हुई थाली में तब तक ही अन्न रहता है जब तक मैं भोजन न करूँ। जब मैं खा चुकूँ तो उसमें कुछ नहीं रहता। भगवान् कृष्ण ने फिर भी थाली लाने को कहा। द्रौपदी विवश होकर वह थाली उठा लाई। इस थाली के एक किनारे पर शाक का एक कण लगा था। कृष्ण ने उसे ही लेकर खा लिया। इसके बाद भीमसेन को भेजा कि जाओ ब्राह्मणों को बुला लाओ। इधर जब ब्राह्मण नहा धो चुके तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि वे खा पी कर तृप्त हो गये हैं और अब वे भोजन न कर सकेंगे। तब वे सोचने लगे कि हमारे पेट तो अचानक ऐसे भर गये हैं कि अब हम खा नहीं सकते, और उधर हमने युधिष्ठिर को यों ही कष्ट दिया। अब क्या करें ? दुर्वासा बोले यह सचमुच हम से बड़ा अपराध हुआ, अच्छा हो हम यहाँ से भाग चलें। जब भीम घाट पर पहुँचे तो दुर्वासा और उनके शिष्य कहीं न दिखाई दिये। निराश हो वे वापिस लौटे। तब भगवान कृष्ण ने सारा हाल कह सुनाया।

भटकता रहा। सुधि नहिं काल = न जाने कितना समय बीत गया। अविद्या = अज्ञान।

हे भगवान, मैं काम और क्रोध का चोला पहनकर और गले में आसक्ति (विषय-वासना) की माला डालकर बहुत नाच चुका। मोह के घुँघरू बजते रहे और निंदा की मधुर झनकार निकलती रही। भ्रम में पड़ा हुआ मेरा मन मृदङ्ग बन गया लेकिन भय के कारण बेसुरा रह गया (श्री वियोगी हरि, श्रीभगवान दीन तथा श्री मिश्रबन्धु आदि विद्वानों द्वारा संपादित सूरदास के ग्रन्थों में "डरप असंगत चाल" के स्थान पर "चलत कुसंगति चाल" पाठ है, जिसका अर्थ है कि भ्रम में पड़ा मनरूपी मृदंग कुसंगति की राह पर चलता है) इस शरीर के भीतर तृष्णारूपी ध्वनि विविध प्रकार के ताल देने लगी। मैंने माया का कमरबन्द बाँध लिया, और माथे पर लोभ का तिलक लगा लिया, तथा भेष बदल बदल कर कितने समय तक (जिसका अब पता नहीं) जल थल में सर्वत्र अनेक स्वाँग किये अर्थात् अनेक जन्म-जन्मान्तरों में भटकता रहा। सूरदास के उस अज्ञान को अब हे भगवान्, आप दूर करें अर्थात् उसे सांसारिक जन्म-मरण के बंधन से मुक्त कर दें। मूल में "काम क्रोध को परिहरि चोलना" है, उसकी जगह "काम क्रोध को पहरि चोलना" चाहिये, नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है, और छंद भी टूटता है।

कृपा अब कीजिये—बलिजाऊँ = बलाएँ लूँ। पद अंबुज = चरण-कमल। अशुची = अपवित्र। अकृती = अकर्मी। अपराधी = पापी। अधम उधारन = पापियों की रक्षा करने वाले। काके =

किसके । सुहाउँ=अच्छा लगूँ। विरद=यश। कलुषी=पापी। सेंतहौं=मुफ्त ।

भगवन्,मैं आपकी बलाएँ लेता हूँ,अब मेरे ऊपर दया कीजिये। आपके चरण-कमलों के बिना अब मुझे और कहीं स्थान नहीं है। मैं अपवित्र, अकर्मी और पापी हूँ इससे आपके सामने आते मुझे लज्जा लगती है। लेकिन हे केशव, आप तो दयालु हैं और करुणा के सागर हैं। आप पापियों का उद्धार करने वाले कहे जाते हैं। (आपको छोड़ कर) किसके दरवाजे पर जाकर खड़ा होऊँ और मैं देखने में किसे अच्छा लगता हूँ ? मैं तो कुटिल हूँ और कामी स्वभाव वाला हूँ, पर आपका यश फैला हुआ है कि आप अशरण-शरण हैं अर्थात् उसको आश्रय देते हैं जिसे कोई नहीं पूछता। मैं तो अत्यन्त पापी, काला और दुर्जन हूँ, मुफ्त भी कोई मुझे नहीं पूछेगा। (मुझे बताइये) आपके पारस जैसे, पापियों को पवित्र करने वाले, चरण-कमलों का किस प्रकार स्पर्श प्राप्त करूँ ?

नाथ जू अबके—उबारो=उद्धार करो । पासंग=तराजू के पलड़ों का फर्क। भमन=(भवन) घरों। गारो=गर्व। निस्तारो=उद्धार करो।

हे स्वामी, तुम्हारा नाम पतितपावन है, और मैं पतितों (पापियों) में मशहूर पतित हूँ। अबकी बार (जरा) मेरा उद्धार तो कीजिये। अजामिल की क्या हस्ती थी, जिसका मैं विचार करूँ, बड़े से बड़े पापी तो मेरे पासंग के बराबर भी नहीं हो सकते। नरक मेरा नाम सुनते ही भागता है, (मेरे डर के कारण) वहाँ भवनों में ताले डाल दिये गये हैं। (अर्थात् मुझे नरक में भी स्थान मिलना कठिन है)। हे भगवान, तुमने अब तक छोटे-मोटे

पापियों को ही तारा है, इसलिए (उसका) अपने जी में गर्व न लाइये ! 'सूरदास' तो तभी आपका कायल होगा (वह इसको तभी सच्चा मानेगा) जब आप उसका उद्धार करेंगे।

छांड़ि मन—हरि विमुखन को = अभक्तों का। पय = दूध। भुवंग = साँप। कहा = क्या। अरगजा = सुगन्धित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है, यह केसर चंदन कपूरादि के मिलाने से बनता है। खर = गधा। मरकट = बंदर। पाहन = पत्थर। पतित = गिरा हुआ। रीतो = खाली। निषंग = तरकस। खल = दुष्ट।

हे मन, हरि से विमुख लोगों (अभक्तों) का साथ छोड़ दे, जिन हरि से विमुख लोगों के संग से कुबुद्धि उत्पन्न होती है, और प्रभु के नाम के भजन में भंग पड़ता है तथा जो रात दिन काम क्रोध मद लोभ मोह में फँसे रहते हैं। (जो तू समझे कि उन का स्वभाव बदल जायगा तो यह असम्भव है) साँप को दूध पिलाने से क्या होता है, वह अपना विष तो छोड़ता नहीं। कौवे को कपूर खिलाने से और कुत्ते को गंगा में नहलाने से क्या फायदा ? गधे को अरगजा का लेप करने से क्या (वह तो झट मट्टी में लोटने लगेगा)। बंदर के शरीर पर गहने पहनाने से क्या फायदा (वह उन्हें तोड़-फोड़ देगा) ऐसे ही पत्थर पर गिरा हुआ वाण उस पत्थर में छेद नहीं करता वरन् तरकस को ही खाली कर देता है। सूरदास कहते हैं कि इसी तरह दुष्टरूपी काली कमली पर (करोड़ों यत्न करने पर भी) दूसरा रंग (हरिभक्ति का) नहीं चढ़ता।

सबै दिन—सुमिरन = ध्यान। जौ लगि = जब तक। कमला = लक्ष्मी। टटोरत = छानते, तलाशते। बालापन = बचपन। अरसात = अलसाते। परमपद = मोक्ष।

सब दिन एक ही से नहीं कटते इसलिए जब तक शरीर स्वस्थ और सकुशल है तभी तक भगवान् का ध्यान और उसकी

भक्ति करलो। कभी चंचल लक्ष्मी पाकर तुम गर्व से टेढ़े ही टेढ़े चलते हो लेकिन कभी रास्ते की धूल भी छाननी पड़ती है और पेट भरने के लिए दुखी होना पड़ता है। बचपन तो खेल-खेल में ही गँवा दिया, भक्ति करने में तुम्हें आलस्य आता है। सूरदास कहते हैं, कि हे भाई मोक्ष तो तभी मिलेगा जब भगवान् की भक्ति करोगे।

भजहु न मेरो—तृष्णा = इच्छा, कामना। अधार = अवलंब। अखिल अधिकारी = सबका स्वामी। तरंग = लहर।

मेरे भगवान् कृष्ण का भजन क्यों नहीं करते? (वे) प्यारे हितकारी कमल-नेत्र कृष्ण समस्त संत लोगों के प्राण-स्वरूप हैं। यह संसार एक समुद्र है, इसमें मोह का जल भरा है और तृष्णा की ही भयानक लहरें उठ रही हैं। जिसके पास भगवान् की भक्ति रूपी नाव नहीं है, ऐसा सांसारिक प्राणी भगवत् भजन के बिना उस समुद्र में डूब जाता है। वही सबका स्वामी, परम चतुर, दीनों पर दया करने वाला और सबका एक मात्र सहारा है। सूरदास कहते हैं, (ऐसी हालत में) तुम जन-जन से याचना करके अपने को भिक्षुक क्यों कहलवाते हो? 'पाँचे' की जगह 'याँचे' पाठ चाहिए।

मों सों पतित—गुसांई = स्वामी। पचेउ = प्रयत्न किया। अब ताईं = अब तक। गुंजा = घुंघची, रत्ती। नाईं = भाँति। परसत = छूते। लुब्ध्यो = लुभाया। कनक = सोना, लक्ष्मी। जलछाईं = जल में की परछाईं। जिह्वा = जीभ। लौं = तरह। फँदाई = जाल। मुदित = सुखी। निधि = संपत्ति। पराई = दूसरे की।

ऐ स्वामी, मेरे समान दूसरा और कोई पापी नहीं है। मैंने अब तक बहुत प्रयत्न किया लेकिन मैं अपने अवगुणों को नहीं छोड़ सका। जिस प्रकार बन्दर घुँघची (रत्ती) को आग समझकर, सरदी से बचने के लिए, छूता है लेकिन वह उसे कितनी ही पास क्यों न रक्खे उसकी सरदी नहीं जाती उसी प्रकार मैं भी जन्म-जन्मान्तर में अज्ञानवश कुछ को कुछ समझता रहा (साँसारिक भोग-विलास से सुख पाने की आशा करता रहा और तत्वबोध से वञ्चित रहा)। मैं उसी तरह धन-वैभव और स्त्री में लुभाया हुआ रहा जैसे बच्चा जल में परछाईं देख कर भूला रहता है। मछली की तरह मैं जीभ के स्वाद में भूला रहा और जाल को नहीं देख सका (इस असार संसार) में उसी प्रकार सुख मानता रहा जैसे मनुष्य सपने में किसी दूसरे की सम्पत्ति हाथ में आ जाने पर प्रसन्न होता है, लेकिन जाग पड़ने पर उस में से कुछ हाथ नहीं लगता, सूरदास कहते हैं कि यह ऐसी ही महिमा है।

प्रीतम जानि लेहु—प्रीतम = प्यारे। नेरे = समीप। हंस = जीवात्मा। प्रेत = भूत। विधि = तरीका। नाहक = व्यर्थ। गँवायो = बिताया।

ऐ प्रिय, मन में समझ लो कि सारी दुनिया अपने सुख के कारण बँधी है (दुनियाँ के सारे संबंध अपने सुख के कारण हैं) वास्तव में कोई किसी का नहीं है। सुख के समय (समय अनुकूल होने पर) सब लोग पास आकर बैठते और चारों तरफ से घेरे रहते हैं। पर दुख पड़ने पर सब साथ छोड़

देते हैं, कोई पास नहीं फटकता। अपनी स्त्री जिससे बहुत प्यार होता है और जो हमेशा साथ लगी रहती है वह भी जब जीवात्मा इस शरीर को छोड़ देता है तब 'भूत-भूत' कह कर भागती है। दुनियाँ का सारा संबंध, इसी ढंग का (झूठा) है और तू उसीसे प्रेम करता है। कवि कहता है, कि तूने ईश्वर के भजन के बिना व्यर्थ ही जिन्दगी बितादी।

अब मैं जानी—सिरानी = मंद पड़ गई। आन = और। आनै = और ही। हेरानी = खो गई। बिरानी = परायी। चेत ले = होश में आ जा। शारंगपानी = विष्णु भगवान्।

अब मुझे पता चला कि मेरा शरीर बुड्ढा हो गया है। सिर से पैर तक कोई अंग वश में नहीं रहा, शरीर की अच्छी हालत मंद पड़ गई, शरीर की शक्ति मंद पड़ गई। कहता कुछ हूँ और मुँह से निकलता कुछ और है, नाक और आँखों से पानी बहने लगा है। हर एक अंग की चमक-दमक चली गई है और बुद्धि भी खो गई है। तन-मन का कुछ होश नहीं रहा। सूरदास कहते हैं, (खैर) अभी भी होश में आजा और भगवान् विष्णु का भजन कर ले (नहीं तो अगले क्षण में) बात दूसरे के वश हो जायगी।

———

नरोत्तमदास

सुदामा चरित्र

सुदामा नाम का एक गरीब ब्राह्मण, और द्वारकाधीश कृष्ण बचपन में एक साथ पढ़ते थे, सुदामा बहुत गरीब था, और कृष्ण थे राजा। सुदामा की स्त्री ने सुदामा को अपनी दरिद्रता दूर करने के लिए द्वारका जाने की सम्मति दी, इसी कथानक का कवि ने यहां वर्णन किया है।

लोचनकमल दुखमोचन—लोचन-कमल = कमल के समान लोचन (नेत्र) हैं जिनके। दुखमोचन = दुख से छुड़ाने वाले। तिलक = टीका। श्रवण = कान। कुंडल = कान का एक गहना। पीत वसन = पीला कपड़ा, पीताम्बर। वैजयंती = पाँच रत्नों (नीला, मोती, मानिक, पुखराज और हीरा) की माला। पद्म = कमल। (सुदामा की स्त्री बातों में कहती है)

जिनके कमल के समान नेत्र हैं, जो दुःखों से छुड़ाने वाले हैं, जिनके माथे पर टीका, कानों में कुंडल तथा सिर पर मुकुट है, जो पीला कपड़ा (पीताम्बर) पहनते हैं, और जिनके गले में पांच रत्नों की माला है, तथा जो हाथ में शंख, चक्र, गदा और कमल लिए रहते हैं, आपही कहते थे कि वे भगवान् श्रीकृष्ण और आप संदीपन गुरु के पास एक साथ पढ़े हैं, अर्थात् आप और वे दोनों सहपाठी हैं। वे (तुम्हारे सहपाठी) भगवान् कृष्ण द्वारका में जानेपर तुम्हारे दारिद्र्य को दूर कर देंगे, क्योंकि वे द्वारका के नाथ (राजा) अनाथों के नाथ हैं, अनाथों के पालक हैं।

शिक्षक हैं—सगरे = सारे। सिच्छा = शिक्षा, सीख। पंकज = कमल। परिच्छा = परीक्षा।

(सुदामा ने कहा) हे प्यारी! जो (ब्राह्मण) सारे संसार के गुरु हैं, उनको तू अब क्या सीख देती है? जो तप द्वारा अपने परलोक को बनाते हैं, उनको संपत्ति की इच्छा नहीं रहती।

मेरे हृदय में हरि के चरण-कमल विराजमान हैं, अर्थात् हरिकी भक्ति मौजूद है, चाहे हज़ार बार उसकी जाँच करके देख ले। हे पगली ! यह धन तो दूसरों (क्षत्रियों और वैश्यों) को चाहिये ब्राह्मण का धन तो केवल भीख ही है।

कोदौं समा जुरतो—कोदों (कदन्न) एक प्रकार के घटिया चावल। सामाँ = सवाँक। जुरतो = मिलता। भरिपेट = भर पेट। मिठौती = मिठाई। सिसिआतहि = सीसी करते ही। हठती = ज़िद करती। हठौती = हठ करवाती। ठेल = धक्का देकर। पठौती = भेजती। कठौती = काठ की छोटी सी परात।

(सुदामा की स्त्री बोली) यदि कोदों और सवाँक ही भर पेट मिल जाते तौ मैं कभी दही, दूध और मिठाई न चाहती। सारी सर्दी सी-सी करते बीत गई, मैं स्वयं हठ कर लेती थी पर तुम्हें हठ न करने देती। यदि मैं यह न जानती कि तुम्हारी श्रीकृष्ण जी से मित्रता है तो मैं तुम्हें क्यों ज़बरदस्ती द्वारका भेजती। हे प्रिय ! इस घर से टूटा तवा और फूटी कठौती तो कभी गये ही नहीं (टूटा तवा और फूटी परात दरिद्रता की निशानी है) भाव यह है कि दरिद्रता तो कभी इस घर से दूर हुई ही नहीं।

छाँडि सबै—झक = सनक। याम = पहर। ठक = ज़िद। देहैं लदाय लद्दा = छकड़ा लदा देंगे, खूब देंगे। लदा = बैलगाड़ी। अटारी = ऊँची छत, चौबारा। अटा = ऊँची छत। छानी = छप्पर। ललाट = माथा। अजानी = मूर्ख।

(सुदामा अपनी स्त्री को उत्तर देते हैं) सब सनक छोड़ कर तुझे यही बकवास लगी है, और तूने आठों पहर यही जिद ठानी है। तू अपने दिल में यही समझती है कि द्वारका में जाते ही वे (भगवान कृष्ण) छकड़ा लदा देंगे अर्थात् खूब माल देंगे, और

मैं छकड़ा लदाकर ले आऊँगा, (परन्तु तू यह नहीं जानती) जिनको विधाता ने टूटा सा छप्पर दिया है, वे ऊँचे चौबारे और कोठे कहाँ से पायेंगे। जो विधाता ने ही हमारे माथे में गरीबी लिखी है, तो हे मूर्ख स्त्री ! किसी के मिटाने से वह दरिद्रता दूर न होगी।

फाटे पट टूटी--पट = कपड़े। विमुख = प्रतिकूल। पित्रई = पितर भी। अगत्रई = पहले से ही। विचित्रई = विचित्रता।

(सुदामा की स्त्री बोली) कपड़े फट गये हैं, छप्पर टूट गया है और भीख माँग कर खाते हो, बिना गये (बिना रुपये लाये और यज्ञ किये) देवता और पितर लोग भी विमुख रहते हैं। वे कृष्ण दीनबंधु हैं, तुम्हें दुखी देख कर कृपा करेंगे, और कुछ अच्छा-सा (खूब) देंगे, यह मैं पहले से ही जानती हूँ। द्वारका तक जाने में हे प्यारे ! तुम कितना आलस करते हो और काहे को लज्जा करते हो, कौन सी ऐसी विचित्रता होगई है ! यदि जन्म भर इसी प्रकार दारिद्र्य ने सताए रक्खा तो फिर कृपानिधि भगवान की मित्रता किस काम आएगी ?

तैं तो कही--नीकी = भली। प्रीति सरसाइये = मेल-मिलाप बढ़ाना चाहिये। जेंइये = खायें, भोजन करें। जिमाइये = भोजन करवाइये। जोरि = इकट्ठा करके। भूप = राजा।

(सुदामा बोले) हे प्यारी ! तूने तो खूब ठीक कहा है, परन्तु यह भले की बात भी सुन कि मित्रता की यही रीति है कि नित्य ही प्रीति (मेल-मिलाप-मुहब्बत) बढ़ाया जाय। यदि आपस में दोनों का दिल मिल जाय, अर्थात् मित्रता हो जाय, तो दोनों के पास धन भी होना चाहिये, क्योंकि यदि मित्र के यहाँ खाया जाय, तो आप भी उसे खिलाना चाहिये। वे तो महाराज हैं, कई राजाओं के समूह को इकट्ठा करके बैठते हैं, अर्थात् उनके

अधीन के कई छोटे-मोटे राजा उनके पास बैठे रहते हैं, वहाँ पर इस शकल में जाकर क्यों व्यर्थ ही शर्मिंदा होऊँ। दुख-सुख सब दिन काटने ही पड़ेंगे, विपत्ति पड़ने पर भूल कर भी मित्र के यहाँ सहायता के लिए नहीं जाना चाहिये।

द्वारका जाहु जु द्वारका—गति = दशा। छड़िया = द्वारपाल, दरबान। नेरे = निकट। चामर = चावल।

(फिर सुदामा बोले) द्वारका जाओ, द्वारका जाओ, हे प्यारी! आठों पहर (दिनरात) तुझे यही सनक सवार है। जो तेरा कहा न करूँगा, अर्थात् द्वारका न जाऊँगा तो तू बड़ा दुख पावेगी परन्तु अपनी दशा देख कर सोचता हूँ कि मैं वहाँ कैसे पहुँचूँगा! वहाँ द्वारकाधीश के दरवाजे पर तो चौकीदार खड़े रहते हैं, और राजा लोग भी पास नहीं जाने पाते। समझ कर देखो वहाँ जाने के लिए पान-सुपारी (जो राजाओं को भेंट की जाती) तो चाहिये ही पर मेरे पास तो भेंट देने के लिए चार चावल भी नहीं हैं।

यह सुनि के—यह बात सुनकर (कि मेरे पास भेंट को चार चावल भी नहीं हैं) ब्राह्मणी (सुदामा की) स्त्री पड़ोसिन के पास गई, और बड़ी खुशी (हुलास) के साथ सवा सेर चावल ले आई।

सिद्धि करौ गणपति—सिद्धि करौ = (मु०) प्रस्थान करो। गणपति = गणेश। दुपटिया = छोटासा दुपट्टा। खूंट = किनारा। बाली = अनाज के बाल। बूट = चने का पौधा।

(ब्राह्मणी सुदामा से बोली)

दुपट्टे के किनारे ये चावल बाँधकर और गणेशजी का स्मरण कर प्रस्थान करो। अनाज के बाल और चने के पौधे माँगते खाते उसी रास्ते से चले जाओ।

दृष्टि चकाचौंध—सरस = बढ़कर। भौन = महल। साधि साधि मौन = मौन साधकर। धाय = दौड़कर। गौन = गमन। बलवीर = बलराम के भाई कृष्ण।

सुदामा जब द्वारका पहुँचे तो उनकी नज़र सुवर्णमयी द्वारका को देख चुँधिया गई। वहाँ द्वारका में एक से एक बढ़कर (आलीशान) महल हैं। और पूछे बिना कोई किसी से बात नहीं करता, सब देवताओं की तरह मौन साधकर बैठे हैं, अर्थात् चुपचाप अपने अपने कामों में लगे हैं। सुदामा को देखकर पुरवासियों ने दौड़कर उनके पाँव पकड़ लिए, और उनसे पूछा कि हे ब्राह्मण देवता! कृपा करके बताइये कि आप किसके पास जा रहे हैं? (इस पर सुदामा जी बोले) भाई! बताओ कि अधीर आदमियों के धीरज—अनाथों के नाथ, और दूसरों की दर्द हरने वाले बलराम के भाई भगवान कृष्ण के यहाँ पर महल कौनसे हैं?

द्वारपाल चलि—इस पर द्वारपाल वहाँ गया जहाँ यदुराज कृष्ण बैठे थे और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—:

शीश पगा न झगा—पगा = पगड़ी। झगा = झग्गा, कुरता। आहि = है। उपानह = जूता। सामा = सामान। चकि रह्यो = आश्चर्यचकित हो रहा है। अभिरामा = सुंदर।

सिर पर पगड़ी और बदन पर कुरता नहीं है, हे प्रभु! न जाने कौन है, और किस गाँव में रहता है! उसकी धोती और दुपट्टा भी फटा हुआ है, तथा पैर में जूता तक नहीं है इस तरह

का एक दुर्बल ब्राह्मण द्वार पर खड़ा खड़ा यहाँ के सुंदर महल देखकर आश्चर्यचकित हो रहा है, और दीनदयाल का नाम पूछता है तथा अपना नाम सुदामा बताता है ।

ऐसे बिहाल बिवायन—बेहाल = दुखी। बिवायन = बिवाइयों से, पैर की ऐडी के फटने से । कंटक = कांटे । जोये = देखे ।

(श्रीकृष्ण जी ने) सुदामा के पैर बिवाइयों से बेहाल तथा काँटोंसे भरे हुए देखे । उस पर वे उनसे बोले—हाय मित्र ! तुमने तो बड़ा दुख पाया है, यहाँ क्यों नहीं आये, इतने दिन तुमने कहाँ गँवा दिये ? इस तरह सुदामा की बुरी हालत देखकर बहुत अधिक दुख करके अत्यंत दयालु श्रीकृष्ण रो पड़े। (पैर धोने के लिए) उन्होंने परात के पानी को हाथ भी नहीं लगाया, अपनी आँखों के जल से ही सुदामा जी के पैर धो डाले ।

तंदुल त्रिय—तंदुल = चावल । बिभव = ऐश्वर्य ।

स्त्रीने सुदामा को चावल दिये थे और कहा था कि ये जाकर प्रभु को भेंट कर देना । परंतु सुदामा कृष्णजी की राज-सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य को देखकर सकुचाते हैं, उन्हें दे नहीं सकते ।

कछु भाभी—चाँप रहे=दबा रहे हो ।

(कृष्ण जी बोले) हे सुदामा, जो कुछ भाभी ने हमारे लिए दिया है, वह तुम हमें क्यों नहीं देते और गठरी को बगल में कहो किस लिए दबा रहे हो ?

आगे चना—बानि=आदत । सुधारस=अमृत से सने हुए, बहुत मीठे। पाछिली=पिछली, (पहले की) अजौं=अब ।

कृष्ण ने सुदामा से मुस्कुराकर कहा, पहले गुरुमाता ने चने दिये थे,* वह तुमने खुद चबा लिए थे, और हमें नहीं दिये थे। तुम सचमुच चोरी करने में बड़े चतुर हो, इसीलिए तुम अब गठरी को काँख में दबा रहे हो, और ये अमृत से सने (चावल) खोलते नहीं हो। हे सुदामा, तुमने अपनी पिछली आदत अब तक नहीं छोड़ी (जिस तरह तुम अकेले अकेले गुरु-माता के दिये हुए चने चबा गये थे) इसी तरह ये भाभी के चावल भी तुमने कर लिए हैं।

खोलत सकुचत--जीरण पट=(जीर्ण) पुराना कपड़ा। चितवत=देखते हुए।

कृष्ण जी को ओर देखते हुए सुदामा गठरी खोलते सकुचा रहे थे। पर इतने में पुराने कपड़े के फट जाने से चावल छूट गये, और उसी स्थान पर बिखर गये।

कह्यो विस्वकर्मा को--छबही=छवि के

भगवान् कृष्ण ने विश्वकर्मा से कहा कि तुम अभी जल्दी ही जाकर सुदामाजी का शहर बनाओ। रत्नों से जड़े हुए द्रव्य धन और सोने वाले सब कोट (महल) तथा बाजार और फूलों के बाग

---

*एक बार उज्जयिनी में पढ़ते समय गुरुमाता ने सुदामा को कुछ चने दिए थे और कहा था—"लो, श्रीकृष्ण को साथ लेकर लकड़ी ले आओ और दोनों जने चने चबा लेना"। जब ये दोनों वन में गए तो बड़े जोर से पानी बरसने लगा। दोनों मित्र भटककर अलग-अलग हो गए। सुदामा को भूख लगी, ये सब चना उड़ा गए। श्रीकृष्ण के मिलने पर भी नहीं बताया कि हमें चने चबाने को दिए गए थे। यह बात उन्हें लौट आने पर मालूम हुई।

इसी समय बनादो। उनके दरवाज़ों पर कल्पवृक्ष, हाथी,रथ,सवार तथा प्यादे खड़े करदो तथा देवताओं की सी सुन्दरता वाले अपार दास-दासी बनादो। जहाँ पर इन्द्र,कुबेर आदि देवता तथा देवताओं की स्त्रियाँ और अप्सरा तथा गुणी गन्धर्व सबही खड़े रहें।

नित नित सब—प्रतिदिन प्रभु ने स्वयं सुदामा को सारी द्वारिकापुरी तथा अनुराग-भरे बाग, जहाँ ज़रा भी कष्ट नहीं था दिखलाये।

परम कृपा दिन—कृपालु यदुराज ने प्रतिदिन अधिक ही कृपा की, और दूने आदर भाव से मित्र-भावना (मित्रता) को बढ़ाया।

देने हुतो सो—गोपाल कृष्ण जी ने सुदामा जी को जो कुछ देना था, वे वह पहले ही दे चुके थे, पर ब्राह्मण के वह बात न पता लगी और चलते समय सुदामा जी के हाथ में उन्होंने कुछ न दिया।

गोपुर लों—गोपुर=शहर का फाटक।

शहर के फाटक तक सुदामा जी को पहुँचाकर सब दरबारी वापिस आ गये। मित्र से जुदा होने वाले कृष्ण की आँखों से आँसुओं के जल की धारा बह निकली।

बालापन के—(इधर सुदामा जी अपने मन में सोचते जाते थे कि देखो कृष्ण ने इतनी मित्रता दिखाई, पर चलते समय हमें कुछ नहीं दिया। खाली हाथ लौटा दिया) कृष्ण, तुम मेरे बचपन के मित्र थे, अतः तुम्हें क्या शाप दूँ। अच्छा, हे कृष्ण जैसा तुमने मुझे दिया, वैसा तुम स्वयं पाओगे। (कृष्ण वास्तव में सुदामा को बहुत कुछ दे चुके थे, अतः यह शाप वर-स्वरूप ही हुआ)

और कहा कहिये--(सुदामा अपने मन में कहते हैं) और क्या कहें जहाँ सब कंचन (सोने) ही के घर हैं, (वहाँ रहते रहते) भगवान का हृदय भी बहुत कठोर हो गया है, अतः उन्होंने मुझे कुछ रुपये न दिये।

इमि सोचत--झकत = क्रोध में आकर अनुचित बात कहते हुए। हय = घोड़े। गयन्द = हाथी।

इस तरह सोचते-सोचते तथा क्रोध में आकर अनुचित बातें कहते हुए सुदामा जी अपने शहर के पास पहुँच गये। वहाँ पर उनकी नज़र एक बार ही घोड़ों और हाथियों की भीड़ पर पड़ी।

रहीम के दोहे

१. सर सूखे पंछी—तालाब के सूखने पर पक्षी उड़ जाते हैं और दूसरे तालाबों में पहुँच जाते हैं। परन्तु बेचारी मछलियाँ—जिनके कि पंख नहीं हैं—कहाँ जाँय ? वे तो बेबस हैं।

२. धूर धरत निज—(पहली पंक्ति में रहीम प्रश्न करते हैं कि) हाथी धूल उड़ा कर सिर पर किस लिए डाल रहा है ? (दूसरी में उसी का उत्तर है कि) जिस रज (रामचन्द्रजी के पैरों की धूल) से मुनि-पत्नी (गौतम मुनि की पत्नी अहल्या) तर गई थी उस धूल को यह ढूँढ़ रहा है, उस पवित्र रजका स्पर्श करके भी वह मुक्त होना चाहता है।*

३. दीन सबन को—दीन सब को देखता है, (कुछ पाने की भावना से) सबका मुँह ताकता है, पर दीन को कोई नहीं देखता, रहीम कहते हैं कि जो दीनों को देखता है, वह दीनबन्धु अर्थात् परमात्मा के समान हो जाता है।

---

* एक दिन गौतम मुनि की अनुपस्थिति में इन्द्र उनका भेष धारण कर उनकी पत्नी अहल्या के पास पहुँच उससे सम्भोग कर रहा था कि इतने में गौतम आ गये। तब अहल्या ने घबरा कर इन्द्र से पूछा कि सच बताओ तुम कौन हो ? इन्द्र ने अपना नाम बताया, तब उसे छिपा कर अहल्या दरवाज़ा खोलने गई। ऋषि ने देर से आने का कारण पूछा, जब अहल्या ने छिपाया तब गौतम मुनि ने तपोबल से उसका मर्म जान इन्द्र को शाप दिया कि तेरे शरीर में सहस्र भग होवें और अहल्या से कहा—'हे अहल्या ! तूने झूठ बोला है, अतः तू शिला होजा और जब श्रीरामचन्द्रजी तुझे दर्शन देंगे तब तेरा उद्धार होवेगा।'

४. राम न जाते--रहीम कहते हैं कि यदि भावी (होनहार) कहीं अपने हाथ में होती तो न राम हरिण के साथ (पीछे) जाते और न सीता रावण के साथ जाती।

५. कहु रहीम कैसे—रहीम कहते हैं कि बेर और केले का साथ कैसे निभ सकता है, बेर तो अपने रस में मस्त होकर झूमते हैं, और केले के पत्ते काँटों से छिद जाते हैं दुष्ट आदमी के साथ निभाना बहुत कठिन है।

६ जो रहीम ओछो—रहीम कहते हैं कि यदि नीच आदमी बड़ा पद प्राप्त करले तो वह बहुत घमंड करने लगता है। जैसे शतरंज की गोटियाँ जब प्यादे से फर्ज़ी बन जाती हैं तो टेढ़ी टेढ़ी चलने लगती हैं। प्यादा सीधा एक ही घर आगे चल सकता है, पर जब फर्ज़ी (वज़ीर) बन जाता है तो वह आगे, पीछा, तिरछा सब तरफ चल सकता है।

७. नैन सलोने—नैन = आँखें। सलोने = १. सुन्दर, २.नमकीन। अधर = ओष्ठ। मधु = मीठा।

आँखें सलोनी हैं और ओष्ठ मधुर हैं दोनों में से कम कौन है? (भाव यह है कि आँख की सुन्दरता और ओष्ठ की मधुरता में किसको नीचा और किसको ऊँचा कहा जाय) क्योंकि नमकीन खाने पर मीठा अच्छा लगता है और मीठे पर नमकीन अच्छा लगता है। एक से तृप्ति नहीं होती, दोनों ही चाहियें।

८. जो रहिमन दीपक दशा—पट = कपड़ा।

जैसे दीपक की जिस कपड़े की आड़ में छिपा कर रक्षा की जाती है (हवा से दीआ न बुझ जाय इसलिए जिस कपड़े की आड़ करके उसकी बुझने से रक्षा की जाती है) समय पड़ने पर—विपत्ति पड़ने पर उसी कपड़े की ही चोट दीए पर

होती है, उसी कपड़े की चोट से दीआ बुझा दिया जाता है ऐसे ही दीए की दशा के समान ही विपत्ति में मनुष्य की भी दशा होती है, विपत्ति में रक्षक ही नष्ट करने वाले होजाते हैं।

९. रहिमन राज सराहिये—तरैयन = तारों को।

वही राज्य प्रशंसा के योग्य है जो चन्द्रमा के समान सुखदायक हो। सूर्य की क्या कहें, वह तो तारों—नक्षत्रों—को नष्ट करके अकेला ही तपता है। कहते हैं यह दोहा रहीम ने उस समय लिखा था जब जहाँगीर ने राज्य-सिंहासन के लिए अपने भाइयों का वध किया था।

१०. कमला थिर—पुरातन पुरुष = यह पद श्लिष्ट है इसके दो अर्थ हैं एक विष्णु भगवान् और दूसरा बूढ़ा आदमी।

रहीम कहते हैं कि कमला (लक्ष्मी, धन) स्थिर नहीं, यह सभी जानते हैं। लक्ष्मी पुरातन पुरुष (विष्णु) की स्त्री ही तो है अतः चंचल क्यों न हो? क्योंकि पुरातन पुरुष (बूढ़े) की युवती स्त्री प्रायः चंचल होती है।

११. जे गरीब सों हित—जो गरीब से हित (प्रेम) करते हैं, वे लोग धन्य हैं क्या बिचारा सुदामा कृष्ण की मित्रता के योग्य था? (पर वे कृष्ण धन्य हैं जो उन्होंने उससे मित्रता की)।

१२. वह रहीम उत्तम—रहीम कहते हैं कि जो उत्तम प्रकृति के लोग हैं, कुसङ्ग उनका क्या कर सकता है? चन्दन वृक्ष को कभी विष नहीं चढ़ता यद्यपि हर समय उस पर साँप लिपटे रहते हैं।

१३. आप न काहू—रहीम दुष्टों का स्वभाव बताते हैं कि आप तो वे किसी काम के होते नहीं और दूसरे के कामों में रुकावट डालते रहते हैं। बबूल के पेड़ के डाल, पत्ते, फल, फूल आप तो किसी काम के नहीं पर वे दूसरों को रोकते फिरते हैं। (उनको बढ़ने नहीं देते)

१४. यों रहीम सुख—गोत्र = वंश। बड़री = बड़ी।

रहीम कहते हैं कि अपने वंश को बढ़ता हुआ देख कर इसी प्रकार सुख होता है जैसे बड़ी-बड़ी आँखें देख कर आँखों को सुख होता है।

१५. शशि संकोच—शशि (चन्द्रमा) संकोच, साहस, सलिल (पानी, नदियों आदि का) मान, स्नेह और प्रेम ये चीजें बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ जाती हैं और घटते-घटते अन्तिम सीमा तक पहुँच जाती हैं।

१६. यद रहीम—रहीम कहते हैं कि वैर, प्रीति, अभ्यास और यश, इनको अपने साथ लेकर कोई पैदा नहीं होता, ये तो धीरे-धीरे ही होते हैं।

१७. दुरदिन परे—दुरदिन = बुरा समय, विपत्ति के दिन दुरथल = बुरे स्थान पर। घूर = कूड़ा फेंकने की जगह।

रहीम कहते हैं कि विपत्ति पड़ने पर बुरे स्थान पर भी भाग जाया जाता है (भाव यह है कि बुरे स्थान पर भी जाने से अपनी रक्षा हो सके तो कर लेनी चाहिए) जैसे जब घर में आग लगती है तो लोग कूड़ा फेंकने की जगह पर भी जाकर खड़े हो जाते हैं।

१८. प्रीतम छवि—प्रियतम की छवि जब आँखों में बसी हुई है तब दूसरे की छवि कहाँ समाये। भरी हुई सराय को देख कर (नया आया हुआ) पथिक अपने आप ही वापिस लौट जाता है।

१९. कौन बड़ाई—धीम = धीमा। भयो = हो गया। नाम भयो धीम = नाम मिट गया।

रहीम कहते हैं कि दूसरे के घर में जाने से किसकी प्रभुता (बड़प्पन) नहीं घटी। समुद्र में मिल कर (मिलने से) गङ्गा को कौन सी बड़ाई मिली, उलटा गङ्गा नाम भी मिट गया। अर्थात् समुद्र में मिलने पर फिर उसे गङ्गा नहीं कहा जाता, समुद्र ही कहा जाता है।

२० रहिमन यह न—लेन देन की प्रीति = बाज़ारु प्रीति।

रहीम कहते हैं कि उस प्रीति की कभी सराहना नहीं करनी चाहिए जो केवल लेन-देन के लिए हो—अर्थात् बाज़ारु प्रीति की सराहना कोई नहीं कर सकता (हाँ, उस प्रीति की सराहना अवश्य करनी चाहिए) जिसमें प्राणों की बाजी लगा दी जाय, फिर चाहे हार हो या जीत—अर्थात् हार जीत की आशा छोड़, प्रेमी प्राण देने को तैयार रहे।

२१रहिमन रिस सहि—प्रीति कर पौरि = स्नेह की मर्यादा, स्नेह।

रहीम कहते हैं कि क्रोध को सहकर भी बड़े आदमी स्नेह की मर्यादा को अर्थात् स्नेह को—नहीं छोड़ते। मुक्के मारते जाने पर भी नींद विचारी दौड़कर आती है। मुक्कों के डर से दूर नहीं हो जाती, वल्कि प्राणीमात्र को अपनी गोद में स्थान दे सांत्वना प्रदान करती है। बड़ों का यही नियम है।

२२. जिहि रहीम तन—रहीम कहते हैं कि जिसने तन और मन हर लिया है और हृदय में घर कर लिया है उससे दुख-सुख कहने की अब कौनसी बात रह गई है ?

२३ जो पुरुसारथ ते कहूँ—रहीम कहते हैं कि जो कहीं केवल पुरुषार्थ से लक्ष्मी प्राप्त हो जाती, तो पेट भरने के लिए भीम जैसा बली आदमी विराट् राजा के घर में रसोइये का काम क्यों करता ? अर्थात् केवल पुरुषार्थ से लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती, लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए भाग्य आदि साधन भी चाहिये।

जब पाँचों पांडव १३ वें वर्ष गुप्त वेष में राजा विराट् के यहाँ रहे थे तब भीमसेन ने रसोइये का काम किया था।

२४ ज्यों रहीम गति—बारे=१. बाल्यावस्था में, २. जलाने पर। बढ़े=१. बड़े होने पर, २. दीपक के बुझाने पर।

रहीम कहते हैं कि दीए की जो हालत होती है, कुल कुपूत की (कुल में जो कुपूत है उसकी) भी वही होती है कुपूत बारे (बाल्यावस्था में) कुल में उजाला करता है। (उस समय तक सब यही समझते हैं कि वह कुल में उजाला करेगा) पर बढ़े (बड़ा होने पर) कुल को अंधेरा करता है—अर्थात् कुल को बदनाम कर देता है। इसी तरह दीपक के भी बारे (जलाने पर) उजियाला हो जाता है और बढ़े (बुझने पर) अंधेरा हो जाता है।

२५ सम्पति भरम गँवाई के—भरम=धोखा, चक्र, फेर।

किसी धोखे या चक्र में (या किसी व्यसन के फेर में) पड़कर सम्पत्ति गँवा देने पर हाथ में कुछ नहीं रहता। उस

(संपत्तिहीन की दशा वैसे ही हो जाती है) जैसे कि दिन में आकाश में ज्योतिहीन चंद्रमा की होती है ।

२६ अनुचित उचित--छोटे आदमी उचित और अनुचित सब काम बड़ों के जोर (सहारे) पर ही करते हैं। जैसे चंद्रमा का सहारा पाकर चकोर आग भी पचा लेता है। चकोर चंद्रमा का बड़ा प्रेमी कहा जाता है, वह चंद्रमा की ओर एक-टक देखा करता है, यहाँ तक कि यह आग की चिनगारियों को चंद्रमा की किरण समझकर खा जाता है ।

२७ धनि रहीम --पंक=कीचड़। लघु=जिय=छोटे छोटे जीव, कीड़े मकौड़े। अघाय=तृप्त हो जाते हैं। उदधि=समुद्र।

रहीम कहते हैं कि कीचड़ का थोड़ा सा जल भी धन्य (बड़ाई के योग्य) है, जिसको पीकर कीड़े मकोड़े तृप्त हो जाते हैं। समुद्र की क्या बड़ाई की जाय, जिसके पास से सारा संसार ही प्यासा जाता है, एक मनुष्य भी अपनी प्यास नहीं बुझा सकता।

२८ माँगे घटत रहीम--चाहे कितना ही बड़ा काम क्यों न करो, तो भी माँगने पर पद घट जाता है। विष्णु भगवान् ने यद्यपि तीन कदमों में सारी पृथ्वी नाप ली थी तो भी (बलि से माँगने के कारण) उनका नाम वामन ही है ।

२९नाद रीझि—नाद=शब्द, बाँसुरी का स्वर। रीझि= प्रसन्न होकर।

बाँसुरी के स्वर पर प्रसन्न होकर मृग अपना शरीर दे देते हैं और उत्तम मनुष्य प्रसन्न होने पर प्रेमसहित धन देते

हैं। परंतु वे लोग पशुओं से भी गये गुज़रे हैं जो प्रसन्न होने पर भी कुछ नहीं देते।

३० रहिमन अब—बिरछ = वृक्ष। सेंहुड़ = पौधा विशेष, जिसके पत्ते कुछ लम्बे होते हैं। इसका रस दवाई के रूप के बच्चों को दिया जाता है। कञ्ज करञ्जा (एक वृक्ष)। करीर = काँटेदार एक वृक्ष।

रहीम कहते हैं कि अब वे वृक्ष कहाँ हैं (अर्थात् नहीं हैं) जिन की गम्भीर (घनी) छाया थी। अब तो बागों के बीच बीच में (कहीं कहीं) सेंहुड़, कञ्ज और करीर के ही वृक्ष दिखाई देते हैं (जिनकी कि वृक्षों में गणना ही नहीं है) भाव यह है कि संसार से अच्छे आदमी चले गये हैं और अब दुष्ट प्रकृति के लोग ही रह गये हैं।

३१ बिगरी बात—बिगड़ी हुई बात फिर नहीं बनती चाहे लाखों यत्न क्यों न करो। रहीम कहते हैं कि फटे हुए दूध को चाहे कितना ही मथो पर उसमें से मक्खन नहीं निकलता।

३२ मथत मथत—मही = मट्ठा, लस्सी। बिलगाय = अलग हो जाती है। भीर परे = आपत्ति आने पर।

दही को मथते मथते मक्खन (ठोस रूप में) रह जाता है और लस्सी अलग हो जाती है। रहीम कहते हैं कि सच्चा मित्र वही है जो आपत्ति आने पर साथ रहे।

३३ रहिमन निज मन—बिथा = दुःख, कष्ट। गोय = छिपाकर। अठिलैहैं = हँसेंगे।

रहीम कहते हैं कि अपने मन की व्यथा को छिपाकर

रखना चाहिए। उसको सुनकर सब हँसी ही उड़ावेंगे, दुख को कोई बाँट नहीं लेगा।

३४ रहिमन चुप—रहीम कहते हैं कि दिनों का फेर समझ कर (बुरे दिन आये देखकर) चुप होकर बैठ जाओ। जब अच्छे दिन आयेंगे तो फिर काम बनते देर नहीं लगेगी।

३५ गहि शरणागत राम की—राम की शरण-रूपी नौका लेकर संसार-रूपी सागर से पार उतर जा। रहीम कहते हैं कि संसार से पार होने का और कोई उपाय नहीं है।

३६ रहिमन वे नर मर चुके—रहीम कहते हैं कि जो आदमी कहीं माँगने जाते हैं, वे मानों मर चुके हैं, और उनसे पहले उन आदमियों को मरा हुआ समझो जो माँगने वालों को देने से इनकार करते हैं।

३७ जाल परे जल—छोह = स्नेह, प्रेम।

रहीम कहते हैं कि जाल पड़ने पर पानी तो मछली का मोह छोड़ कर चला जाता है, पर मछली पानी का प्रेम तब भी नहीं छोड़ती।

३८ धन दारा—दारा = स्त्री। गाढ़े दिन = विपत्ति के दिन।

धन, स्त्री और पुत्रों में अर्थात् साँसारिक माया में चित्त लगाये रहते हो। रहीम कहते हैं कि विपत्ति के दिनों के मित्र (ईश्वर) को क्यों नहीं ढूंढ़ते ?

३९ ससि की सीतल—घटि = बुरी।

चंद्रमा की शीतल चाँदनी सब को सुंदर और सुहावनी प्रतीत होती है, पर वही चोर के चित्त में बुरी लगती है।

४० अमृत ऐसे—रिस = क्रोध। गाँस = अंकुर, मिलावट।

अमृत के समान मीठे वचनों में क्रोध की गाँस ऐसी ही है जैसे मिश्री में मिली हुई नीरस (सूखी) बाँस की फाँस हो।

४१ रहिमन मनहिं लगाइ के—रहीम कहते हैं कि मन लगाकर तुम देख क्यों नहीं लेते, मनुष्य को वश करने की क्या बात है, (मन लगाने से तो) स्वयं नारायण तक वश में हो जाते हैं।

४२ रहिमन अँसुवा—ढरि=ढर कर, गिर कर। गेह=घर।

रहीम कहते हैं कि आँसू आँखों से गिरकर दिल का दुःख प्रकट कर देते हैं। भला जिसे घर से निकालोगे वह घर का भेद क्यों न कह देगा ?

४३ गुन ते लेत—गुन=(१) रस्सी, (२) गुण।

रहीम कहते हैं कि गुन (रस्सी) द्वारा कुएँ से जल निकाल लिया जाता है, कहीं किसी का मन कुएँ से भी अधिक गहरा होता है ? भाव यह कि जब गुन (रस्सी) द्वारा कुएँ से जल निकल सकता है तब गुन (गुणों) द्वारा दूसरे के मन (जो कुएँ से कम ही गहरा होता है) की बात क्यों नहीं जानी जा सकती ?

४४ रहिमन मन—दीवान = मंत्री। रीझे = प्रसन्न हुए।

रहीम कहते हैं कि मनमहाराज के नेत्ररूपी मंत्री के समान कोई नहीं। क्योंकि नेत्र जिसे देखकर प्रसन्न हुए (उसी

की प्रसन्नता का विश्वास करके) मन महाराज उसी के हाथ बिक जाते हैं।

४५ शीत हरत तम—शीत = जाड़ा। तम = अँधेरा। भुवन भरत = संसार को भर देता है।

जो सूर्य ठंढ का नाश करता है अँधेरे को दूर करता है और सारे संसार को बिना चूके प्रकाश से भर देता है, उस सूर्य को उल्लू नीचा समझे तो उसका क्या बिगड़ा ?

४६ नहिं रहीम कछु रूप गुन—देशी कुत्ते में न तो रूप और और गुन ही होते हैं, और न उसे शिकार से ही प्रेम होता है। अगर उसे रखा जाय तो वह केवल भूख मिटाने के लिए ही घूमता है।

४७ कागज कासों पूतरा—यह (मनुष्य रूपी) कागज़ का पुतला सहज में ही घुल जायगा, जल्दी ही नष्ट हो जायगा। रहीम कहते हैं कि देखो यह आश्चर्य है कि वह कागज का पुतला वायु खींचता है—अर्थात् स्वांस लेता है।

४८ कहि रहीम इक दीप—रहीम कहते हैं एक दीपक से सब खजाना प्रकट हो जाता है। फिर शरीर का प्रेम कैसे छिपे जिस में आँख-रूपी दो दीपक जल रहे हैं।

४९ जिहि रहीम—रहीम कहते हैं कि जिसने अपना मन चतुर चकोर सा बना लिया है, वह रात-दिन कृष्णरूपी चन्द्र की ओर लगा रहता है।

५० कहि रहीम धन—रहीम कहते हैं कि धनियों का ही धन बढ़ता घटता है और उन्हीं की बात (साख) जाती है। उन

बेचारों का क्या बढ़े घटेगा और क्या साख जायगी जो घास बेच कर खाते हैं।

५१ जो रहीम होती कहूँ—गति = शक्ति। को = कौन। धौं = न जाने। केहि = किसको।

रहीम कहते हैं यदि कहीं प्रभु की शक्ति अपने हाथ में होती, तो आप बड़ाई वाला होने के कारण (अहंकारवश) न जाने कौन किसको (बड़ा) मानता—कौन किसको पूज्य गिनता!

५२ तिहि प्रमान चलिबो—प्रमान = मर्यादा। उमड़ चलै = बढ़ कर बह निकलना। पार = किनारा।

उसी मर्यादा में चलना अच्छा है, जिस चाल में कि सदा रह सकें। रहीम कहते हैं कि यदि नदी बढ़ जाय, उसमें बाढ़ आजाय तो जल किनारे से बाहर निकल आता है।

५३ यों रहीम दुख—बड़े लोग दुख-सुख सहते हुए इसी प्रकार शांत रहते हैं जैसे कि उदय और अस्त होता हुआ चन्द्रमा एकसा ही रहता है।

५४ कहि रहीम सम्पति—रहीम कहते हैं कि सम्पत्ति में बहुत आदमी बहुत तरह से आकर सगे बनते हैं। परन्तु विपत्तिरूपी कसौटी पर जो कसे (परखे) गये हैं अर्थात् विपत्ति में जो मित्र रहे हैं, वे ही सच्चे मित्र हैं।

५५ तब ही लग जीबो—जीबो = जीना। दीबो = देना।

तभी तक जीना अच्छा है जब तक देना धीमा न पड़े अर्थात् बन्द न हो। रहीम कहते हैं कि बिना देने के जगत् में जीना हमें अच्छा नहीं लगता।

५६ बड़ माया को दोस—माया (धन-सम्पत्ति)

धन-सम्पत्ति का यह बड़ा भारी दोष है कि जो वह कभी ही घट जाती है। रहीम कहते हैं तब (माया के घट जाने पर) तो

मर जाना ही अच्छा है, दुःख सहकर हमारी बला जीवे, अर्थात् दुख सहकर कभी न जीना चाहिये।

५७ धनि रहीम गति—अनत=(अन्यत्र) और जगह। कहा=क्या। भाव=प्रेम।

मछली की गति धन्य है कि जल में बिछुड़ते ही उसके प्राण चले जाते हैं। भौंरे का प्रेम क्या है कि कमल को छोड़कर दूसरी जगह जाकर भी जीता रहता है।

५८ दादुर मोर—दादुर=मेंढक। सरवर=बराबर।

दादुर, मोर और किसान इन तीनों का मन बादल की ओर लगा रहता है पर चातक की पुकार की बराबरी करने वाला इनमें से कोई नहीं है—अर्थात् जिस एकाग्रता से चातक बादल के लिए पुकार मचाये रहता है वैसा और कोई नहीं।

५९ अमर बेलि बिनु मूल—अमरबेल=एक पीली बेल जिसकी जड़ और पत्तियाँ नहीं होतीं। यह बेल जिस पेड़ पर चढ़ती है, उसी का रस चूस लेती है।

बिना जड़ की अमर बेल की भी जो रक्षा करता है, रहीम कहते हैं कि ऐसे प्रभु को छोड़कर और किसे खोजते फिरते हो?

६० सरवर के खग एक से—रहीम कहते हैं कि मानसरोवर के लिए सब पक्षी एक जैसे हैं, न किसी से प्यार बढ़ता है, और न कम ही पड़ता है। परन्तु राजहंस के लिए तो मानसरोवर ही एकमात्र स्थान है।

६१ कहि रहीम केती रही—केती=कितनी। गई बिहाय=व्यतीत हो गई। अंत=मृत्यु समय।

रहीम कहते हैं कि बताओ कि आयु कितनी रह गई है और कितनी नष्ट हो गई है। मनुष्य माया-ममता और मोह के

चक्कर में पड़कर मृत्यु समय (इस संसार से) पछताकर चल देता है।

६२ जो रहीम करिबो—मात = मदमस्त इन्द्र।

इन्द्र को एक बार अभिमान हुआ कि मैं सब से बड़ा हूँ। कृष्ण ने उसका अभिमान नष्ट करने के लिए ब्रज में से उसकी पूजा नष्ट करा दी तब उसने वर्षा द्वारा ब्रज को बहा देना चाहा। इस पर भगवान ने अपने हाथ में गोवर्धन पहाड़ धारण कर सब ब्रजवासियों को उसके नीचे बुलाकर उनकी रत्ता करली। अंत में विवश हो इन्द्र को हार माननी पड़ी। (रहीम कृष्ण को सम्बोधन करके करते हैं कि) यदि तुमने ब्रज का यही हाल करना था अर्थात् इसी तरह अपने वियोग से तड़पाना था तो हे गोपाल! गोवर्धन पहाड़ को धारण कर मदमस्त (इन्द्र) को क्यों दुख दिया था ?

६३ दीरघ दोहा अर्थ—नटकुंडली = कलाबाजी दिखाने का एक छोटा सा चक्र जिसमें से शरीर सिकोड़ कर नट कूद जाता है।

दोहे में अर्थ तो बड़ा होता है, पर अत्तर (केवल ४८) थोड़े से ही होते हैं। सो ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि मोटा ताज़ा करतबी नट तमाशा करते हुए (शरीर को तौलकर) सिमिट कर और कूदकर लकड़ी के छोटे से घेरे में से साफ निकल जाता हो—अर्थात् छोटे से दोहे में भी बड़ा अर्थ सही-सलामत निभाया जा सकता है।

६४ जे रहीम विधि—जिनको विधि (ब्रह्मा) ने बड़ा किया है उनके दोष कौन निकाल सकता है ? चन्द्र चाहे दुबला और कुबड़ा हो तो भी नत्तत्रों से बढ़कर ही होता है।

६५ अब रहीम घर—मधुकरी = भित्ता।

रहीम अब घर घर फिरता है और भिक्षा माँग कर खाता है। मित्रो, अब मित्रता छोड़ दो क्योंकि रहीम अब वह पहले जैसा धनी रहीम नहीं है। अकबर के मरने के बाद जहाँगीर ने रहीम को राजद्रोह के अभियोग में कैद कर दिया था। कैद से छूटने के बाद इनकी अवस्था बड़ी खराब हो गई। इस हालत में भी याचक लोग इन्हें घेरे रहते थे। उनकी माँग पूरी न कर पाने के कारण इन्हें बड़ा कष्ट होता था। इस पर इन्होंने याचकों के प्रति यह दोहा कहा था।

६६ एके साधे सब सधै—रहीम कहते हैं कि जैसे जड़ को सींचने से पेड़ में खूब फूल तथा फल लगते हैं, ऐसे ही एक काम को पूरा करने पर सब काम पूरे हो जाते हैं, सब कामों की तरफ दौड़ने से सब नष्ट हो जाते हैं।

६७ पात पात कर—रहीम कहते हैं कि (जड़ को न सींचकर) एक एक पत्ते को सींचने और (सारी दाल में एक दम नमक न डालकर) एक एक बड़ी में नमक डालने की बुद्धि (तरीके) से बताओ कौनसा काम पूरा हो सकता है ?

६८ रहिमन धोखे भाव से—रहीम कहते हैं कि धोखे से भी यदि मुख से कभी राम का नाम निकल जाय तो काम क्रोध आदि में सदैव फँसा रहने वाला (जो सब पापों का घर है वह) भी पूरण (मोक्ष) पद को पा जाता है।

६९रहिमन छिमा बड़ेन—रहीम कहते हैं छोटों का काम ही उत्पात करना है पर बड़ों को क्षमा ही करनी चाहिये। यदि भृगु ने विष्णु भगवान् को लात मारी तो भगवान् का क्या बिगड़ा ? अतएव भगवान ने उसे क्षमा कर दिया।

७० रहिमन कठिन चिताहु—दहति = जलाती है।

रहीम कहते हैं कि अपने चित्त में चिन्ता को चिता से भी

कठोर समझो; क्योंकि चिता तो निर्जीव (मृतक) को जलाती है, पर चिन्ता जीव समेत को (जोते-जागते को जला देती है ।

७१ पावस देख रहीम मन—रहीम कहते हैं कि पावस (वर्षा ऋतु) को आया देख कर कोयल ने मौन साध लिया अब तो दादुर (मेंढक) वक्ता (बोलने वाले) हो गये हैं, अब हमें कौन पूछेगा?

७२ समय लाभ सम--समय (अवसर) पाने के समान कोई लाभ नहीं और मौका चूकने के समान कोई बड़ी चूक (गल्ती) नहीं है । रहीम कहते हैं कि अवसर हाथ से निकल जाने का पछतावा चतुरों के चित में सदा कसकता रहता है ।

———

रसखान

भक्ति रस महिमा

वेन वही उनको—वेन = वाणी। सानी = सने हुए। गात = शरीर। अनुजानी = पीछे चलें।

वाणी वही है जो उन (भगवान) के गुण गाये, कान वे ही हैं जो उनके वचनों से सने रहें,। हाथ वे ही हैं जो उनके शरीर का स्पर्श करें और पैर वही हैं जो उन भगवान के पीछे पीछे चलें। जान वही है जो उनके प्राणों के साथ रहे, और वही मान है जो उनकी मनमानी करे। इसी प्रकार रसखान कवि कहते हैं कि रस की खानि अर्थात् (जिह्वा) वही सार्थक है जो रस की खानि अर्थात् (श्रीकृष्ण) के चरितामृतरूपी रस का ही बखान करती हो अर्थात् उसी रस की आगर हो।

मानस हौं तो वही—मानस = मनुष्य। गोकुल = मथुरा के पास का एक गाँव जहाँ श्रीकृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था बिताई थी। ग्वारन = ग्वाले। धेनु = गाय। पुरंदर = इन्द्र। धारन = धारायें। खग = पक्षी। कालिंदी = यमुना। कूल = किनारा। कदंब = कदम, एक सदाबहार वृक्ष, जो भगवान कृष्ण को बहुत पसंद था। मझारन = बीच में।

रसखान कहते हैं कि यदि मैं (भाग्य से) मनुष्य होऊँ, तो ब्रज के गोकुल गाँव के ग्वालों के बीच में बसूँ। यदि पशु होऊँ, तो फिर मेरा क्या बस है (मैं तो पराधीन होऊँगा, जहाँ मालिक चाहे ले जाय, पर मैं यही विनती करता हूँ) कि हमेशा नंद की गौओं के बीच में (जिनको भगवान कृष्ण चराते थे) चरूँ। यदि मैं पत्थर होऊँ, तो उसी (गोवर्धन) पहाड़ का पत्थर होऊँ, जिसे

कि भगवान कृष्ण ने इन्द्र की भयंकर जलधारा से (ब्रज को) बचाने के लिए छत्र बना कर हाथ में उठाया था। यदि पत्ती होऊँ तो मैं यमुना के किनारे के कदंब के पेड़ों की डालों में बसेरा करूँ, (जिनके नीचे भगवान कृष्ण आराम करते थे, या जिनकी डालों पर वे चढ़कर खेलते थे)

ब्रह्म मैं ढूँढयौ—रिचा = ऋचा, वेदमंत्र। दुरयो = छिपा हुआ। हेरत = ढूँढता हुआ। कुंज कुटीर = लता गृह, बेलों का झुंड। पलोटत = पैर दबाता हुआ।

ब्रह्म (ब्रह्मांड) में (उसे) ढूँढा, और (उसका रूप पहचानने या पाने के लिए) पुराणों के गान तथा वेदों के मंत्र चौगुने चाव से (बड़े चाव से) सुने। परन्तु कभी भी कहीं, (भगवान) को न देखा और न सुना कि उसका कैसा स्वरूप है और कैसा स्वभाव है। पुकारते और ढूँढते-ढूँढते थक गया, रसखान कहते हैं कि (उसका पता) लोग-लुगाइयों (स्त्री-पुरुषों) ने भी नहीं बताया। (अंत में) देखा कि वह (भगवान कृष्ण) लतागृह में छिपा बैठा राधिका के पैर दाब रहा था। (रसखान मुसलमान होते हुए भी ब्रजवासी कृष्ण के बड़े भक्त थे।)

सेस सुरेस—सेस = शेषनाग। सुरेस = देवताओं का राजा, इन्द्र। गनेस = गणेश। महेस = महेश, महादेव। दिनेस = दिनेश, सूर्य। अखंड = जिसके टुकड़े न हो सकें। अछेद = जिसका छेदन न हो सके, अभेद्य। अभेद = जिसमें कभी भिन्नता न आवे, एक रूप। शुक = शुकदेव, कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र, जो पुराणों के बड़े भारी वक्ता और ज्ञाता थे। छोहरियाँ = छोकरियाँ, लड़कियाँ। छछिया = छाछ (लस्सी) को पीने या नापने का बरतन।

शेषनाग, इन्द्र, गणेश, महादेव, तथा सूर्य भी जिसकी

स्तुति निरंतर गाते हैं, जिसको वेद अनादि, अनंत, अखंड, अछेद्य और अभेद कहते हैं। जिसकी स्तुति गान करते-करते नारद, शुकदेव तथा व्यास जैसे महर्षि हैरान हो गये, तब भी पार न पा सके, उस (सनातन भगवान के अवतार कृष्ण को) ग्वालों की छोकरियाँ मटकी भर छाछ पर नाच नचाती हैं।

द्रौपदि औ गनिका—गेहिनि=घरवाली, स्त्री। रविनंद=यमराज।

द्रौपदी,[1] वेश्या,[2] हाथी,[3] गीध,[4] और अजामिल[5] से जैसा भगवान ने किया (जिस तरह उनका उद्धार किया) क्या

---

१. भरी सभा में दुःशासन द्वारा नग्न की जाती हुई द्रौपदी की भगवान ने रक्षा की थी।

२. वेश्या की कहानी पृष्ठ १३२ पर देखिये।

३. एक बार एक सरोवर में एक बड़ा भारी मदोन्मत हाथी हथिनियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था। इतने में एक मगर ने उसका पैर पकड़ लिया। हाथी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी पर पैर न छुड़ा सका। निःशक्त और निराश होकर उसने भगवान् को करुण स्वर से पुकारा। पुकार सुनते हीभगवान् तुरन्त वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने चक्र सुदर्शन से ग्राह को काट डाला। हाथी मुक्त हो गया, ग्राह से ही नहीं, बल्कि संसार सागर से भी।

४. गिद्ध से जटायु का तात्पर्य है जो सीता जी को छुड़ाने के लिए रावण से लड़कर घायल हुआ था। रामचन्द्र जी ने अपने हाथ से इसकी अन्त्येष्टि क्रिया की थी।

५. अजामिल एक बड़ा पापी ब्राह्मण था। उसके पुत्र का नाम नारायण था। मरते समय उसने अपने पुत्र को आर्तस्वर में "नारायण नारायण" कहकर पुकारा। कहते हैं उसी से वह तर गया।

तुमने वह नहीं देखा, गौतम की घरवाली (अहल्या) किस तरह तर गई, प्रह्लाद का भारी दुःख भगवान ने कैसे दूर कर दिया, (क्या यह नहीं जानते) ? हे रसखान ! तू क्यों व्यर्थ सोच करता है, यमराज बिचारा क्या कर सकता है, और तुझे किस का डर है जब कि माखन को चखने वाले (माखनचोर स्वयं भगवान कृष्ण) ही तेरी रक्षा करने वाले हैं।

बाल्यवर्णन

धूर भरे अति सोभित—पैजनी=, घूँघुरु। कछोटी=कछनी, घुटने के ऊपर तक चढ़ाकर पहनी हुई धोती। कला= शोभा, छटा।

धूलि से भरे हुए नन्हे कृष्ण जैसे शोभित हो रहे थे, वैसे ही उनके सिर पर सुन्दर चोटी बनी हुई थी, खेलते और खाते वे आँगन में फिर रहे थे, उन्होंने छोटी-सी पीली धोती पहनी हुई थी, और पैर की पैंजनियाँ बज रहीं थीं। रसखान कहते हैं कि उस सुन्दरता को देखकर कामदेव भी अपनी करोड़ गुना छटा वार देता है। हे सजनी (हे सखी) कौवा बड़ा सौभाग्य-शाली है [जो इस तरह घूमते हुए] हरि के हाथ से माखन-रोटी छीन ले गया।

उद्बोधन

कहा रसखानि—सुमार=शुमार, गिनती। छार=राख। पंचानल=पंचअग्नि। बयार व्रत=प्राणायाम, वायु का खींचना और निकालना।

रसखान कहते हैं कि यदि तूने नंद के कुमार (भगवान कृष्ण से) प्यार नहीं किया और चित्त से उनके दरबार का

सेवन नहीं किया, और उनके दर्शन की इच्छा नहीं की अर्थात् कृष्ण-भक्ति में मन नहीं लगाया तो सुख-संपत्ति की क्या गिनती [कृष्ण-भक्ति के बिना सब नष्ट हो जायँगे] और योगी होकर शरीर में भस्म लगाने से क्या, तथा पंचाग्नि तापने और जल के बीच सोने से क्या ? एवं समुद्र-पर्यंत राज जीत लाने का क्या फल, तथा हे बकवादी, बार बार के जप तथा तपस्या, संयम प्राणायाम और हजारों तीर्थों को कौन पूछता है ? अर्थात् परम-पद पाने के लिए तो केवल कृष्ण-भक्ति ही सहायक होगी, उसके बिना इन सब चीजों का कोई फल नहीं।

बिहारी

बिहारी के दोहे

१. मेरी भवबाधा—भवबाधा = संसार के कष्ट, जन्म-मरण का दुःख। झाँई = छाया। स्याम = कृष्ण, काला। हरितदुति = आनन्दित या हरी द्युति (कान्ति, रंग) वाले। नागरी = चतुर।

वे ही चतुर राधिका मेरे साँसारिक कष्टों—जन्म मरण के दुःखों—को हरें जिनके शरीर की छाया पड़ते ही श्रीकृष्ण जी हरे भरे (प्रसन्नवदन) हो जाते हैं। अथवा वे चतुर राधिका ही मेरी सांसारिक बाधायें हरें—नष्ट करें जिनके (गोरे, पीले) शरीर की छाया पड़ने से (साँवले) कृष्ण की द्युति भी हरी हो जाती है। राधिका का रंग सोने के समान पीला तथा कृष्ण का साँवला माना जाता है। दोनों के मेल से हरा रंग होता है।

२. कीन्हें हू कोटिक जतन—करोड़ों यत्न करने पर भी, कहो अब कौन उसे (मन को) निकाल सकता है। श्रीकृष्ण के रूप में मिल कर अब तो मेरा मन पानी में का नमक हो गया है। अर्थात् जैसे पानी में घुला नमक निकल नहीं सकता, उसी प्रकार मेरा मन भी श्रीकृष्ण में घुल मिल गया है अतः अब निकल नहीं सकता।

३. नेहु न—(यह) प्रेम नहीं, किंतु मेरी आँखों के लिए

कोई बड़ी बला उत्पन्न हो गई है। यद्यपि ये हर समय पानी से भरी रहती हैं—आँसुओं से तर रहती हैं—तो भी इनकी (प्रियतम के दर्शन की) प्यास नहीं बुझती।

४. इन दुखिया—सिरजोई नाहिं = बनाया ही नहीं गया।

हे सखी, इन मेरी दुखिया आँखों के लिए सुख बनाया ही नहीं गया। क्योंकि जब प्रियतम सामने मौजूद होता है और देखने का मौका होता है तब (लज्जावश) इन आँखों से इच्छा भर देखते नहीं बनता और जब वह ओट में हो जाता है, तब बिना देखे व्याकुल होती हैं।

५. नहिं परागु—परागु = पुष्परज, वह पीली धूलि जो फूलों के बीच में होती है। अलि = भौंरा। मधु = मकरंद, फूल का रस। बँध्यो = बँध गया।

न पराग है, न मधुर रस ही है, और न अभी तक पूर्ण विकास (खिलना) ही हुआ है अर्थात् महक ही है। हे भ्रमर! तो भी तू कली में ही बँध गया है, आगे (जब यह खिल जावेगी) तब तेरी क्या दशा होगी?

राजा जयसिंह अपनी नयी किशोरी रानी के प्रेम में इतना फँस गये थे कि मंत्रियों के बार-बार समझाने पर भी उन्होंने राजकाज देखना छोड़ दिया था। तब बिहारी ने यह दोहा लिख भेजा था। राजा जयसिंह इसका अर्थ समझ बाहर आ गये, और बिहारी को उन्होंने एक-एक दोहे पर एक-एक अशर्फी देने का वचन दिया, तभी बिहारी-सतसई लिखी गई।

६. जगतु जनायो—जिस हरि ने सारे संसार को जनाया है (जिसने तुझे सारे संसार का ज्ञान दिया है) उस हरि को

तूने नहीं जाना। जैसे अपनी आँखों से सब कुछ देखा जाता है पर अपनी आँखें (स्वयं) नहीं देखी जातीं।

७. दीरघ साँस—दीरघ साँस = लम्बी साँस। दई-दई= हा दैव! हा दैव। दई-दई=जो दैव ने दिया है।

दुःख में लंबे-लंबे साँस मत ले और सुख पाकर (स्वामी को) मत भूल। हा दैव! हा दैव! क्यों करता है, दैव ने जो दिया है उसे ही (धैर्य धर कर) स्वीकार कर अर्थात् स्वामी के दिये पर संतोष कर।

८. बैठि रही—सदन-तन = घर का पिंड।

जेठ की दुपहरी (मध्याह्न) को देख कर छाया भी छाया चाहती है। इसी कारण वह बहुत घने जंगल में ही बैठ रही है या घर के तन (पिंड) के भीतर घुस रही है (अर्थात् वृक्षों के घेरों और घरों की दीवारों के बाहर दिखाई नहीं देती। जेठ की दुपहरी में वृक्षों की छाया ठीक उनके नीचे ही पड़ती है।)

९. कहा भयौ—हे प्यारी! हमारा-तुम्हारा विछोह हुआ तो क्या हुआ मेरा मन तो तुम्हारे मन के साथ ही है। गुड़ी (पतंग) चाहे कहीं भी उड़ कर चली जाय तब भी उड़ाने वाले के हाथ में ही रहती है।

१०. सीतलताऽरु—मूर = मूल्य। पीनसवारे = पीनस रोग वाला जिसे सुगन्ध का ज्ञान नहीं होता।

यदि पीनस रोग वाला कपूर को शोरा समझ कर छोड़ दे (तो भी कपूर की) शीतलता और सुगन्ध की महिमा नहीं घटती और न मूल्य ही घटता है।

११. जब जब वे सुधि—आँखें लागति नहीं = नींद नहीं आती।

जब जब मुझे उनकी (प्रियतम की) याद आती है तब तब मेरे सभी होश-हवाश जाते रहते हैं, अर्थात् मैं उनके ध्यान में एकलीन हो जाती हूँ। मेरी आँखें उनकी आँखों से लगी रहती हैं—मेरी आँखें उनकी आँखों के ध्यान में लगी रहती हैं, इसीलिए नींद नहीं आती।

१२. थोरैं ही गुन—हे कान्ह ! (पहले तो तुम) थोड़े ही गुणों से रीझ (प्रसन्न हो) जाते थे पर अब तुमने वह आदत भुला दी है। तुम भी मानों आजकल के—कलियुग के—कंजूस दानी हो गये हो जो हजार सिर पटकने पर भी धेला नहीं देते।

१३ अंग अंग नग—दीपशिखा = दीपक की लौ। बढ़ायेहू = बुझाने पर भी।

उसके अंग-प्रत्यंग के (आभूषणों में जड़े हुए) नग (उसकी) दीप-शिखा सी देह से जगमगाते हैं। अतः दीपक बुझा देने पर भी घर में बड़ा उजाला (प्रकाश) रहता है।

१४ कब को टेरतु—रट = पुकार। जगबाय = संसार की हवा।

हे श्याम (मैं) कब का करुण पुकार से तुमको पुकार रहा हूँ, पर तुम सहायक नहीं होते। हे जगत्-गुरु, जग-नायक (जान पड़ता है) तुम को भी संसार की हवा लग गई है। जैसे संसार के आदमी दीन की आवाज़ नहीं सुनते, वैसे ही तुमने भी दीन की आवाज़ सुनना छोड़ दिया है।

१५ पत्रा ही तिथि पाइये—पत्रा = तिथि पत्र, पंचांग। नितप्रति = हर रोज़, सदा। पून्योई = पूर्णमासी ही। आनन = मुख। ओप = कान्ति। उजास = उजाला।

उस सुन्दरी के घर के चारों ओर पत्रा (पंचाग) ही में तिथि पाई जाती है—तिथि निश्चय करने के लिए पत्रा ही की शरण लेनी पड़ती है, क्योंकि उसके मुख की चमक और प्रकाश से वहाँ सदा पूर्णिमा ही वनी रहती है—उसके मुख की चमक और प्रकाश इतना है मानों पूर्ण चंद्र उदय हुआ हुआ हो।

१६ कोऊ कोरिक—कोरिक = करोड़ के लगभग। लाख हज़ार = दस करोड़।

चाहे कोई करोड़ रुपया जमा करे और चाहे कोई दस करोड़ जमा करे पर मेरी सम्पत्ति तो केवल यदुपति (भगवान कृष्ण) हैं जो सदा विपत्ति को विदारने वाले (नष्ट करने वाले) हैं।

१७ कहलाने एकत—कहलाने = किस लिए, अथवा व्याकुल हुए हुए। एकत = एकत्र। निदाघ = ग्रीष्म ऋतु।

(प्रश्न)—यहाँ सर्प, मोर, मृग तथा बाघ किस कारण एकत्र वैठे हैं ? (उत्तर) कठोर ताप-युक्त ग्रीष्म ऋतु ने संसार को तपोवन सा कर डाला है। (तपोवन में ये जन्म के शत्रु भी एकत्र रहते हैं, तपस्त्रियों के प्रभाव से कोई किसी को नहीं सताता)। या मोर, सांप, मृग और बाघ परस्पर कट्टर शत्रु होने पर भी ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड प्रभाव से व्याकुल होकर एक ही स्थान पर आ बसते हैं। सो ग्रीष्म की प्रचंड गर्मी ने मानों संसार को तपोवन बना डाला है।

१८ मोर मुकुट—चन्द्रिकन = मोर पंख में बने हुए चन्द्राकार चिह्न। नंद नंद = नंद के पुत्र, कृष्ण। अकस = विरोध या शत्रुता करने वाले।

मोरपंखों के मुकुट की चन्द्रिकाओं से कृष्ण ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानों महादेव के विरोधी (कामदेव) ने सौ चन्द्रिकाओं

को सिर पर धारण किया हो—महादेव के सिर पर एक चंद्रमा है, और उनके विरोधी ने सौ चंद्र धारण कर लिए हैं।

१९ या अनुरागी—श्याम रंग—यह पद श्लिष्ट है, इसके दो अर्थ हैं—(१) श्रीकृष्ण के अनुराग में, (२) काले रंग में। उज्ज्वल=(१) निर्मल, स्वच्छ (२) शृंगारमय, प्रेममय, प्रेममग्न।

इस प्रेमी चित्त की गति कुछ समझ में नहीं आती, ज्यों-ज्यों यह श्याम रंग में—श्रीकृष्ण के अनुराग में—डूबता है त्यों-त्यों उज्ज्वल होता जाता है--अर्थात् त्यों-त्यों और अधिक निर्मल या प्रेममग्न होता जाता है। (२० नंबर के दोहे का अर्थ अंत में देखें)

२१ सकत न तुव ताते—ताते=गरम, जले-कटे। रस को रसु=प्रेम का रस। सवादिल=स्वादिष्ट। खिन खिन=क्षण क्षण।

हे प्यारी! तेरे जले-कटे शब्द मेरे प्रेम के रस को सुखा नहीं सकते, नष्ट नहीं कर सकते। (वह प्रेम तो इन तप्त वचनों से) क्षण-क्षण औटे दूध के समान और भी अधिक स्वादिष्ट होता जाता है अर्थात् जैसा औटाये जाने पर दूध स्वादिष्ट होता जाता है, वैसे ही तेरे गरम वचनों से मेरा प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता जाता है।

२२ जपमाला—जपमाला=जपने की माला। छापा=गरम त्रिशूल आदि से शरीर को छाप लेना। सरै=पूरा होता। रांचै= प्रसन्न होता है।

जपमाला, छापा और तिलक आदि से एक भी काम पूरा नहीं होता। कच्चे मन वाला वृथा ही नाचा करता है, राम तो सच्चे ही से प्रसन्न होते हैं।

२३ घरु घरु—चखन=आँखों पर।

(लोभी मनुष्य) घर घर दीन होकर फिरता है और जन जन से (हरेक आदमी से चाहे वह माँगने योग्य हो और चाहे न

हो) जाकर माँगता है (क्योंकि उसे) आँखों पर लोभ का चश्मा लगाने के कारण छोटा भी बड़ा दिखाई देता है।

२४ जस अपजसु देखत—ये (चंचल नयन) यश अपयश नहीं देखते--किस काम के करने से यश होगा, और किस काम के करने से अपयश होगा, यह नहीं विचारते, ये तो केवल (श्रीकृष्ण का) सांवला शरीर देखते है। क्या करूँ लालच से भरे ये मेरे चंचल नयन (बरबस उनके पास) चले जाते हैं।

२५ मोहन मूरति स्याम की—जोय = देखो। अन्तर = भीतर।

श्रीकृष्ण की मोहनी मूर्त्ति की बड़ी अद्भुत गीत देखी जाती है। वह रहती तो है स्वच्छ हृदय के भीतर, पर उसकी झलक दिखाई पड़ती है सारे संसार में—उसकी कांति संसार भर में प्रतिबिम्बित होती है।

२६ पहुँचति डटि रन—रनसुभट = लड़ने में वीर।

(उसकी) आँखें लड़ाई के वीर योद्धा के समान डट कर अपने उद्देश्य पर (अपने प्रेमी के पास) पहुँच जाती हैं—लोग उन्हें रोक नहीं सकते। लाखों की भीड़ में भी (उसकी) आखें वहीं (उस प्रेमी) की ओर ही चली जाती हैं।

२८ जहां जहां—सुभग सिरमौर = भाग्यवानों में शिरोमणि, सुन्दर पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ। ठाड्यो = खड़ा। ठौर = स्थान। दृगनि = आँखों को।

सुन्दरों के सिरताज श्रीकृष्ण को जहाँ जहाँ मैंने खड़े हुए देखा, उनके न रहने पर भी, अब भी वे स्थान मेरी आँखों को एक क्षण के लिए (बरबस) पकड़ लेते हैं—आँखें उस ओर फिर दौड़ती हैं, शायद श्याम मिल जायँ।

२९ बड़े न हूजे—विरद = प्रशंसा-सूचक नाम।

गुणों के विना (केवल) प्रशंसा-सूचक नाम की बड़ाई पाने से बड़ा नहीं हुआ जाता। (देखो लोग यद्यपि) धतूरे को कनक (कनक सोने को भी कहा जाता है) कहते हैं पर उससे गहना नहीं गढ़ा जाता।

३० नर की अरु—मनुष्य और नल के पानी की एक ही गति समझो। जितना (वह) नीचा (नम्र, निम्नगामी होकर) चलता है उतना ही ऊँचा (श्रेष्ठ, ऊर्ध्वगामी) होता है। नल का पानी जितना नीचे जायगा उतना ही ऊँचा चढ़ेगा ऐसे ही जो आदमी जितना ही नम्र होकर चलेगा, वह उतना ही अधिक उन्नति करेगा।

३१ भूषन भार—हे लाडिली! यह तेरा सुकुमार शरीर भूषणों का भार कैसे सँभालेगा, जब शोभा ही के भार से तेरे पैर सीधे नहीं पड़ते अर्थात् सुन्दरता के भार से ही तू लचकी जाती है, तो भूषणों का भार कैसे संभालेगी।

३२ बढ़त बढ़त—सलिल = पानी। सरोज = कमल।

सम्पत्ति रूपी पानी के बढ़ते बढ़ते मनरूपी कमल बढ़ जाता है। तालाब में ज्यों ज्यों पानी बढ़ता है त्यों त्यों कमल-नाल भी बढ़ता है और कमल पुष्प कभी पानी में डूबता नहीं। किन्तु फिर वह उसके घटते घटते घटता नहीं प्रत्युत समूल (जड़ सहित) सूख जाता है। (ऐसे ही धनी मनुष्य का मन गरीब होने पर भी पहले सा ही उदार बना रहता है।)

३३ पहिरि न भूषण—कनक = सोना। मोरचा = जंग, मैल।

'सोने के आभूषण न पहन' यह बात इस लिये कही जाती है कि वे दर्पण के समान (शुभ्र) शरीर पर मैल के समान दिखाई देते हैं।

३५ कोटि जतन—कोटि = करोड़ों। प्रकृतिहिं = स्वभाव में।

कोई करोड़ों यत्न क्यों न करता रहे पर स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ता। जैसे नल के बल से जल ऊँचा चढ़ जाता है तो भी अन्त को (नल से अलग होने पर) नीचे का नीचे ही गिरता है।

३६ गुनी गुनी सबकैं—अरक = १.आक का पेड़, २. सूर्य। सब कोई चाहे गुणी गुणी कहें—अर्थात् किसी को गुणी गुणी कहकर पुकारें, परन्तु जिसमें गुण नहीं है वह गुणी नहीं हो सकता। आक के पेड़ को सब अर्क कहते हैं, परन्तु उसमें कहीं तुमने अर्क (सूर्य) के समान उजाला होना सुना है? अर्थात् नहीं।

३७ दुसह दुराज—दुराज = दो का राज्य, दुअमली। दंद = (द्वंद) दुःख।

दुःसह दुअमली में प्रजाओं के लिए अत्यधिक दुःख क्यों न बढ़े ? अमावस को सूर्य और चन्द्रमा मिलकर (एक राशि पर अधिकार करके) जगत् में अधिक अँधेरा कर देते हैं।

३८ तौ लगु—तब तक इस मनरूपी घर में हरि (भगवान्) किस रास्ते से आवें जब तक निपट विकट (अत्यन्त दृढ़) जुड़े हुए कपटरूपी कपाट (दरवाज़े) नहीं खुलते।

३९ सरस कुसुम—सरस = रसीला। परसत = छूते हुए। पत्यात = विश्वास करता।

रसीले फूल पर भौंरा मँडराता रहता है पर झुक कर तथा झपट कर (एकाएक उससे) लिपट नहीं जाता। फूल की

अत्यधिक सुकुमारता—नाजुक शरीर—देखकर उसे छूते हुए वह मन में नहीं पतियाता (उसे डर है कि मेरे भार से यह सुकुमार पुष्प नष्ट भ्रष्ट न हो जाय)।

४० भजन कह्यो—भज्यो=भाग गया, स्मरण किया।

अरे गँवार ! (वेदशास्त्रों ने जिसका) भजन करने को कहा है उससे तो तू भाग गया, उसे तूने एक बार भी नहीं भजा (स्मरण किया) और जिससे दूर भागने के लिए कहा है उसको तूने भजा (भोग किया)।

४१ बसै बुराई—जिसके मन में बुराई बसती है उसी का सम्मान होता है। (देखो) भले ग्रहों (चंद्र बुध आदि) को तो भला कहकर छोड़ दिया जाता है और खोटे ग्रह (शनि, मंगल आदि में) जप-दान किया जाता है।

४२ पतवारी माला—मालारूपी पतवार को पकड़कर और ईश्वर के नाम की ही नौका बनाकर इस संसार रूपी समुद्र से पार हो जा, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

४३ जो चाहत—राजस=राजसी, हुकूमत।

यदि तुम चाहते हो कि (मित्रता की) चमक-दमक न घटे और मित्र मैला न हो (मित्र के मन में किसी प्रकार की मैल न आवे) तो स्नेह से सुस्निग्ध (चिकने) उसके चित्त में हुकूमत रूपी धूल न छुआओ अर्थात् उस पर हुकूमत न करो।

४४ लाल तुम्हारे रूप की—पलक=एक पल मात्र के लिए। लागै पलक न=पलक नहीं लगती, नींद नहीं आती। पलौन= एक पल के लिए भी

हे लाल ! तुम्हारे रूप की, बताओ यह कौनसी रीति है, कि जिससे एक पल के लिए भी यदि किसी के नेत्र लगते हैं, तो उसके नेत्रों में पल भर के लिए भी नींद नहीं आती। अर्थात् जो तुम्हें एक बार देख लेता है, फिर पल भर के लिए भी उसे चैन नहीं पड़ता।

४५. थोरेई गुन—हे कान्ह (पहले तो तुम) थोड़े ही गुणों से रीझ (प्रसन्न हो) जाते थे पर अब तुम ने वह आदत भुला दी है तुम भी मानो आज कल के (कंजूस) दानी हो गये हो।

४६ अरे हंस—या=इस। विडारि = भगा दिया।

अरे हंस ! इस नगर में तू सोच समझ कर जाना (क्योंकि यहाँ वे लोग रहते हैं) जिन्होंने कौओं से प्रेम करके कोयल को भगा दिया है अर्थात् ये गुण दोष को नहीं पहचानते, कहीं तेरी भी आफ़त न आवे।

४७ कनक कनक—कनक = सोना । कनक = धतूरा । बौरात = पागल होता है । उहिं = उसे। इहिं = इसे।

कनक (सोने) में कनक (धतूरे) से चौगुनी अधिक मादकता है । उसे (धतूरे को) खाने से (मनुष्य) पागल होता है और इसे (सोने को) पाने मात्र से ही पागल हो जाता है ।

४८ तो रस राँच्यो आन—रस = प्रेम। राच्यो = अनुरक्त है। निबौरी = नीम का फल। बौरी = पगली।

हे सुन्दरी, प्रीतम तो तुम्हारे ही प्रेम में लगा हुआ है, (जो उसे) दूसरे के वश में बतलाते हैं—जो यह कहते हैं कि वह

दूसरी स्त्री से अनुरक्त है—वे कुटिल बुद्धि और निर्दय हैं। (उनका विश्वास न कर) अरी पगली! अंगूर चखने के बाद जीभ निबौरी को कैसे पसंद करेगी? (तुम्हारे इस सुन्दर रूप के आगे उसे दूसरी स्त्री कैसे पसंद आयगी।

४९ कीजै चित—गननु = समूह। गनौ न = ख्याल न करो।

हे गोपीनाथ! मेरे गुन और अवगुणों के समूह का ख्याल न कीजिये और अपने चित्त को वैसा ही (कृपालु) बनाइये जिससे मैं भी अब पतितों के साथ तर जाऊँ। अर्थात् मेरे गुन अवगुण का विचार न कर मुझे कृपाकर वैसे ही भवसागर से तार दीजिए, जैसे आप अन्य पतितों को तारते रहे हैं।

५० संगति सुमति—कुमति के धंधे (झंझट) में पड़े (लोग अच्छी) संगति से सुमति नहीं पाते। हींग को कपूर में मिलाकर रक्खो (तोभी) वह सुगंध (अच्छी गंध) देनेवाली नहीं होती।

५१ हरि कीजति विनती—हे हरि, तुमसे मैं हजार बार यही विनती करता हूँ कि (मैं) जिस किसी भी तरह डला हुआ (लुढ़कता पुढ़कता) भी तुम्हारे दरबार में पड़ा रहूँ।

५२ गिरि ते ऊँचे—पगारु = उतना पानी जिसमें केवल पैर डूबे। प्रेमपयोधि = प्रेमसमुद्र।

पहाड़ से भी ऊँचे रसिकों के मन जहाँ (जिस प्रेम-समुद्र में) हजारों डूब गये हैं वही प्रेम समुद्र पशु के समान मूर्ख मनुष्यों को पगार (उथला पानी) सा जान पड़ता है।

५३ जिन दिन—अलि = भौंरा। अपत = बिना पत्तों की।

जिन दिनों (तुमने) वे फूल देखे थे, वह बहार(वसंत ऋतु) तो अब बीत गई। हे भौंरे! अब तो गुलाब में बिना पत्तों की कटीली डालियाँ ही रह गई हैं।

५४ मैं बरजी कै बार —(किसी सुकुमारी सुन्दरी ने पति से रूठकर दूसरी ओर मुँह कर लिया है, इस पर उसकी सखी कहती है) मैंने तुझे कितनी बार मना किया है फिर भी तू इस ओर (मेरी ओर) क्यों करवट लेती है! (देख, इधर शय्या के किनारे लगाई गई इन गुलाब की पंखुडियों में से कोई) गुलाब की पंखुड़ी तेरे शरीर में लग जायगी, जिससे (तेरे सुकुमार) शरीर में खरौंट पड़ जायगी।

५५ मोहू दीजे मोपु—(हे पतितोद्धारक) मुझे भी मोक्ष दीजिए, जैसे (आपने कृपा करके) बहुत से पतितों को दिया है (और यदि) बाँधने में ही संतोष है तो अपने गुणों से बाँधिये—अर्थात् मुझे अपना भक्त बनाइये।

५६ सोहत संग—सब लोग यही कहते हैं कि बराबर वालों का ही सम्बन्ध सोहता है। जैसे (लाल) ओठों में पान की पीक फबती है और काजल (काली) आँखों के योग्य समझा जाता है।

५७ सबै हँसत—नागरता=चतुराई, प्रवीणता।

(कोई नगर निवासी गाँव में जा बसा वहाँ) सब के सब हाथ की ताली बजा कर प्रवीणता के नाम पर हँसते हैं। गँवारों के गाँव में जाने से (उस बेचारे का) सब गुण-गर्व जाता रहा।

५८ बहकि बड़ाई—मति भूल=अज्ञानी जन। राचत = प्रसन्न होता है। गुड़हर फूल = जवा पुष्प, एक तरह का फूल।

हे अज्ञानी मनुष्य, अपनी झूठी बड़ाई में भूलकर क्यों प्रसन्न होता है ? बिना मधु (शहद) के गुड़हर का फूल (अत्यंत सुंदर होने पर भी) भौंरे के चित्त में नहीं गड़ता (अच्छा नहीं लगता)

५९ स्वारथु सुकृतु—स्वारथ=अपना लाभ। सुकृतु = पुण्य।

दुष्ट स्वामी के इशारे पर अनर्थ करने वाले नौकर को बाज के प्रति अन्योक्ति द्वारा कोई समझाता है—

हे विहंग ! (आकाश में स्वच्छन्द विचरने वाले पक्षी) जरा विचार कर तो देख (तू जो शिकार करता है) उसमें न तेरा कोई अपना लाभ है और न कोई पुण्य है; केवल व्यर्थ का परिश्रम ही है। (इस लिए) हे बाज ! दूसरे के हाथ में पड़कर तू पक्षियों को मत मार।

६०. संगति दोष—कुटिल = कपटी, छली। बंक (वक्र) = टेढ़ी। भ्रुव = भौंह। नैन = नेत्र।

लोगों ने जो यह वचन कहे हैं कि "संगति का दोष सब को लगता है" सो सत्य है। देखो तिरछी और टेढ़ी भौंहों के संग से नेत्र भी कुटिल तथा वक्र गति वाले (तिरछे कटाक्ष करने वाले) हो गये है।

६१ न ये बिससिये—बिससिये = विश्वास कीजिये। लखि = देख कर। नये = झुके हुए, नम्र। औंटे परि = दाँव लगने पर।

इन दुःसह स्वभाव वाले दुर्जनों को नम्र होते देखकर भी उनका

विश्वास न कीजिये। दाँव लगने पर ये काँटे की तरह पैर में लगकर प्राणों को हर लेते हैं।

६२. अति अगाधु—अगाधु = अथाह। औथरो = उथला।

संसार में अनेक अथाह और उथली नदियाँ, कुएँ, सरोवर और बावलियाँ हैं, परन्तु जिसको जहाँ तृप्ति हो उसके लिए वही समुद्र है।

६३. मानहु विधि—पायंदाज़ = पैर पोंछने का वस्त्र।

दृष्टि के पैरों से शरीर की अच्छी छवि मैली न हो जाय (स्वच्छ रहे) मानों इसी लिये दृष्टि के पैर पोंछने के लिये ही ब्रह्मा ने पायंदाज़ के तौर पर आभूषणों की सृष्टि की है।

६४ करौ कुबत—कुबत = बुराई, निन्दा। त्रिभंगी = तीन जगह से टेढ़ा। बाँसरी बजाते समय कृष्णजी की कमर पेट तथा गरदन—तीन जगह—पर बल पड़ता है।

संसार (चाहे मेरी) निन्दा करता रहे (पर) हे दीनदयालु! मैं कुटिलता नहीं छोड़ूँगा। (क्योंकि) हे त्रिभंगी लाल! सरल (सीधे) चित्त में रहते हुए तुम दुखी होओगे (टेढ़ी चीज़ सीधी चीज़ के अन्दर बड़ी कठिनता से समाती है)।

६५ दूरि भजत प्रभु—गुन = (१) गुण (२) डोरी। विस्तारन = फैलाना। चंग = पतंग। रंग = समान।

गुण विस्तार करने के समय प्रभु पीठ देकर पतंग की तरह दूर भागते हैं और निर्गुण (१ गुणों के बखेड़े से रहित, २ डोरी से रहित) होने पर निकट ही प्रकट होते हैं। (पतंग की डोरी को ज्यों ज्यों बढ़ाते जाओ पतंग दूर होता जाता है और जब उस को बिना डोरी का कर दो—उस की डोरी को समेट लो—तो वह हाथ में आजाता है। इसी प्रकार प्रभु भी गुण विस्तार—सगुणोपासना—के समय दूर भागते हैं। प्रभु के गुण अनन्त हैं, कोई पार नहीं पा

सकता पर निर्गुणोपासना में पास ही प्रकट हो जाते हैं, जहाँ ध्यान करो वहीं प्राप्ति हो सकती है।

६६. कहै यहै श्रुति—निसक = निःशक्त,निर्बल। पातक = पाप।

सब श्रुति और स्मृति यही कहती हैं और सयाने लोग भी यही कहते हैं कि पाप, राजा और रोग ये तीन निर्बल को ही दबाते हैं।

६७. जो सिर धरि—जिस मुकुट को सिर पर धारण करके राजा-राव मही (पृथ्वी) पर महिमा पाते हैं उसी को पाँव में पहन कर (पहनने वाला) अपनी ही जड़ता (मूर्खता) प्रकट करता है।

६८. को कहि सके—बड़ों से (उनकी) बड़ी भूल देख कर भी कौन कह सकता है (कि यह तुम्हारी भूल है) । (देखो) दई (दैव, ईश्वर) ने गुलाब की इन कटीली डालियों में वे (सुन्दर तथा कोमल) फूल दिये हैं। यह ईश्वर की भूल है पर कोई उसकी निंदा नहीं करता।

६९. या भव—भव = संसार। पारावार = समुद्र। उलंघि = लाँघ कर। छायाग्राहिनी = सिंघिका नाम की राक्षसी, कहा जाता है कि यह समुद्र में रहती थी और ऊपर उड़ते हुए जिस पक्षी आदि की परछाहीं जल में पड़ जाती थी उसे परछाहीं द्वारा ही पकड़ कर खींच लेती थी। जब हनुमान जी समुद्र पार कर लंका जा रहे थे तो उन्हें भी इस ने परछाहीं द्वारा खींच लिया था पर हनुमानजी उसे मार कर पार हो गये।

इस संसार रूपी समुद्र को लाँघ कर पार कौन जाय! क्योंकि स्त्री की छविरूपी छायाग्राहिनी राक्षसी बीच में ही आकर सब को पकड़ लेती है।

७० दिन दस—बखानु=बड़ाई, प्रशंसा।

हे कौवे, दस दिन (थोड़े दिन) आदर पाकर अपनी बड़ाई

(भले ही) करले। (पर यह समझ रख कि) तेरा सम्मान तभी तक है जब तक श्राद्ध पक्ष है।

७१ मरतु प्यास—समय का फेर देखो कि सुवा (तोता) तो पिंजरे में पड़ा हुआ प्यास से मर रहा है और वलि देने का अवसर होने के कारण कौवे को आदर दे देकर (आदर पूर्वक) बुलाया जा रहा है।

७२ इहीं आसा—मूल=जड़, ठूँठ। बहुरि=फिर।

गुलाब के (फूल पत्ते रहित) ठूँठ में भौंरा इसी आशा से अटका रहता है कि फिर वसंत ऋतु में इन्हीं शाखाओं में वे फूल होंगे।

७३ वे न इहाँ—मूर्ख मण्डली में पड़े हुए किसी गुणी को देख कर कोई गुलाब पर अन्योक्ति करके कहता है—गुलाब! वे प्रवीण मनुष्य यहाँ नहीं है जिनके आदर से तेरी प्रतिष्ठा बढ़ी हुई है। इस गंवारों के गाँव में तो तू फूला हुआ भी अनफूले के समान हो रहा है। भाव यह है कि यहाँ तेरे गुण का विकास होना न होना बराबर है।

७४ चल्यौ जाइ—ओड़=गदहों पर ईंट चूना आदि ढोने वाले।

चले जाओ, यहाँ हाथियों का व्यापार कौन करता है? क्या नहीं जानते कि इस गाँव में धोबी, ओड़ और कुम्हार रहते हैं। जिन को केवल गदहों से काम रहता है, वे भला तेरे हाथियों—अर्थात् महान् गुणों—को क्यों पूछने लगे।

७५ कुटिल अलक—उदोत=सौन्दर्य। बकारी—टेढ़ी लंबी पाई जो रुपया लिखने के लिये अंक के बाद लिखी जाती है, जैसे—५)।

सुन्दरी के मुख पर टेढ़ी लटें छूट पड़ने से मुख का सौन्दर्य (वा प्रकाश) इतना बढ़ गया है, जैसे टेढ़ी वकारी लगा देने से दाम (दमड़ी) सूचक अंक रुपया-सूचक हो जाता है ।

७६. जाकैं एको—ब्यौसाइ=व्यवसायी, उद्योग करने वाला, सींचने वाला । निदाघ=ग्रीष्म ऋतु ।

जिसके लिए संसार में कोई एक भी उद्योग करनेवाला नहीं है, वही आक (ईश्वर के भरोसे पर) गरमी की ऋतु में लहलहाकर फूलता फलता है ।

७७ नहिं पावसु—पावसु=वर्षा ऋतु । ऋतुराजु=ऋतुओं का राजा, वसन्त । अपतु=बिना पत्ते का । दल=पत्ते ।

हे तरुवर ! तू भूल मत कर, यह वर्षा ऋतु नहीं है (जो सब को अपार दान देती है) । यह ऋतुराज (वसन्त) है । इसमें पत्ररहित हुए बिना (पत्तों के झड़े बिना) नये पत्ते, फल और फूल कैसे पायगा ? (वर्षा ऋतु में बिना पुराने पत्ते झड़े ही नये पत्ते निकल आते हैं पर वसन्त में पुराने पत्ते जब झड़ जाते हैं तभी पत्ते निकलते हैं ।)

७८ नीच हियै—पोत=समता, ढंग ।

नीच मनुष्य गेंद का ढंग लिए हुए (गेंद की तरह निरादृत होने पर भी) सदा हृदय में प्रसन्न रहता है ! (जैसे गेंद के) माथे पर ज्यों-ज्यों मारते हैं त्यों त्यों वह ऊपर को उछलता है ।

७९ प्रलय करन बरषन—जलधर=मेघ । गिरिधर=कृष्ण । गिरि धरि—पहाड़ धारण करके ।

प्रलय करने के लिए सब बादल एक साथ मिलकर बरसने

लगे। उस समय भगवान कृष्ण ने सहर्ष अपने हाथ पर पहाड़ (गोवर्धन) उठाकर इंद्र का घमंड चूर कर दिया।

८० बुरौ बुराई--खरो = बहुत। सकातु = डरता है ।

यदि बुरा मनुष्य बुराई छोड़ दे तो चित्त बहुत डरता है। जिस प्रकार निष्कलंक (बिना धब्बे के) चन्द्रमा को देख कर लोग उत्पात गिनते हैं।

८१ ओछे बड़े न--सतर ह्वै = तन कर, ऐंठ कर। गन = गगन, आकाश।

छोटे आदमी चाहे सतर होकर (तन कर) आकाश में भी लग जाँय तो भी बड़े नहीं हो सकते। जैसे फाड़ फाड़ कर देखने से आँखें ज़रा भी बड़ी नहीं होतीं।

८२ लाज लगाम न मानहिं—मुहँ जोर = लगामको खींचने पर भी न रुकने वाला। तुरंग = घोड़ा। ऐंचतहू = खींचते हुए भी।

(मैं क्या करूं) ये नेत्र मेरे बस में नहीं हैं और न लाज रूपी लगाम को ही मानते हैं। ये तो मुहँ-जोर घोड़े की तरह (लगाम) खींचते रहने पर (लज्जाके कारण रोकते रोकते) भी (प्रियतम की ओर) चले ही जाते हैं।

८३ इती भीर हूँ—दीठि=दृष्टि, नजर।

इतनी भीड़को भी भेद (फाड़ कर) किसी न किसी ओर से हो कर इधर आकर (उस की) दृष्टि और सब की नज़र बचा कर (मेरी) दृष्टि से मिल कर लौट जाती है।

८४ पटु पाखैं—पाँखै = पंखें। भखु = भोजन। परेवा = कबूतर। विहंग = पक्षी।

(भोजन वस्त्र के लिए परदेश में पड़ा हुआ कोई मनुष्य

कबूतर को कबूतरी के साथ सुख से कंकर चुनते हुए देखकर कहता है)।

हे परेवा पक्षी, संसार में तू ही एक-मात्र सुखी है, क्योंकि पंख ही तेरे वस्त्र हैं, कंकड़ ही तेरा भोजन है और परेई (कबूतरी) सदा तेरे साथ है (तुझे किसी बात की चिन्ता नहीं और न तुझे कभी वियोग-दुःख ही सहना पड़ता है।)

८५ प्रेम अडोलु डुलै—अडोल = अचल। अनखाई = गुस्से होती है। चितवनि = नज़र।

तेरा प्रेम अचल है, वह चलायमान नहीं हो सकता। परन्तु तू (छिपाने के वास्ते) प्रियतम की बात करने पर मुख से क्रुद्ध होकर बोलती है, तेरे चित में उसी प्रियतम की मूर्त्ति बसी है (यह बात तेरी) चितवन से ही दिखलाई पड़ती है (तेरी दृष्टि उस ओर जाते ही कुछ और सी हो जाती है)

८६ मन मोहन सौं—(हे मन, यदि तुझे प्रेम ही करना है तो तू) मनमोहन से मोह (प्रेम) कर (और सब प्रेम अंत में फीके पड़ जाते हैं पर मनमोहन का प्रेम अंत तक चटकीला रहता है) (यदि तू शोभा देखना चाहता है तो) घनश्याम को देख (वे सुन्दरता की सीमा हैं)। (यदि तू विहार करना चाहता है तो) कुंजबिहारी के संग विहार कर (कुंजबिहारी के नित्य नये विहार चित्त को कभी थकने नहीं देते)। (यदि तेरी इच्छा किसी को हृदय में धारण करने की है तो) गिरधारी को हृदय में धर (क्योंकि वे भक्तवत्सल हैं)

८७ समै पलट—भो = हो गया। कुपूत = अपवित्र या दुष्प्रकृति। करुणाकरो = करुणा का आकर (खान) अर्थात् परम दयालु।

समय के पलटने (फेर) से (सबका) स्वभाव भी बदल जाता है। ऐसा कौन है जो उसके साथ अपनी चाल नहीं छोड़ देता? इस अपवित्र कलिकाल में परम दयालु ईश्वर भी अकरुण हो गया है। (अतः हम लोगों की पुकार नहीं सुनता)।

८८ चटक न—घटतहु = घटती में भी, बुरी अवस्था को प्राप्त होने पर भी। चटक = चटकीलापन, रंग की दृढ़ता। चोल = मजीठ, एक प्रकार की लकड़ी जिसे औटा कर लाल रंग निकाला जाता है। चीर = कपड़ा।

सज्जनों का गम्भीर (गहरा, पक्का) प्रेम (मित्र की) घटती में भी अपना चटकीलापन नहीं छोड़ता। जैसे मजीठ के पक्के रंग में रँगा हुआ कपड़ा फट भले ही जाय पर फीका नहीं पड़ता।

८९ को छूट्यौ—इस जाल में पड़ कर कौन छूटा है, हे कुरंग (हरिण) तू क्यों व्यर्थ अकुलाता (छटपटाता) है? ज्यों ज्यों सुलझ कर तू भागना चाहता है त्यों त्यों (और भी अधिक) उलझता जाता है।

९० सघन कुंज छाया—सुरभि-समीर = सुगन्धित वायु।

जहाँ सघन कुंज है, सुख देने वाली छाया है, और सुगन्धित मंद पवन बहती है उस यमुना के तीर पर जाते ही अब भी मन वैसा ही (कृष्ण के प्रेम में निमग्न) हो जाता है।

९१ सोहत ओढ़ै—पीतपट = पीताम्बर। आतप = धूप।

सुन्दर साँवले शरीर पर पीताम्बर ओढ़ने से ऐसी शोभा देता है, मानों नीलम-पर्वत के शिखर पर प्रातःकाल की (सुनहरी) धूप पड़ रही हो।

९२ ज्यौं ह्वै हौ—हे कृष्ण! मैं अपनी चाल से जैसा होना होगा वैसा होऊँगा (मुझे तारने के लिए) तुम हठ न करो क्योंकि

मेरा तारना—मेरा उद्धार करना अत्यंत कठिन है। (मैं घोर पातकी हूँ)

२० कैसे छोटे—सरत=चलना, पूरा होना। दमामा=नगाड़ा

छोटे मनुष्यों से बड़ों के (बड़ों के करने के अथवा बड़ों के लाभ के काम कैसे चल सकते हैं?) (भला) कहो तो (सही कि) चूहे के चमड़े से दमामा क्यों कर (कैसे) मढ़ा जा सकता है?

भूषण

शिवाजी का माहात्म्य

१-२ गरुड़ को दावा—को = का। दावा = वश, आतंक, आधिपत्य, अधिकार। सदा = हमेशा। नाग = सर्प, साँप। समूह = झुंड। नाग-जूह = (नाग = हाथी, जूह = समूह)—हाथियों का झुंड। सिंह = शेर। सिरताज = सर्वश्रेष्ठ, सब से बढ़कर। पुरहूत = इन्द्र। पहारन के कुल पर = पहाड़ों के समूह पर। पच्छिन = पक्षियों। गोल = झुंड। अखण्ड = सम्पूर्ण, पूरा। नव खण्ड = नवों खण्ड (भरत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतु, माल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश)। महिमंडल = पृथ्वी। तम=अन्धकार, अँधियारा। रवि-किरन-समाज = सूर्य की किरणों का समूह। पूरब = पूर्व दिशा। पछाँह = पच्छिम, पश्चिम। दच्छिन = दक्खिन, दक्षिण। लौं = तब। पादसाही = बादशाही।

जिस प्रकार सर्पों के झुंड पर गरुड़ का, हाथियों के समूह पर महाबली सिंह का, पहाड़ों के समूह पर इन्द्र का, पक्षी-समूह पर हमेशा बाज का और समस्त नवखंड भूमण्डल के अन्धकार पर सूर्य की किरणों का आधिपत्य है, उसी प्रकार पूरब से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक (चारों दिशाओं में) जहाँ-जहाँ (मुगल) बादशाही है वहाँ-वहाँ शिवाजी महाराज का अधिकार है।

३-४ वेद राखे बिदित—राखे = रक्षा की। विदित = प्रकट, ज़ाहिर, प्रसिद्ध। राख्यो = रक्खा। अति = बहुत। रसना = जीभ। सुघर = (१) सुन्दर (२) अच्छा घर। रोटी = रोज़ी,

जीविका। गर=गला। मीड़ि=दबाकर। मरोरि=मरोड़ कर। वैरी=शत्रु। पीसि=पीस कर। वरदान=आशीर्वाद। कर=हाथ। राजन=राजाओं। हद्द=हद, सीमा, मर्यादा। तेगबल=तलवार की शक्ति। देव=देवता। देवल=देवालय, मन्दिर। स्वधर्म=अपना धर्म।

शिवाजी ने अपनी तलवार के बल से वेदों और पुराणों की रक्षा की। सार-युत रामनाम को, जिह्वारूपी सुन्दर घर में रक्खा। हिन्दुओं की चोटी, तथा सिपाहियों की रोटी (रोजी, जीविका) तथा कन्धे पर जनेऊ और गले में माला को बचाया। मुगलों को मर्दन करके और बादशाहों को मरोड़कर, शत्रुओं को पीस डाला। अपने हाथ में वरदान की शक्ति रक्खी। शिवाजी ने अपनी तलवार की शक्ति से राजाओं की राज्य की सीमा रक्खी, मन्दिरों में देवता और (हिन्दुओं के) घर-घर में अपने धर्म को रक्खा।

५-६ उतरि पलंग ते—उतरि=उतर कर। ते=से। धरा=जमीन, धरती। पै=पर। पग=पर। तेऊ=वे भी। सगबग=तेजी से। निसि=निशि, रात। अति=बहुत। अकुलाती=व्याकुल (बेचैन) होती हैं। मुरझाती=सूख जाती हैं। गात=शरीर। सोहाती=अच्छा लगती। बोलैं=बोलने पर। अनखाती हैं=झुंझला उठती हैं। सिंह=शेर। साहि=शाहजी। सपूत=सुपुत्र। सिवा=शिवा जी। धाक=रोब, प्रताप। अरि-नार=शत्रु की स्त्रियाँ। बिललाती=रोती। कोऊ=कोई। करैं=करते हैं। घाती=आत्मघात, आत्महत्या। घरैं=घर में। तीन बेर=तीन बार, तीन मर्तबा। बीन बेर=बेर बीनकर।

भूषण कहते हैं कि सिंह के समान शाहजी के सुपुत्र शिवाजी ! आपका प्रताप सुन कर शत्रुओं की स्त्रियाँ बेचैन हो रही हैं। जिन सुकुमार स्त्रियों ने कभी पलंग से उतर कर जमीन पर पैर भी न रक्खा था, अब वे भी डर के मारे रात दिन तेजी से भागती चली जा रही हैं। वे बहुत व्याकुल हैं, उनके मुख मुरझा गये हैं और वे घबराहट से अपने शरीर भी नहीं ढक पाती हैं। उन्हें किसी की बात अच्छी नहीं लगती और बोलने पर झुँझला उठती हैं। कोई आत्मघात करती हैं। कोई छाती पीट कर रोती हैं। जो घर में तीन तीन बार भोजन करती थीं आज वे ही जंगल में बेर बीन कर खा रही हैं।

७-८ किबले की—किबले की ठौर = पूजा के स्थान (योग्य)। ताको = उसको। मेहर = कृपा, दया। हू = भी। मां को जायो = एक ही माँ से उत्पन्न। बादि = व्यर्थ। चूक = दोष, गुनाह।

पूजा के योग्य जो तेरा पिता बादशाह शाहजहाँ था, उसको तूने कैद कर दिया जिससे मानों मक्के में आग लगा दी (अर्थात् मक्के में आग लगने के समान पाप किया)। बड़ा भाई जो दारा था उसे पकड़ कर तूने कैद कर दिया, तुझे ज़रा भी दया न आई कि माँ का जाया हुआ तेरा सगा भाई है। मुरादबक्श भाई से व्यर्थ में गुनाहगार बनने के लिए विश्वासघात करने के लिए कुरान को बीच में डालकर तूने खुदा की कसम खाई थी। भूषण कवि कहते हैं कि हे औरंगजेब ! सुन, इतनी करतूतें कर के फिर तूने यह बादशाही पाई है।

वृन्द

वृन्दसतसई

१ भजत निरन्तर—बरत = नट की रस्सी जिस पर चढ़कर वह खेल करता है।

सन्तलोग परमात्मा के चरणों में चित्त लगाकर निरन्तर इस तरह भजन करते हैं जैसे बाजीगर अपनी नजर को एक टक लगाकर रस्सी पर पाँव धरता है।

२ नीकी पै—नीकी (अच्छी) बात भी यदि बिना अवसर के कही जाय तो फीकी (नीरस, बुरी) ही लगती है जैसे युद्ध के वर्णन में शृङ्गार रस अच्छा नहीं लगता।

३ फीकी पै—फीकी बात भी यदि अवसर देख कर कही जाय तो अच्छी ही लगती है, जैसे विवाह के समय की गाली सब के मन को खुश करती है।

४ रागी अवगुण—श्याम=१ कृष्ण, २ काला। लाल= प्यारा, लाल रंग।

संसार की यही रीति है कि प्रेमी पुरुष दोष को नहीं देखते। देखिये सभी ग्वाल बाल श्याम (कृष्ण काले) को लाल (लाल रंग का—प्यारा) कहते हैं।

५ जो जाकौं प्यारो—विषभखी = विष खाने वाला।

जिसको जो प्यारा लगता है वह उसी की बड़ाई करता है। जैसे ज़हर (अफ़ीम धतूरा आदि) खाने वाला ज़हर को अमृत के बराबर मानता है।

६ कहा होय उद्यम—शलभ = टिड्डी।

यदि परमात्मा ही उलटे पड़ जाएँ, तो परिश्रम करने से भी क्या होता है। जैसे पैदा हुए (फूले फले) खेत को टिड्डी जड़ से काट डालती है (विचारे किसानों का किया कराया परिश्रम सब व्यर्थ होजाता है)।

७जो जाही को है—जो जिसका होकर रहता है वही उसकी आशा पूरी करता है। बादलों की बहुतायत में भी (बादलों से भरे आकाश में भी) चातक स्वाति की बूँद के बिना प्यासा मरता है। (कहते हैं पपीहा स्वाति नक्षत्र में बरसे बादल की बूँदें पीकर ही अपनी प्यास बुझाता है)

८ गुनही तऊ—गुणी होने पर भी उसी को मनाना चाहिए जो जीवन के लिये सुख का भवन अर्थात् भंडार हो। यद्यपि आग नगर को जला देती है तो भी आग को कौन नहीं लाता?

९ कीजै समझ—समझ बूझ कर व्यवहार करना चाहिये, बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए। जैसे पैरों पर सिर का बोझ पड़ता रहता है पर वे इसे नहीं जानते। (अर्थात् वे बेसमझ हैं इसी लिए उन्हें भार उठाना पड़ता है।)

१० दीबौ अवसर को—समय पर दिया हुआ, भला होता है जिससे कि काम सुधर जाय। खेती के सूखने पर बादल का बरसना किस काम का?

११ अपनी पहुँच—सौर = चादर।

अपनी शक्ति विचार कर ही कार्य करना चाहिए। जितनी लम्बी चादर हो उतने ही पैर फैलाने चाहिए।

१२ पिसुन छल्यो—पिशुन = धूर्त, दुष्ट। दाध्यो = जला हुआ

धूर्त से छला गया मनुष्य भले का भी भूल कर विश्वास नहीं करता; जैसे दूध से जला हुआ, छाछ (लस्सी) को भी फूँक-फूँक कर पीता है।

१३ प्राण तृपातुर—

तृषातुर (प्यास से व्याकुल) मनुष्य के प्राण थोड़ा-सा जल देने से भी बच जाते हैं। परन्तु पीछे (प्राण चले जाने पर) पानी से भरकर हजार घड़े डालने पर भी प्राण नहीं मिलते।

१४ अनमिलती जोई—जो कोई बेमेल बात करता है उसकी ही हँसी होती है। जैसे यदि कोई योगी योगाभ्यास में विषयभोग की आशा करे (तो उसकी हँसी ही होगी)

१५ बड़े बड़न को दुख—थाप = निश्चय। सरिता = नदी।

बड़े ही बड़ों का दुःख दूर करते हैं, पर नीच (छोटे) नहीं, यह निश्चित है। जैसे पहाड़ की गरमी को बादल मिटाता है, नदी नहीं।

१६ गुरुता लघुता—मनुष्य का बड़ापन और छोटापन आश्रय वश से ही होता है। जैसे हाथी जल में विन्ध्याचल पहाड़ के बराबर मालूम होता है और वही शीशे में छोटा दिखाई देता है।

१७ उपकारी उपकार—परोपकारी आदमी संसार में सबके साथ उपकार ही करता है, जैसे चन्दन मलय पर्वत के कड़वे और मीठे सभी वृक्षों को सुगन्धित कर देता है।

१८ विधि रूठै—विधि = दैव, भाग्य। तूठै = संतुष्ट होना, प्रसन्न होना। दव = आग। नलिनी = कमल। हिम = बरफ़

दैव के रूठने पर कौन प्रसन्न होता है ? और कौन सहायता कर सकता है ? (कोई नहीं) । जंगल की आग के डर से कमल जल के अन्दर रहता है, परन्तु वहाँ भी उसे बरफ़ जला देती है ।

१९ करियै सुख को—यह कौन सी बुद्धिमत्ता है कि काम किया तो सुख के लिए जाय पर उस से हो उलटा दुःख । उस सोने को जला देना चाहिए जिस से कि कान फटें । भाव यह है कि सोने के आभूषण शोभा के लिए पहने जाते हैं पर यदि वे इतने भारी हों कि उन से कान फटने लगें (कष्ट मालूम हो) तो उन से क्या लाभ ?

२० नैना देत बताय—हृदय की सब भलाई और बुराई आँखें बता देती हैं, जैसे साफ शीशा अच्छा या बुरा प्रकट कर देता है । (मूल पुस्तक में "हित कौ" की जगह "हिय कौ" चाहिए)

२१ अति परचै—अत्यधिक परिचय (जान पहचान) से अरुचि (नफ़रत) और अनादर का भाव पैदा हो जाता है । जैसे कि मलयाचल की भीलनी चन्दन की कदर नहीं करती और उसे (साधारण लकड़ी के समान) जला डालती है । (मलयाचल पर चन्दन बहुत अधिक होता है इसलिए वहाँ उसका कोई मूल्य नहीं होता)

२२ सो ताके अवगुण—जो जिसको नहीं चाहता वह उसके दोष कहता है (बुराई करता है) । जैसे वियोगिनी चंद्रमा को तपा हुआ (जलाने वाला) कलंकयुक्त और जहर से भरा हुआ कहती है ।

२३ विधि के विरचे—विधाता के किये (अर्थात् भाग्य के फेर से) अच्छे आदमी भी बुरे हो जाते हैं। जो आँचल हवा से दीपक की रक्षा करता है वही उसे बुझा भी देता है।

२४ जासों जैसौ भाव--जिसका जैसा भाव होता है वह उसे (दूसरों को) वैसा ही मानता है। जैसे चन्द्रमा को कोई तो सुधाकर (अर्थात् अमृत की खान) कहता है और कोई कहता है कि यह कलंक वाला है।

२५ आप बुरे जग है बुरो—जो आप बुरे हैं उन्हें सारा संसार बुरा जानता है और जो अच्छे हैं उन्हें सारा संसार अच्छा जानता है। बहेड़े की छाया को सब छोड़ देते हैं (क्योंकि वह बुरा है) और आम की छाया का सब आकर आश्रय लेते हैं (क्योंकि वह स्वयं अच्छा है)

२६ भाव भाव की—अपने-अपने विचार के अधीन ही सिद्धि (लक्ष्य की पूर्ति) है और इसी तरह एक दूसरे के विचार में भेद है। यदि मानें तो देवता है और नहीं तो दीवार का लेप ही है। अर्थात् एक आदमी पत्थर में भी देवता का विश्वास करके उद्देश्य पर पहुँच सकता है और दूसरा जो श्रद्धा-विश्वास से हीन है, उसके लिये वह पत्थर ही है।

२७ बिन गुन कुल जाने—मनुहारि = खुशामद।

गुण और कुल को जाने बिना किसी का आदर और खुशामद नहीं करनी चाहिये। क्योंकि कई दुष्ट आदमी साधु का वेष धारण कर लोगों को ठगते फिरते हैं।

२८ हित हू की कहिये--जो आदमी बेसमझ (मूर्ख) हो उसे भलाई की बात भी नहीं कहनी चाहिये। जैसे नकटे (कटी हुई नाक वाले) आदमी को शीशा दिखाने से गुस्सा ही आता है।

२९ अति अनीति—मन को प्यारा भी हो तो भी धन अनीति (अन्याय, जुल्म) करके नहीं लेना चाहिये। सोने की छुरी मिलने पर भी कोई उसे पेट में नहीं मारता।

३० सबै सहायक—सब बलवान के ही सहायक होते हैं, कोई निर्बल का सहायक नहीं होता। पवन (हवा) आग को तो जलाती है पर बेचारे दीये को बुझा देती है।

३१ कछु बसाय—बलवान के साथ तो कुछ वस नहीं चलता परन्तु कमजोर के साथ (उसे गिराने, नीचा दिखाने के लिये) जोर लगाते हैं। पहाड़ तो हिलता नहीं; पर हवा ज़ोर के झोंके से वृक्षों को उखाड़ डालती है।

३२ समै समुझि कै कीजिये—वही काम अच्छा होता है जो समय का विचार करके किया जाय। भोजन करते समय सैंधव माँगने पर घोड़े का क्या काम। (सैन्धव नमक को भी कहते हैं और घोड़े को भी। भोजन करते समय यदि सैंधव माँगा जाय तो नमक लाना चाहिये न कि घोड़ा) मूल पुस्तक में "सबै समझ के" की जगह "समै समझ कै" चाहिये।

३३ जिय पिय चाहे—घन = कपूर। उपचार = इलाज। करार = आराम।

दिल तो प्यारे को चाहता है (अर्थात् दिल तो विरह की आग से जला है) और तुम कपूर चन्दन से इलाज करते हो! यदि बीमारी कुछ और हो और उसकी दवाई कुछ और ही की जाय तो आराम कैसे हो सकता है।

३४ अति हठ मत कर—अधिक हठ (ज़िद) न कर, हठ बढ़ने पर कोई बात भी नहीं करता। ज्यों ज्यों कम्बल भीगता है त्यों त्यों भारी होता जाता है?

३५ लालच हू—लालच भी ऐसा ही अच्छा होता है जिससे

आशा पूरी हो जाय (छोटी छोटी चीजों के लिए लालच अच्छा नहीं)। कहीं ओस चाटने से भी किसी की प्यास बुझी है ?

३६ विषहू ते सरसी—क्रोध में प्रेमरस की बात ज़हर की तरह बुरी लगती है, जैसे पित्त के बुखार वालों को दाख कड़वी लगती है।

३७ हरिरस परिहरि—मूर्ख आदमी परमात्मा के (भक्ति) रस को छोड़कर विषयों के रस को इकट्ठा करता है (अर्थात् विषय भोगों में फँसा रहता है), जैसे कोई अमृत को छोड़कर ज़हर का पान करता है।

३८ असुभ करत सोइ—साधु पुरुषों के वचन, ऐसे अनुपम होते हैं, कि वे चाहे बुराई करने वाले भी हों तो भी उनसे भलाई ही होती है। श्रवण के पिता ने दशरथ को शाप दिया परन्तु वही वर-रूप हो गया। (दशरथ के बाण से श्रवण के मर जाने पर उसके पिता ने दशरथ को शाप दिया था कि जैसे हम पुत्र-वियोग से मर रहे हैं वैसे तू भी पुत्र के वियोग से मरेगा। यह शाप दशरथ के लिए वररूप हो गया, क्योंकि इससे दशरथ के घर पुत्र होना निश्चित हो गया)

३९ एक भले सब को—इस शब्द (कथन) को विचार करके देखो कि "एक अच्छे आदमी से सबकी भलाई होती है" जैसे—हरिश्चन्द्र के सत (भलाई, सत्यवादीपन के) कारण अनेक जीवों का उद्धार हुआ।

४० एक बुरे सब को—बलवान् आदमी के क्रोध के कारण एक के बुरा होने से सबका बुरा होता है। अर्जुन (सहस्रार्जुन) के दोष से सब क्षत्रियों का नाश हो गया (सहस्रबाहु ने परशुराम के पिता जमदग्नि को मार दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर परशुराम ने सहस्रबाहु को मारकर इकीस बार क्षत्रियों का संहार किया था)।

४१ आडम्बर तजि—आडम्बर (दिखावे) को छोड़कर चित्त लगा कर गुणों को इकट्ठा करो। बिना दूध के गौ नहीं बिकती, चाहे घण्टा लाकर उसके गले में क्यों न बाँध दो !

४२ जैसे गुन दीनो—विधाता ने जैसा गुण दिया है वैसा रूप कहाँ ? ये दोनों (गुण और रूप) यदि कहीं एक में पाये जाएँ तो सोने और सुगन्ध का योग हुआ समझना चाहिये ।

४३ होय कछू समुझै—कनक = धतूरा ।

जिसकी बुद्धि उलटी होती है वह, होता कुछ है और समझता कुछ है । जैसे धतूरा खाने वाला काले और सफेद रंग को पीला देखा करता है ।

४४ प्रेम निबाहन कठिन है—प्रेम का निभाना कठिन है (इसलिये जो कोई प्रेम करना चाहे वह) समझ सोच कर करे । भाँग का खाना तो सरल है परन्तु उसकी लहर (तरङ्ग को रोकना) कठिन होता है ।

४५ देव सेव फल देत—जिसकी जैसी भावना होती है उसको सेवा करने पर देवता वैसा ही फल देते हैं । जैसे—जिस प्रकार का मुँह बनाकर शीशे में देखो, वैसा ही दिखाई देता है ।

४६ जैसो बन्धन प्रेम—प्रेम का जैसा बंधन है वैसा और कोई बन्धन नहीं । भौंरा लकड़ी को तो छेद देता है परन्तु वही कमल को (जो लकड़ी की अपेक्षा बहुत कोमल होता है) छेद कर (उससे बाहर) नहीं निकलता । कमल में भौंरे का प्रेम होता है । भला प्रेम का बन्धन कैसे काटा जा सकता है ?

४७ जो सब ही को—जो सभी को देता है उसी को दाता कहना चाहिए । बादल वर्षा करते समय, समतल और ऊँचे नीचे स्थान का कोई विचार नहीं करता ।

४८ नवल नेह आनँद उमँग—नया प्रेम और प्रसन्नता की लहर छिपाये नहीं छिपती, उसमें मुख और आँख और ही तरह के हो जाते हैं जैसे सुगन्ध का चोर तभी (तत्काल ही) जाना जाता है। इसी प्रकार नया प्रेम और प्रसन्नता भी तत्काल जान ली जाती है।

४९ एक वस्तु गुण—भटा = बैंगन।

एक ही वस्तु अलग अलग प्रकृति वालों को अलग अलग गुण करती है। बैंगन एक को तो पित्त करता है और दूसरे को बाई करता है।

५० सुख बीते दुख होत—सुख के बीतने पर दुख होता है और दुख के बीतने पर सुख होता है। जैसे दिन के समाप्त होने पर रात होती है और रात के बीतने पर दिन का प्रकाश होता है। (किसी के दिन एक से नहीं गुज़रते)।

५१ पर घर कबहुँ—दूसरे के घर कभी नहीं जाना चाहिये, जाने से ज्योति (प्रतिष्ठा) घट जाती है। चन्द्रमा जब सूर्य के मंडल (घेरे) में जाता है (अर्थात् कृष्णपक्ष में) तो उसकी कला और ज्योति क्षीण हो जाती है (घट जाती है)।

५२ होय शुद्ध मिटि—अच्छी संगति को पाकर मनुष्य शुद्ध हो जाता है और उसकी अपवित्रता मिट जाती है। जैसे लोहा पारस पत्थर को छूकर सोना हो जाता है।

५३ ब्रह्म बनाए—विधाता ने जिसे जैसा बना दिया है, वह फिर और तरह का नहीं बनता। जैसे कान कुछ बोल नहीं सकते और जीभ किसी के कहने को सुनती नहीं अर्थात् कान सुनने के लिए ही बनाए हैं, उनमें बोलने या देखने की शक्ति नहीं लाई जा सकती।

५४ जे चेतन ते क्यों—चेतन प्राणियों में से जिसका जिससे प्रेम हो वह उसे क्यों छोड़ें जब कि अचेतन (जिस में जीव नहीं ऐसा) लोहा भी (प्रीति के कारण) चुम्बक के पीछे लगा फिरता है।

५५ घटति ब ति—हे बुद्धिमान मनुष्यो, रहट की गति देखो, उसमें जिस प्रकार कि खाली लोटे भर जाते हैं और भरे हुए खाली हो जाते हैं इसी तरह धन भी घटता बढ़ता रहता है।

५६ या जग की—इस संसार की उलटी ही चाल है यह स्वभाव देख के समझ लिया है। देखो! रसिक कृष्ण को जनार्दन (मनुष्यों की पीड़ा देने वाला) कहते हैं और हर (सृष्टि का संहार करने वाले) को शंकर (कल्याणकारी) नाम से पुकारते हैं।

५७ एक बिरानौ—बिराना = पराया।

जिससे शरीर को सुख हो ऐसा एक पराया ही अच्छा है जैसे जंगल की औषधि (जड़ी बूटी) रोग की पीड़ा को हर लेती है।

५८ जो पावे अति—भान (भानु) = सूर्य।

जो बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेता है उसका (अंत में) गिरना निश्चित है। जैसे सूर्य दोपहर तक खूब तपकर शामको अस्त होजाता है।

५९ एकहि गुण ऐसो—नीरद = बादल।

ऐसा एक भी गुण अच्छा है जिससे दोष छिप जायँ। जैसे बादल का बदरंग (कालेपन का ऐब) बरसते ही दूर जाता है। बादल के उपकार को देखते हुए लोग उसके काले रंग की ओर ध्यान नहीं देते।

६० धन संच्यौ किहिं—धन को जोड़ जोड़ कर जमा करते रहना किस काम का? खाओ खरचो और परमात्मा में प्रीति लगाओ। जैसे कुँए का बँधा हुआ जल (रुका हुआ) गंदा होजाता है और यदि निकलता रहे तो बढ़ता रहता है।

६१ निहचै भावी कौ—यह निश्चय मानो, कि यदि कहीं होनहार को टालने का कोई उपाय होता, तो नल और हरिश्चन्द्र जैसे राजा कष्ट न उठाते।

६२ बहुत निबल—करी=हाथी।

बहुत से निर्बल भी यदि मिल कर बल लगायें (यदि मिल कर उद्योग करें) तो जो कुछ चाहें कर डालें। देखो (छोटे-छोटे) तिनकों से बनाई हुई रस्सी से हाथी बाँधा जाता है।

६३ सुजन कुसंगति—बुरी संगत होने पर भी अच्छे आदमी अपनी सज्जनता को नहीं छोड़ते। जैसे साँपों के समूह का साथ होते हुए भी (साँपों के सदा लिपटे रहने पर भी) चन्दन के वृक्ष जहर को धारण नहीं करते।

६४ थोरे ही गुण तें—कहीं-कहीं थोड़े से गुण से भी संसार में प्रकट (मशहूर) होजाता है। एक ही हाथ से (सूँड से) हाथी जय प्राप्त कर लेता है, उसके हजार हाथ तो नहीं होते।

६५ विनसत सतगुण—गुणहीन आदमी के पास जाने से गुणी आदमी के सैकड़ों गुण नष्ट होजाते हैं। जैसे सुरमे के पहाड़ पर चन्द्रमा की किरणों का ज़रा भी प्रकाश नहीं होता।

६६ सांच झूंठ निरनै—जो नीति में होशियार हो वही सच और झूठ का निश्चय कर सकता है। राजहंस के बिना दूध और पानी को कौन अलग-अलग कर सकता है?

६७ जे पर ते पर—यह समझलो कि जो पराये हैं वे पराये ही हैं, उनमें से कोई अपने नहीं होते। कौआ यद्यपि पालता पोसता है फिर भी कोयल का बच्चा कौआ नहीं हो जाता।

६८ उद्यम कबहु—उनयो=उमड़ा हुआ। पयोद=बादल।

दूसरे की (सहायता की) उमीद की खुशी में (आशा में) अपना उद्योग कभी न छोड़ो। बादल को उमड़ा देखकर कहीं गागर फोड़ी जाती है ?

६९ बड़े सहज ही—बड़े आदमी छोटी सी बात पर ही खुश होकर इनाम दे देते हैं। जैसे तुलसी के पत्ते से विष्णु और आक तथा धतूरे से महादेव (खुश होकर निहाल कर देते हैं)।

७० यदपि अपनौ होय—सीर=साझा।

चाहे अपना भी हो फिर भी दुख में हिस्सा कोई नहीं लेता। जैसे दुखती हुई एक अंगुली की पीड़ा उसके पास वाली दूसरी अंगुली नहीं ले लेती।

७१ हितहू भलो न—नीच आदमी का न तो प्रेम ही अच्छा होता है और न वैर ही। कुत्ता (प्रेम करता है तो) चाट कर शरीर को अपवित्र कर देता है और (वैर करता है तो) काट कर दुःख देता है।

७२ धन बाढ़ै मन—जलज=कमल।

धन के बढ़ जाने से मन बढ़ जाता है और फिर वह मन कभी घटता नहीं। जैसे जल के साथ कमल बढ़ जाता है पर फिर जल के घटने पर वह घटता नहीं।

७३ देवन हू सों देव—प्रभु (महादेव) देवों के भी देव हैं, इन्द्र और राजा उनके सामने क्या हैं (कुछ नहीं) तथा धनेश (कुबेर) उनका मित्र है फिर भी महादेव केवल चर्म ही धारण करते हैं।

७४ अनमिल सुमिल—अच्छे आदमियों के समाज से बुरे आदमी के उठ जाने पर ही चैन पड़ती है। जैसे तिनका आँख में पड़कर दुख देता है और उसके निकलने से आँखें खिल जाती हैं।

७५ मिले सुसंगति—ऊँचे आदमी की संगति पाकर भी (नीच आदमी) नीच से ही प्यार करता है। गधे को चाहे गंगा में नहलायें फिर भी वह छार (धूल) नहीं छोड़ता (धूल में ही लोटता है)

७६ प्रेम छके मन को—कुल की लाज प्रेम के दीवाने मन को रोक कर नहीं रख सकती। क्या कमल की डंडी के धागे से कोई हाथी को बाँध सकता है ?

७७ विपत परे सुख—जिससे विपत्ति पड़ने पर सुख (सहायता) मिल सके उसके पास घर बनाना चाहिए (रहना चाहिये) जैसे बहरे को आँखें तथा अन्धे के कान सहायक होते हैं।

७८ बांके सीधे को—गुण-ग्राही = गुण-रस्सी, ग्राही-पकड़नेवाले। टेढ़े और सीधे का मेल अन्त तक कभी नहीं निभ सकता। जैसे तीर और कमान दोनों गुणग्राही (एक रस्से से युक्त) होने पर भी एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

७९ होत न कारज मो—मेरे बिना काम नहीं होता, ऐसा जो कहता है वह मूर्ख है। जहाँ मुर्गा नहीं बोलता, वहाँ क्या विहान (सवेरा) नहीं होता ?

८० विपति बड़ेई—बड़े आदमी ही कष्ट सहन कर सकते हैं, दूसरे लोग विपत्ति से दूर रहते हैं। तारे अलग रहते हैं, राहु चन्द्रमा और सूर्य को ही ग्रसता है।

८१ ठौर छुटे तें मीत—सतरात = क्रुद्ध होता है, ऐंठ दिखाता है। अपना स्थान छूट जाने से मित्र भी शत्रु होकर ऐंठ दिखाते हैं, दुःख देते हैं। जल से उखड़े हुए कमल को सूर्य जलाता और गलाता जाता है। वैसे सूर्य कमल को खिलाता है अतः उसका मित्र है पर यदि कमल स्थान-भ्रष्ट हो जाय तो वही सूर्य उसे सुखा डालता है।

८२ होत बहुत धन—बहुत धन के होते हुए भी मनुष्य गुणों से युक्त होने पर ही प्रकाशित होता है। दीपक के तेल से भरे होने पर भी गुण (बत्ती) के बिना उजाला नहीं होता।

८३ जात गुनी जात—जहाँ गुणी मनुष्य पहुँच जाता है वहाँ आडम्बर वाला (दिखावा करने वाला) आदमी नहीं पहुँच सकता। चंग (पतंग) यदि गुण (डोरी) से युक्त हो तो आकाश तक पहुँच जाता है ।

८४ विद्या गुरु की—विद्या गुरु की भक्ति से या अभ्यास करने से प्राप्त होती है। भील (एकलव्य) ने द्रोण के बिना सिखाये ही (गुरु-भक्ति और अभ्यास द्वारा) बाणों का चलाना सीख लिया। (द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बना कर उसमें गुरुभाव धारण करके एकलव्य ने बाण विद्या सीखी थी)

८५ उद्यम बुधि बल सों—बुद्धि और बल से यदि उद्यम मिले तो (मनुष्य) सुख को पाता है। जैसे अन्धे के कन्धे पर चढ़कर लंगड़ा सब काम बना लेता है।

८६ छोटे अरि पर—ससा = खरगोश। नाहर = शेर।

अच्छा सिपाही छोटे शत्रु पर चढ़ाई करते हुए भी कवच आदि से सजकर जाता है। खरगोश के शिकार के लिये भी शेर के शिकार का सब सामान साथ में लेना चाहिये।

८७ ताको अरि कहा—पनही = जूता।

जिसके पास यत्न और उपाय है उसका दुश्मन क्या कर सकता है? जिसके पाँव में जूता है उसके पैर गर्म रेत में नहीं जलते।

८८ वीर पराक्रम तैं—शूरवीर अपने पराक्रम से (ज़ोर से) सारी पृथ्वी पर राज्य करता है। शेर क्योंकि जोरावर है इसीलिये वह बन को अपना बना लेता है—बन में राज्य करता है ।

८९ जो हाजिर—अवसान=समय, मौका।

हथियार वही है जो समय पर काम दे। देखो, बलरामजी ने कुशा से ही पौराणिक मुनि सूत* के प्राण हर लिये थे।

९० काहू सों नाहीं—अपरापत=अप्राप्त, भविष्य, भाग्य। अपरापत्त के अंक=भाग्य में लिखा।

भाग्य में लिखा किसी से मेटे नहीं मिटता। यद्यपि चन्द्रमा महादेव के सिर पर बसता है तो भी वह पूर्ण नहीं हुआ।

९१ कोऊ दूर न—विधाता के लिखे उलटे अंकों (दुर्भाग्य) को कोई दूर नहीं कर सकता। समुद्र चन्द्रमा का पिता होता हुआ भी उस के कलंक को नहीं धो सका। चन्द्रमा का जन्म समुद्र से माना जाता है।

९२ करत करत अभ्यास—अभ्यास करते-करते जड़-बुद्धि वाला भी ज्ञानवान होजाता है। जैसे (कोमल) रस्सी के बारबार आने जाने से कठोर पत्थर पर भी निशान पड़ जाता है।

९३ सुख दिखाय—नीच मनुष्य से लड़ना नहीं चाहिए, उसे तो सुख दिखाकर दुःख देना चाहिये। जो पुरुष गुड़ देने से ही मर जाय उसे जहर क्यों दिया जाय ?

९४ सब सुख है—सब सुख सन्तोष में ही है इसलिये मन में सन्तोष धारण करो। केवल हवा से ही पुष्ट होने पर भी (केवल हवा से ही पेट भरने पर भी, साँप जरा भी कमज़ोर नहीं होता।

---

*पौराणिक मुनि सूत ने बलराम को प्रणाम नहीं किया था इस लिए बलदेव जी ने उसको कुशा के आघात से मार डाला।

९५ पांय परेहू पिसुन=विससि=विश्वास करके। जीवन=जल, प्राण।

दुष्ट आदमी के पाँव पड़ने पर भी उसकी बात का विश्वास न करो। जैसे कुएँ का डोल झुककर भी कुएँ का जीवन अर्थात् पानी हर ले जाता है। दुष्ट आदमी भी इसी तरह प्रीति दिखा कर अन्त में धोखा देता है।

९६ विनसत बार न—अंबर-डंबर=वह लाली जो संध्या समय आकाश में दिखाई देती है।

नीच मनुष्य के प्रेम को नष्ट होते उसी तरह देर नहीं लगती जिस तरह सन्ध्या समय की आकाश की लाली और रेत की दीवार थोड़ी देर में ही नष्ट होजाती है।

९७ कहे मूढ की बात—मूर्ख के बात करने (सलाह देने) पर भी वही करिये जो अपने दिल में हो। दूसरे के कसम दिलाने पर भी भला कोई आग में कूद पड़ता है?

९८ सुबुध बीच परि—बुद्धिमान आदमी दो आदमियों के बीच में पड़ कर प्रेम-प्रवाह से दोनों की लड़ाई को मिटा देते हैं। जैसे देहली (दहलीज) पर रखा हुआ दीप घर और आँगन दोनों का अंधेरा दूर कर देता है।

९९ कुल सपूत जान्यो—अच्छे खानदान का लड़का, सुंदर शरीर और अच्छे लक्षण (चिह्न या आचरण) देखकर ही जान लिया जाता है। जैसे होनहार (जिसने आगे चलकर तरक्की करनी हो उस) पौदे के पत्ते (पहले से ही) चिकने होते हैं।

१०० का रस में का रोष में—क्या प्रेम में और क्या क्रोध में (किसी भी हालत में) शत्रु पर विश्वास न करना चाहिये। जैसे पानी चाहे गरम हो, चाहे ठंढा हो पर आग को बुझा ही डालता है।

१०१ दोऊ चाहैं मिलन—यदि दोनों आपस में मिलना चाहें तो मिलाप निश्चित समझो। कभी एक हाथ से ताली नहीं बजती।

१०२ जा में विद्या—जिस में नारदमुनि के समान (इधर की उधर लगाने की) विद्या है वह लाग (दाँव) बिगड़ने नहीं देता अर्थात् दाँव नहीं चूकता। चोर को वह कहता है पैस (घुस जा), कुत्ते को कहता है भूंस (भौंक) और धनी को कहता है, जाग जा।

१०३ सबुध अबुध—हे बुद्धिमान पुरुष! मूर्ख की सेवा का स्वरूप अपने हृदय में धारण करलो, यह ऐसी ही (निरर्थक) है जैसे सूखी जगह पर लगाया हुआ कमल या बहिरे के कान में किया हुआ जाप निरर्थक हो जाता है।

१०४ ऊंचे पद को पाय—छोटे आदमी का ऊँचा पद पा लेने पर जल्दी ही पतन हो जाता है जैसे पानी पहले तो बादल से पहाड़ पर गिरता है और फिर वहाँ से भी और नीचे ढुलक जाता है।

१०५ बिना दिये न—सुरभि=बसंतकाल। सपल्लव=पत्ते सहित।

सब कोई यह समझ लो कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता। शिशिर ऋतु में वृक्षों के पत्ते गिर जाते हैं तब कहीं फिर बसन्त में वृक्ष पत्तों युक्त हो जाते हैं। पहले पत्तों को दे देने पर वृक्ष नये पत्ते पाते हैं।

१०६ निस दिन—आँखों में यदि छोटा सा भी तिनका पड़ जाय तो वह रात दिन खटकता रहता है। उन्हीं आँखों में सज्जनों

की मूर्ति को रख लिया जाय तो वह एक क्षण के लिये भी नहीं खटकती।

१०७ देखत कौ पै कछु—दुष्ट की प्रीति देखने को ही तथा मुख पर ही होती है पर (वास्तव में) कुछ नहीं होती है जैसे कि मृगतृष्णा में पानी की प्रतीति होती है (देखने में पानी प्रतीत होता है, वस्तुतःपानी नहीं होता, उसी तरह नीच आदमी की प्रीति भी धोखा देने वाली होती है—गरमी के दिनों में रेतीले मैदानों में दूर क्षितिज की ओर जहाँ जल नहीं होता वहाँ गरम वायु की लहर आकाश की ओर उठती हुई ऐसी प्रतीत होती है कि जैसे जलकी धारा वह रही हो। इससे धोखा खाकर मृग उस तरफ दौड़ता है पर वास्तव में पानी नहीं पाता। इसे मृग-तृष्णा कहते हैं)

१०८ उत्तम विद्या—उत्तम विद्या यदि नीच के पास हो तब भी ले लेनी चाहिए। कंचन (सोना) यदि अपवित्र जगह पर पड़ा हो तो भी उसे कोई नहीं छोड़ता।

१०९ प्रीति टुटै हू—प्रीति के टूट जाने पर भी सज्जन के मन से भलाई नहीं छूटती। देखो, यदि कमल की डंडी को तोड़ दिया जाय तो भी उसके अन्दर के धागे नहीं टूटते।

११० प्रभु को चिन्ता—मालिक को सब की चिन्ता रहती है, आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वह बच्चे के जन्म के पहले ही माता के स्तनों में दूध भर देता है।

१११ सेवक सोई जानिये—सच्चा सेवक उसी को समझना चाहिये जो मुसीबत में भी साथ रहे। धूप में भी जैसे शरीर की छाया बिना परिवर्तन के सदा साथ रहती है।

११२ क्षमा खड्ग—जो क्षमा रूपी तलवार हाथ में लिये रहता है उस पर दुष्ट का क्या वस चल सकता है ? जैसे आग यदि तृण-रहित जगह पर पड़ी हो तो थोड़ी देर में आप ही आप बुझ जाती है।

११३ रस पोषै—रसिक और सन्त आदमी (विशेष तौर पर) प्रीति को वढ़ाये बिना ही रस (आनन्द) पैदा कर देते हैं। जैसे वसन्त ऋतु में बिना वारिश के भी वृक्ष फूले फले रहते हैं।

११४ जहां सजन तहँ—जिस तरह जहाँ फूल है, वहीं सुगन्ध है और जहाँ सुगन्ध है वहीं भौंरा है; उसी तरह जहाँ भला मनुष्य है, वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है वहीं सुख का स्थान है।

११५ अगम पंथ है—प्रेम का मार्ग वड़ा अगम (कठिन) है। उसमें किसी प्रकार की हकूमत नहीं चलती। देखो तीनों लोक के स्वामी श्रीकृष्ण महाराज (प्रेम में फँसकर) गोपियों के पीछे वन वन फिरते रहे।

११६ वचन रचन—कापुरुप = कायर पुरुष, डरपोक आदमी। कच्छप = कछुआ। दुर जाय = छिप जाते हैं।

डरपोक आदमी की वाक्य-रचना (बातें) कहे जाने पर एक क्षण भी नहीं ठहरतीं। जैसे कछुए के हाथ, पैर, मुख निकल निकल कर फिर छिप जाते हैं; स्थिर नहीं रहते।

११७ सरसुति के भंडार—सरस्वती (विद्या) के भंडार की वड़ी अनोखी वात है। ज्यों ज्यों इसे खर्च किया जाय त्यों त्यों बढ़ता जाता है और विना खर्चे घट जाता है। अर्थात् विद्या यदि दूसरे को दी जाय तो अपनी भी बढ़ती जाती है और दूसरे को न दी जाय तो अपनी भी घट जाती है।

११८ एक एक सों—संसार में एक दूसरे का आपस में अन्न-जल का सम्बन्ध लगा रहता है जैसे चोली और दामन का साथ है ऐसे ही यह संसार एक जंजीर में एक दूसरे के साथ बँधा है।

११९ चिदानंद घट में—मृगमद = कस्तूरी।

जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है, परन्तु वह खुशबू को कहीं और ढूँढता फिरता है, ऐसे ही तू परमात्मा को कहाँ ढूँढता फिरता है, वह तो घट घट वासी है।

१२० सरस निरस—समय पाकर मनुष्य सरस (कान्तियुक्त) और निरस (कान्तिहीन) होता है, जैसे दिन में सूर्य बहुत प्रकाश वाला होता है और चंद्रमा की कांति मंद पड़ जाती है।

१२१ बांके रनतें होतु—रन = रण, गति।

वांकी गति से—टेढ़ी गति से (टेढ़ेपन के कारण) सब लोग बंदनीय (आदर पाने के योग्य) होते हैं। जिस तरह दूज के चंद्रमा को हर कोई नमस्कार करता है, परन्तु पूर्णचंद्र को कोई नमस्कार नहीं करता।

१२२ भले भले विधिना—दधि = उदधि, समुद्र।

विधि ने अच्छी-अच्छी वस्तु बनाई हैं, परन्तु सब में कुछ न कुछ दोष डाल दिया है। जैसे कामधेनु को पशु, मनि को कठोर, समुद्र को खारा और चन्द्रमा को क्षीण होने वाला बनाया है।

१२३ यों निवाह सब जगत को—प्रेम-क्रोध, भलाई-बुराई करते हुए सारे संसार का निर्वाह होता जाता है। एक एक से लेता है और एक एक को देता है।

१२४ तृन हूँ ते—तूल = रुई। हरवो = हलका। आहि = होता है।

माँगने वाला तिनके और रुई से भी हलका (निस्सार) होता है (यदि वह इतना हलका है तो हवा उसे उड़ाती क्यों नहीं ? इसी

का उत्तर दूसरी पंक्ति में दिया है) हवा भी उसे इस लिए नहीं उड़ाती कि वह जानती है कि यदि उड़ाऊँगी तो वह मुझ से भी कुछ माँग लेगा ।

१२५ देखत है जग जातु—मनुष्य देखता है कि संसार जा रहा है (संसार नश्वर है) तब भी वह ममता से मेल करता फिरता है, मैं जानता हूँ कि मनुष्य इस संसार में जानता हुआ भी खेल (माया) में भूल गया है ।

———

रसनिधि

ब्रह्म की व्यापकता

१ अब तो प्रभु—नातर = नहीं तो। कुतार = असुविधा, बुराई। आधार = अवलंब।

हे स्वामी, अब तो मुझे तारे ही बनेगा अन्यथा बड़ी बुराई होगी। क्योंकि इस (भवसागर) से तरने वालों को तुम्हीं तारते हो और वही तुम मेरे (एक मात्र) अवलंब हो।

२ सुबस बसत—बसत = आबाद होते हैं। चित नगर = मन रूपी शहर। ऊजर = निर्जन। किती = कितनी। सराइ = सराय, यात्रियों के ठहरने का स्थान। ऐसे तो = यों तो।

वे ही हृदय रूपी नगर अच्छे आवाद हैं जहाँ (स्वयं) भगवान आकर बास करते हैं। यों तो (दुनियाँ में) शरीर रूपी कितनी सरायें उजड़ी (निर्जन) पड़ी हैं।

३ अद्‌भुत गति—गति = ढंग। सरस = रसीले। नसात = नष्ट हो जाता है।

रसनिधि कहते हैं कि इस रसीले प्रेम का ढंग ही कुछ विलक्षण है, कि हृदय में उस साँवली मूर्ति के प्रवेश करते ही हृदय का अंधकार दूर हो जाता है। (जो बिलकुल उलटा है।)

४ रसनिधि वाको—करतार = स्रष्टा। निरन्तर = सदा। तार = सूत्र। कर = हाथ।

रसनिधि का कहना है, कि ईश्वर को करतार (स्रष्टा) इसी लिए कहा जाता है कि उसी के कर (हाथ) में सदा दुनियाँ का तार (संचालन-सूत्र) रहता है।

५ तेरी गति—गति = तरीका। रज = धूलि। जु = जो।

ऐ नन्द के लाड़ले, कृष्ण ! तेरी गति किसी से जानी नहीं जाती क्योंकि तू उस मन के भीतर आकर वास करता है जो रज (कण) से भी अधिक सूक्ष्म है।

६ घरी बजी—घरी = घड़ी। घरियार = घंटा। कहत बजाइ = घोपित करते हैं। घरी = घटिका, समय का विभाग।

घड़ी बज चुकी है, और अब घंटे को सुन। वे दोनों बजकर यही घोपणा करते हैं कि (जीवन में) फिर यह समय नहीं मिलेगा। इसलिए ईश्वर के चरणों में ध्यान लगा ले।

७ हरि बिनु—तुव = तेरी। कामना = इच्छा। ले = लेकर।

ऐ मन, भगवान के बिना तेरी इच्छाएँ ज़रा भी काम नहीं आयेंगी। भला स्वप्न की सम्पत्ति से दुनियाँ में किसने अपना घर भर पाया है ? (किसी ने नहीं)

८ आपु भँवर—भँवर = भौंरा। बासना = महक। लसत = शोभा पाता है।

(यह सांसारिक विविधता भ्रम-मात्र है, वास्तव में तो) वह आप ही भौंरा (रस लेने वाला), आप ही कमल, 'आप ही रंग और सुगंधि' है (ये कोई भिन्न पदार्थ नहीं एक ही रूप परमात्मा के अनेक प्रतिरूप हैं) वह (आप) स्वयं ही सुगंधि को ग्रहण करता है और आप ही सर्वत्र शोभा पाता है।

९ साँची सी—साँची = सत्य। स्वाँगी = स्वाँग बनाने वाला। वहि के = उसके।

ऐ साधु महानुभावो, सुनो ! सच बात तो यह है कि (इस दुनियाँ की रंगभूमि में) स्वाँग करने वाला तो वह एक (ईश्वर) ही है। उसी के ये अनेक स्वाँग (रूप) हमें दिखाई पड़ते हैं।

१० यों सब जीवन—जीवन = जीवों। आद = प्रारम्भ, उत्पत्ति स्थल। घटन = घड़ों। बुनियाद = जड़।

यों अगर देखा जाय तो (दुनिया के) समस्त प्राणियों की जड़ सनातन ब्रह्म ही है जिस प्रकार मिट्टी के तमाम घड़ों की जड़ मिट्टी है।

११ जल हूँ में—निरालौ = विचित्र, अनोखा।

जल में भी वह आप ही है स्थल में भी आप ही है तथा समस्त प्राणियों में भी वह आप (स्वयं) व्याप्त है। इस तरह वह आप (परमात्मा) बड़ा विलक्षण है।

१२ अनल दिवैया—अनल = तेज, शक्ति। लिवैया = हरण कर्ता। माँझ = में। अनिल = प्राण।

रसनिधि कहते हैं कि तेज-प्रदाता वही परमात्मा है और उसका हरणकर्ता भी वह स्वयं ही है; और उस तेज के भीतर प्राण भी वह आप ही है।

१३ कुदरत वाकी—कुदरत = माया, । जाग = जगह अथवा जग में। ईंधन = जलाने की लकड़ी। पाहन = पत्थर। बनियौ रहै = बनी रहती है।

रसनिधि कहते हैं कि उसी (परमात्मा) की माया से सारी दुनियाँ भरी हुई है। जैसे विना ईंधन के भी पत्थर में आग बनी रहती है, आग का अस्तित्व पाया जाता है।

१४ हिंदू में—व्याप रहा = मौजूद। ठौर = जगह।

हिन्दू और मुसलमान का परमात्मा क्या भिन्न भिन्न है? नहीं, सबका स्वामी (ईश्वर) तो एक ही है और वह सब जगह मौजूद है।

१५ जदपि रहौ है—भावतौ = प्यारा। बल जैये = न्योछावर हो जाइये। जहूर = प्रकाश।

यद्यपि वह प्यारा सारी दुनियाँ में व्याप्त है, लेकिन न्यौछावर होने योग्य वही स्थान है जहाँ वह अपने आपको प्रकाशित करता है।

१६ करत फिरत—हे पागल मन, तुझे अपनी पहचान नहीं है, तू क्या करता फिरता है? परमात्मा तो तुझ में ही है उसे पहचान क्यों नहीं लेता?

१७ कठिन दुहूँ विधि—कठिन=मुश्किल। मीत=दोस्त। सुजान=चतुर। भान=सूर्य।

ऐ चतुर दोस्त! सुनो, दीपक के लिए तो दोनों ही तरह से मुश्किल है। वह (बेचारा) सारी रात तो बिना देखे (वियोग में) जलता रहता है और (सुबह होने पर) सूर्य का दर्शन करते ही ठंढा हो जाता है (जीवन-लीला समाप्त कर लेता है)

१८ हित करियत—करियत=करता है। छीर नीर=दूध पानी।

(ऐ प्यारे) तू प्रेम तो और तरीके से करता है और मिलता है दूसरे भाव से। (अगर तुझे प्रेम करना नहीं आता तो) प्रेम करने का तरीका दूध और पानी से दरियाफ्त कर ले!

प्रणय

१ बढ़त आपनो गोत—गोत=वंश, जाति। अनखाइ=अप्रसन्न होते हैं। सुहृद=मित्र, प्रेमी। हियौ=हृदय में। सिहाइ=प्रसन्न होते हैं।

और सब तो अपनी जाति की बढ़ती देख कर दुखी होते हैं, लेकिन प्रेमी नेत्र, बड़े नेत्रों को देखकर, मन में प्रसन्न होते हैं।

२ अरे मीत—कर गौर=ध्यान देकर। रूप=सुन्दरता। दुपहरी छाँह=दुपहरी की छाया। ठहराने इक ठौर=एक जगह ठहरे रहते हैं।

ऐ दोस्त, ज़रा इस बात पर ध्यान देकर विचार तो करो कि (किसी की) सुन्दरतारूपी दोपहर की छाया कब एक जगह ठहरी रही है ?

३ रूप चाँदनी—गढ़ी = गढ़, भवन। स्वच्छ = साफ। फरास = खिदमतगार। बरुनि = पलक। बहारु = झाड़ू।

रूप-रूपी चाँदनी का महल साफ़ रखने के लिए नेत्र रूपी खिदमतगार तैयार खड़े हैं और पलकें झाड़ू देने का काम कर रही हैं।

४ रूप कहर—कहर=भयंकर। दरियाव=नद। तरिबौ=तरना ज्ञान मलाह=विवेक-रूपी मल्लाह।

आँखों को विवेक रूपी मल्लाह रातदिन समझाता रहता है कि रूप का नद बड़ा भयानक है उसमें तैरने की सलाह मैं तुम्हें कभी नहीं दे सकता।

५ उर तम में—उर तम में=हृदय के अन्धकार में।

हे नन्दकुमार, अगर तुम हृदय के अंधेरे में आते हुए डरते हो, तो तुम्हारी रूप-रूपी रोशनी को अपने चित्त में लिए (अर्थात् अन्दर धारण करके) आँखें दरवाजे पर खड़ी हैं। (अब तो भय न होना चाहिये)

६ जब जब—ससि=चन्द्रमा। कला=ज्योति। तव = तुम्हारे।

जब जब चंद्रमा अपनी कला खो बैठता है तब तब वह (हे प्रिय) तुम्हारे ही चंद्रमुख से ज्योति माँग ले जाता है।

७ तेरे नैन—नेही=प्रेमी। तैं=से। बिरहतम=विरह-रूपी अंधकार।

(हे सखी) तेरे नेत्र रूपी मसालचियों ने तेरे रूप की मशाल दिखा कर तेरे प्रेमी के शरीर से वियोग-रूपी अंधकार दूर कर दिया है।

८ रूप सरोवर--रूपसरोवर=रूप-रूपी तालाब। माहिं=में। नैन-सरोज=कमल-रूपी नेत्र। ता हित=उसके लिए। अलि नेही=प्रेमी रूपी भौंरे।

तेरे रूप के तालाब में आँखों-रूपी कमल खिले हैं। उन्हीं के लिए तो प्रेमी-रूपी भौंरे रोज दौड़े चले आते हैं।

९ मन मैला—निरमल=स्वच्छ, निष्कपट। दाता=उदार।

मन कपटी भी होता है, और निष्कपट भी; मन उदार भी होता है और कंजूस भी, मन ज्ञानी भी होता है और मूर्ख भी। इस प्रकार (इस विश्व में अपनी विविधता के कारण) मन ने चारों तरफ धूम मचा रक्खी है।

१० उड़ौ फिरत—तूल=रुई। बेकाम=व्यर्थ। हरुये=हलके।

जो इधर-उधर रूई की तरह व्यर्थ ही उड़ा-उड़ा फिरता है (अर्थात् चञ्चल है) इस कदर हलके पदार्थ का नाम किसी ने न मालूम क्या समझ कर 'मन' रक्खा है। (जो पूरे चालीस सेर का होता है)।

११ जसुमति या ब्रज - निबाह=निर्वाह। होतही=होती थी।

यशोदा जी, तुम्हीं बताओ अब इस ब्रज में किसी का किस तरह निर्वाह होगा। पहले तो दही की ही चोरी होती थी (जो किसी तरह सह ली जाती थी) पर अब तो दिल चुराये जाने लगे हैं। (भला यह कैसे सहा जायगा।)

१२ उदौ करत--उदौ करत=निकलता है। प्रेमरवि=प्रेम-रूपी सूर्य। नैमतम=नियम-रूपी अन्धकार।

जब प्रेम-रूपी सूर्य पूर्व दिशा से उदय होता है तो देखो (शिष्टाचार आदि) नियम-रूपी अन्धकार कहीं लुप्त होजाता है।

१३ प्रेम पियाला—पियाला=शराब पीने का पात्र। छके=मस्त हुए। तेही=वेही। मझधार=बीच धार में।

(दुनियाँ में) होशियार (विवेकी) वे ही हैं जो प्रेम की मदिरा पीकर तृप्त होगये हैं, जो झूठे गर्व में पड़े रहे हैं वे (अंत में) बीच धार में डूब गये।

१४ न्यारौ पैड़ो—न्यारौ=अद्भुत। पैड़ों=मार्ग। सहसा=बिना विचारे। सिर के पैड़े=सिर दे सकने की प्रणाली।

प्रेम का मार्ग बड़ा ही विलक्षण है, उस पर बिना विचारे कोई न जाय। हाँ, सिर दे सकने के इरादे से किसी को जाना है तो भले चले जाओ।

१५ तौ तुम—पलक=क्षण भी। ओट=सामने से दूर। व्यापी होती=महसूस हुई होती। चोट=पीड़ा।

अगर तुम्हें कभी वियोग की व्यथा महसूस हुई होती तो तुम (निश्चय ही) एक क्षण के लिए भी मेरी आँखों से ओझल न होते।

१६ मेरेई अनुराग में—अनुराग=रंग, प्रेम। मनपट=हृदय रूपी परदा। रंगीलो=रंगीन।

मेरे अनुराग (प्रेम) में ही कुछ खोट दिखाई देती है, इसीलिए प्यारे का मन-रूपी परदा रंगीन नहीं हो पाता है।

१७ या झीने—झीने=महीन। हिततार=प्रेम-सूत्र। अखिल=समस्त।

इस अत्यन्त महीन प्रेम-सूत्र में इतनी अधिक शक्ति है कि जो समस्त लोकों का स्वामी है वह भी इससे बाँधा जा सकता है।

१८ जिन मोहन ने—सहज में=सरलता से। नख=नाखून। धरौ=रख लिया। पहार=पर्वत। भार=बोझा।

कृष्ण तो वही हैं जिन्होंने सरलता से (गोवर्धन) पर्वत को नाखून पर रख लिया था, भला उन्हें वियोग-व्यथा का यह बोझा कैसे भारी लग सकता है?

१९ गोवरधन नख—धर लियौ=रख लिया।

हे कृष्ण (तब तो) गोपियों और ग्वालों को बुलाकर तुमने गोवर्धन पर्वत को उँगली के अग्रभाग पर रख लिया था अब आकर यह वियोग-व्यथा भी क्यों नहीं अपने सिर पर उठा लेते। तात्पर्य यह है कि तब हम सब इतने प्यारे क्यों थे जो पानी से हमारी रक्षा की, अब इतने बुरे क्यों हो गये हैं जो विरह की आग से भी नहीं बचाये जाते?

२० बिन दरसन—सरसन लगौ=बढ़ने लगा, तपने लगा। विरह तरनि=विरह रूपी सूर्य। मेह नेह=प्रेम की वर्षा।

आपके दर्शन न पाने से विरह-रूपी सूर्य इस शरीर में तपने लगा है। इसलिए हे घनश्याम! आप इधर आइये और प्रेम की वर्षा बरसाने की कृपा कीजिये।

२१ अरी नींद—आवै चहे=आना चाहती है। दृग=आँख। असि=तलवार।

ऐ नींद, तू उन आँखों में आना चाहती है जिन में मेरे प्रियतम रहते हैं। भला कहीं ऐसा हो सकता है? क्या तूने कभी एक म्यान में दो तलवारों का रहना देखा अथवा सुना है?

२२ मोहन लखि—कै=के। रसना=जीभ।

मोहन के दर्शन करके कितना आनन्द बढ़ता है, यह कहने में नहीं आसकता। क्योंकि आँखें जो उन्हें देखती हैं उनके जीभ नहीं है (जो कह सकें) और जीभ जो कह सकती है उसके आँखें नहीं हैं (जो देखकर वर्णन कर सके)

२३ बार बार—औसर=मौका। मौसर = मुयस्सर, प्राप्त। त्यार = तैयार।

(बाद में) चाहे कोई सौ सिर देने के लिए क्यों न तैयार हो जाय लेकिन मौका जो अभी हाथ में आगया है वह बार बार नहीं आयेगा। भाव यह है कि मौके पर मर मिटना अच्छा है ।

२४ रे कुचील तन—कुचीलतन = मैले कुचैले शरीर वाला। तेलिया = तेली। हेर = देख। सुमननि बासे तिलन कौं = फूलों से बसाये हुए (सुगन्धित) तिलों को।

ऐ मैले कुचैले शरीर वाले तेली, ज़रा अपने मुँह की तरफ़ तो देख। भला, फूलों से बसाये हुए सुगंधित तिलों को क्यों पेरे डालता है ?

प्रबोधन

१ तन मन तोपै—वारिबो = न्यौछावर करना। पतंग = शलभ।

ऐ दीपक, पतंग का तो यही काम है कि वह तुझ पर अपना हृदय और शरीर दोनों न्यौछावर करदे, लेकिन इतने पर भी उसे जला डालना यह केवल तेरा ही काम है अर्थात् इतना निष्ठुर दूसरा कौन होगा जो अपने प्रेमी को जला डाले।

२ अरे निरदई—निरदई = निर्मम, कठोर। कसक कर हेर = व्यथा के साथ देख, तरस खा। प्रीति डार = प्रेम की शाखा।

अरे निर्दय माली, खिले हुए फूलों को तोड़ता हुआ जरा उस प्रेम की शाखा पर तो तरस खा।

३ हरी करत—पुहुमि = पृथ्वी। घन = बादल। रस = जल। जवासे = काँटेदार एक छोटा पौदा।

ऐ बादल, तू पानी बरसाकर सारी पृथ्वी को तो हरी भरी करता है लेकिन यह क्या बात है आक और जवासे के वृक्षों को जला डालता है?

४ प्यास सहत—औघट = दुर्गम। पान = जल। गरुआई = गुरुता, भारीपन। गर = गले। आन = आकर।

(हाथी) प्यास सह लेता है लेकिन दुर्गम घाटों पर पानी नहीं पी सकता। हाथी की गुरुता (भारीपन) उसी के गले आकर पड़ी है, उसी को मुसीबत हो गई है।

५ धरि सोने के—पिवाइ = पिलाकर। कीस = कीड़ा।

विष के कीड़े को सोने के पिंजड़े में रखकर अमृत ही क्यों न पिलाओ तो वह भी उसे पसंद न आयेगा। वह तो विष में ही आनंद प्राप्त करता है।

६ कोलत काठ—कोलत = छेद करता है। मो = मेरे।

जो भौंरा कठोर काठ में छेद कर देता है वह (सुकुमार) कमल में क्यों बंद हो जाता है। भौंरे के प्रेम की यह बात मेरे मन को बड़ी पसंद आई है।

७ धरे जदपि—बहु मोल के = मूल्यवान। जवाहिर = रत्न। हूब = प्यारे। आनन्द के औसर = उत्सव के समय। दूब = घास।

यद्यपि घरों में बेशकीमत मनोहर जवाहरात मौजूद हैं तो भी मंगलोत्सव के समय सिर पर दूब ही बाँधी जाती है।

८ सब ही को—पोपत रहे = पालते रहे। अमृत कला = सुधा की किरण। अजौं = आज भी।

चन्द्रमा अपनी चाँदनी के द्वारा अमृत की वर्षा करके भले ही सारे जगत का पोषण करता रहे लेकिन वह चकोर की दरद (प्रेम की दरद) को आज भी नहीं पा सकता।

९ बैठत इक पग—इक पग = एक पैर से। मीनन = मछलियों को। बक = बगुला।

रसनिधि कहते हैं कि बगुला एक पैर से ध्यानावस्थित होकर मछलियों को सताता है, यही कारण है कि उसका मुँह काला हो गया है।

१० अमित अथाहे—अमित = अत्यन्त। अथाहै = गहरे। अभिराम = सुन्दर। समुद = सागर।

ऐ सुन्दर समुद्र, यद्यपि तुम अत्यन्त गहरे पानी से भरे हुए हो, लेकिन जब तुम प्यासे प्राणियों के काम नहीं आते हो, तो तुम्हारी यह विशालता किस काम की ?

११ ससि चकोर—तुहिं = तुझको। असर = प्रभाव। कुहू निसा = अमावस की रात। षोडश = सोलह।

ऐ चन्द्रमा, चकोर के दर्द का जब तेरे ऊपर कोई असर नहीं होता (अर्थात् तू उसके दर्द को जरा भी अनुभव नहीं करता) तभी तो अमावस की रात को तू अपनी सोलहों कलाओं को खो बैठता है।

१२ या गुलाब के—पच = दुखी हो, मर। वासों = उससे। मधुकर = भौंरे।

इस गुलाब के फूल का रंग सदा रहने वाला (स्थायी) नहीं है। ऐ भौंरे, तू उससे प्रेम जोड़ कर दुख न उठा।

१३ उयै सोख—उयै = उगने पर। दुहू = दोनों। विधि = तरह से। मीत = मित्र, सूर्य। हेत = प्रेम।

सूर्य से प्रेम करने के कारण कमल की दोनों ही तरह से आफत है। क्योंकि जब वह दर्शन देता है तब तो जल को सोख लेता है और जब (रात को) उदय नहीं होता तब भी दुख देता है (तब कमल मुरझा जाता है)।

१४ होते जोपै—जो पै = अगर। चलत = प्रचलित, व्यवहृत। चाम के दाम = चमड़े के सिक्के। वेदरद = निष्ठुर, अत्याचारी लोग।

अगर कहीं सदा चमड़े के सिक्के व्यवहार में आते होते तो दुष्ट अत्याचारी लोग किसी के शरीर में चमड़ा नहीं रहने देते।

१५ चल न सकैं—तन द्रुम = वृक्षों के शरीर। रस = जल। लाजिम = आवश्यक। घनश्याम = कृष्ण वर्ण मेघ।

जिन सुन्दर वृक्षों के शरीर अपने स्थान से चल नहीं सकते, ऐ बादल! तुम्हें चाहिए कि तुम उन्हीं के स्थान पर जाकर उनके लिए जलवृष्टि करो।

रसिक की याचना

१ रोम रोम—अघ = पाप। सिरनाम = मशहूर। निवाहिवौ = निर्वाह करना।

रसनिधि कहते हैं कि जो पापियों में प्रसिद्ध है और जिसका रोयाँ-रोयाँ पाप से परिपूर्ण है उसका निस्तार करना, हे भगवन्! आप ही का काम है। दूसरा कोई उसे पार नहीं लगा सकता।

२ गंग प्रगट—प्रगट = निकल कर। पावन = पवित्र। आसरौ = सहारा।

जिसके चरणों से निकलकर गंगा जी ने दुनियाँ के पापों को धो डाला है उसी (भगवान्) के चरणों का सहारा रसनिधि ने आकर लिया है।

३ मधुसूदन यह—मधुसूदन = कृष्ण। अरि = दुश्मन। मांडत = ठानते। रार = तकरार, लड़ाई। बिरद = यश।

हे भगवन, एक तो आपके वियोग की व्यथा सता रही है और दूसरे दुश्मन (काम, क्रोध, लोभ, मोह) लोग नित्य ही युद्ध ठानते हैं। हे करुणानिधि ! इस विपत्ति के समय तो अपनी बड़ाई का विचार करके मेरी रक्षा कर लीजिये।

४ लखि औगुन—औगुन तन = अवगुणों की तरफ। अधम = पतित। सुहाइ = प्रसन्न होता है। सुमिर = याद करके।

रसनिधि कहते हैं कि हे भगवन्, अपने अवगुणों की तरफ जब ध्यान देता हूँ तो मुझे भय के कारण सब कुछ भूल जाता है लेकिन जब आपके पतित-पावन-यश की याद करता हूँ तो अत्यन्त प्रसन्न होता हूँ।

५ हौं अति—अधमन = पापियों। आधार = अवलंब।

मैं तो पापियों का सरदार हूँ और पापों के भार से परिपूर्ण हूँ लेकिन तुम्हारा नाम पतितोद्धारक है सो वही मेरा आसरा है।

६ जो करुणामय—हेरिहौ = ध्यान दोगे। करनी = कर्मों। छोर = अन्त। छिति छोर = पृथ्वी के किनारे तक, पृथ्वी पर्यन्त।

हे दयासागर, जो आप मेरे कर्मों की तरफ़ ध्यान देंगे तो आप मुझसा पापी पृथ्वीपर्यन्त खोजने पर भी न पायेंगे।

७ जदपि अकरनी—अकरनी = दुष्कर्म। हर भाँति = प्रत्येक तरीके से। करनी = कर्तव्य। सब विधि = सब तरह से।

हे भगवन्, यद्यपि मैंने हर प्रकार से दुष्कर्म ही किये हैं लेकिन अब तो (कृपया) अपना कर्तव्य करके उन्हें सुधार लीजिये।

८ अधम उधारन—औगुनी = अवगुणी, पापी।

भगवन्, तुम अधम उधारन के नाम से प्रसिद्ध हो और तुम्हारा काम भी पापियों का उद्धार करना है। इसलिए रसनिधि अगर पापी है तो उसकी सबसे अधिक शर्म तुम्हीं को है।

पद्माकर

राम से याचना

१ व्याधहू ते—व्याध = बाल्मीकि ऋषि जो पहले बहेलिया थे। ग्राह = मगरमच्छ जिसने हाथी को पकड़ लिया था। गुनाही = अपराधी। स्यारी (शबरी ?) = भीलनी। शूद्र = शंबूक, एक तपस्वी शूद्र, जिसकी तपस्या के कारण त्रेता युग में राम-राज्य में एक ब्राह्मण का पुत्र अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ था। अतः इसे राम ने अपने हाथों मार कर अपने लोक भेज दिया और ब्राह्मण-पुत्र को पुनरुज्जीवित किया था। केवट = निषादराज जिसने राम, लक्ष्मण और सीता को गंगा पार उतारा था। गौतमतिया = अहल्या।

मैं प्रसिद्ध पापी बहेलिया से भी बड़ा पापी हूँ, मैं अजामिल की भाँति ही दुर्जन हूँ, ग्राह से भी अधिक अपराधी हूँ क्या उनमें मेरी गणना करोगे ? (जैसे उनका उद्धार कर दिया वैसे मेरा भी उद्धार करोगे) लेकिन मैं न तो शबरी हूँ, न शंबूक हूँ और न केवट (निषाद) ही हूँ (जो सहज ही उद्धार किया जा सकूँ)। मैं अहल्या भी नहीं हूँ जो आप मुझे पैर से स्पर्श करके ही तार देंगे। इस लिए 'पद्माकर' खुले आम राम से पुकारकर कहता है कि आप मेरे महान पापों का अन्त भी नहीं पा सकेंगे, मैं इतना बड़ा पापी हूँ। फिर आपने तो बेचारी साध्वी सीता को उसका झूठा कलंक सुनकर ही छोड़ दिया था, ऐसी दशा में भला आप मुझ जैसे वास्तविक पापी को किस प्रकार शरण देंगे ?

२ जोग जप संध्या—साधन = साधना। सबै = सभी। रिझावते = प्रसन्न करते। जैसे अब तैसे = जैसा हूँ अब वैसा ही हूँ। पै = किन्तु।

मैंने योग, जप, संध्या-वन्दन और साधु महात्माओं की सेवा आदि सब साधनों का त्याग कर दिया है और मन-भाते अनेकों भीषण अपराध किये हैं। ऐसी दशा में इन सब असंख्य पापों को छोड़कर कौन से गुण लेकर महाराज (भगवान) को प्रसन्न करता। मैं जैसा हूँ वैसा ही हूँ लेकिन हे प्रभो, तो भी आपके बड़े काम का हूँ। अन्यथा इतने वाक्य आपके सामने किस प्रकार कहता। (और सच बात तो यह है) कि अगर मेरे जैसा अधम पापी आपको न मिलता तो आप भी अधम उधारन किस प्रकार कहलाते ? (मेरे ही कारण तो आपका इतना यश है)।

बोधसार

१ आस बस डोलत—आस=आशा। छन भंगुर=क्षण भर में नष्ट हो जानेवाला। फेन=झाग। फफोला=बुलबुला। करोर=करोड़, असंख्य। बटोर=इकट्ठा करके। तऊ=तो भी। पोर पोर=अंगुल अंगुल पर। पोला=खोखला। बिसराम=आराम, शान्ति। निकाम=व्यर्थ। निपट=बिलकुल।

जो केवल आशा के आधार पर ही हिलता डुलता है उसका विश्वास ही क्या ? इस मल-मांस के पिंड का बोलना केवल श्वास पर ही अवलंबित है। पद्माकर कहते हैं कि ज़रा विचार करें तो प्रतीत होता है कि यह उसी प्रकार क्षण भर में नष्ट हो जानेवाला है जैसे पानी की झाग का बुलबुला जो फूलता और तुरन्त फूट जाता है। असंख्य कर्मों और पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) को इकट्ठा करके यह बड़े यत्न से बनाया गया है लेकिन तो भी यह अंगुल अंगुल पर खोखला है। शांति और सुख

तो राम नाम को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। यह शरीर तो बिलकुल ही व्यर्थ और चमड़े का थैला मात्र है—इससे शांति और सुख की आशा छोड़ दो।

तृष्णा तरंग

१ एकन सों बैर करि—गाढ़ी = घनिष्ठ। चितचाही = अभिलाषित, मनचाही। मीची = मृत्यु। ठाढी है = खड़ी है। केते बाँध बांधत = कितने ठाठ जोड़ता है। बिसासिनि = विश्वास-घातिनि। बिलई = बिल्ली।

कुछ से शत्रुता करली है, कुछ से प्रेम का व्यवहार है कुछ से न घनिष्ठ प्रेम है न शत्रुता ही अर्थात् उदासीनता का वर्ताव है। पद्माकर कहते हैं तो भी मनचाही बात नहीं होने पाती, हाँ, अनचाही मृत्यु जरूर मुलाकात करने के लिए खड़ी दिखाई देती है। इतने पर भी होश में न आकर मनुष्य अनेक ठाठ जोड़ता है! दशा यह है कि दाँत हिलने लगे हैं और दाढ़ी सफेद होगई है। हृदय में विचार कर देखो कि भगवान् की भक्ति तो कहीं फूलती फलती नजर नहीं आती पर विश्वासघातिनी तृष्णा ही बिल्ली-सी बढ़ी हुई दिखाई देती है।

———

दीनदयाल गिरि

तत्वबोध

१ वचन तजै—बर=(बरु) चाहे । परिहर्यो=त्याग दिया । अवधेश=राजा दशरथ ।

सत्य-प्रतिज्ञ मनुष्य अपनी बात को नहीं छोड़ता चाहे उसे प्राण और देश दोनों ही क्यों न छोड़ने पड़े । अपनी बात रखने के लिए ही महाराज दशरथ ने अपने प्राण और अपने (प्यारे) पुत्र, श्रीरामचन्द्रजी, को छोड़ दिया था ।

२ जनम लियो—विषै=विषय भोग । पंगुल=लूला ।

जन्म लिया तो था ईश्वर भजन के लिए लेकिन उसे खो दिया विषयभोग में, जैसे गया तो था हाथी लेने पर उसे तो पा नहीं सका वरन् अपने आप भी लूला-अपाहिज होकर लौट आया ।

३ हिय में हरि—हेर्यो=खोज की । मृग=हरिण । मद= कस्तूरी ।

हृदय में ईश्वर की तलाश नहीं की, पर सारी दुनियाँ में उसके लिए भटकता रहा । जैसे मूर्ख हिरन कस्तूरी के लिए दुनियाँ भर में तो फिरता है पर यह नहीं जानता कि वह तो अपने ही उदर में है ।

४ चिद हरि—चिद=चैतन्य । लीला=क्रीड़ा । संदोह= समूह । परताप=प्रभाव । क्रिया करत=गतिवान होता है ।

यह जगत तो जड़ पदार्थों का समूह मात्र है, इसमें लीला करनेवाला चैतन्य तो हे भगवान् तू ही है। जैसे अचेतन लोहे में जो गति देखी जाती है वह चुंबक के ही प्रभाव के ही कारण है।

५ प्रभु प्रेरक—प्रेरक = प्रेरणा करने वाला। पट = परदा। वृंद = समूह। नागर = प्रवीण।

नटों के कर्तव्य में प्रवीण भगवान् ही विश्व में (होने वाले समस्त अभिनय) की प्रेरणा करता है। जैसे नट स्वयं परदे के पीछे रहकर नटी समूह को नचाता है।

६ एकै सबही में—बस्यो = व्याप्त होरहा। घट = घड़ा अथवा शरीर। मठ = मन्दिर। बूझयो = ज्ञात होता है। अकास = शून्य।

दुनियाँ के हरएक पदार्थ में एक वासुदेव (भगवान्) ही ही व्याप रहा है जैसे घड़े और मन्दिर दोनों के भीतर भी शून्य दिखाई देता है और बाहर भी शून्य ही है।

७ सबै काम—सुधरैं = ठीक ठीक हों। कृषी = खेती। घनश्याम = काले (बरसने वाले) बादल।

जब श्रीरामचन्द्र जी की कृपा होती है तभी सब काम ठीक ढंग से सम्पूर्ण होते हैं, जैसे किसान की खेती की पैदावार बरसने वाले काले बादलों की कृपा पर ही निर्भर रहती है।

८ जैसे जल लै—मालाकार=माली। जन = भक्त।

जिस प्रकार, माली जल ले लेकर बगीचे को सींचता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् कृष्ण अपने भक्त का परिपालन करते हैं।

९ सील सुमति—सील=शील । सुमति=सुबुद्धि । सरधा=(श्रद्धा) भक्ति । बुध=विद्वान् । सठ=दुष्ट । पिसाच=भूत ।

शील, सुबुद्धि और श्रद्धा के बिना दुष्ट लोग विद्वानों का सत्संग पाने पर भी सुधरते नहीं । जैसे भूत लोग रातदिन भगवान् शंकर की सेवा करके भी पिशाच ही बने रहते हैं, उनमें सज्जनता नहीं आती ।

१० साधु रहैं—सकल थल=सर्वत्र । बन बन=हर एक बन में । गिरि-गिरि=प्रत्येक पर्वत पर । मानिक=रत्न ।

जिस प्रकार चन्दन प्रत्येक बनमें नहीं पाया जाता, और न रत्नों की खानें ही प्रत्येक पर्वत में होती हैं । ऐसे ही कवियों का कहना है कि सज्जन लोग सब जगह नहीं रहते ।

दीन के मोती

१ रचैं सठहि—सठहि=दुष्ट को । बैन=वचन । अनूप=सुन्दर । भृंगी=एक प्रकार का कीड़ा जिसे बिलनी भी कहते हैं । इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि यह कीड़ों को पकड़ कर लेजाता है, और उन्हें मिट्टी से ढक देता है फिर उन पर बैठ कर और डंक मार कर इतनी देरतक और इतनी जोर से "भिन्न भिन्न" शब्द करता है कि वे भी इसी की तरह हो जाते हैं । कीट=कीड़ा । सैन=इशारे से ।

विद्वान लोग दुष्टों को भी अच्छी अच्छी बातें सुनाकर अपनी तरह बना लेते हैं । जैसे भृंगी (बिलनी) कीड़ों को (जिन्हें वह उठा कर अपने घर में ले आती है) इशारे से अपने जैसा

२ सठ सुधरैं—तैं=से। मलय=मलय पर्वत, जहाँ चन्दन पैदा होता है। कुमाखि=बुरे वृक्ष।

बहुत से बुद्धिमान यह बतला चुके हैं कि सत्संग से दुष्ट लोग भी सुधर जाते हैं। जैसे मलयाचल के संसर्ग से बुरे वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं बुरे वृक्षों में भी सुगंध आ जाती है।

३ भाग्य फलति है—फलति है=सफल होता है। बल बाँह=पुरुषार्थ। श्री=लक्ष्मी। हरि=विष्णु। हर=महादेव। नीरधि=समुद्र। गरल=विष।

प्रायः भाग्य ही सब जगह सफल होता है पुरुषार्थ और बुद्धिबल सब जगह सफल नहीं होते। देखो न, एक ही समुद्र में से तो विष्णुभगवान को लक्ष्मी मिली और शिवजी को विष मिला।

४ विश्वासी के—विश्वासी=विश्वास करनेवाले को। निपुनता=चतुराई। सूरता=बहादुरी। तासु=उसकी। हनि=मारकर

जो अपने ऊपर विश्वास करता हो उसे धोखा देने में कोई चतुराई नहीं है। जो अपनी गोद में सिर रख कर सो रहा हो उसे मार डालने में भी कौन सी बहादुरी है?

५ लखियत कोई—काक तालिका न्याय=संयोगवश होने वाली बात को काकतालीय न्याय का नाम दिया जाता है।

देखते हैं कि कोई कोई वस्तु संसार में बिना इच्छा के ही अचानक काकतालीय न्याय से मिल जाती है, भाग्य की गति सचमुच बड़ी आश्चर्यकारी है।

६ निरबल जुगल—जुगल=दो। अंध=अंधे। पंगु=लूला। दो निर्बलों के परस्पर सहयोग से मुश्किल काम भी पूरा हो

जाता है। जैसे अंधे के कंधे पर बैठ करके लूला आदमी भी वृक्ष से फल तोड़कर खा सकता है।

७ गहैं दीन—दीन = गरीब । गरबी = गर्वीला। गुन पूर = सम्पूर्ण गुणों से युक्त। कुसुम = फूल। धतूर = धतूरा।

भगवान तो गरीब को ही सहारा देते हैं चाहे वह गर्वीला गुणहीन ही क्यों न हो। सम्पूर्ण गुणों से युक्त होने पर उनका सहारा नहीं पा सकता। इसलिए तो केतकी के (सुगन्धित) फूलों को छोड़कर भगवान् शंकर धतूरे को अपने सिर पर धारण करते हैं।

८ काचे घट में—काचे = कच्चे। घट = घड़ा। स्रवित होत = झरता है। घटाय = कम हो जाता है।

कच्चे घड़े में से जैसे पानी झर जाता है, उसी तरह याचक की कुलीनता, उसका शील, उसके गुण और उसकी विद्या, मँगतेपन के कारण, कम हो जाती है।

९ जो मन—मनप्रिय = मन को पसंद। विहीन = रहित। जतन सों = युक्ति पूर्वक। पन्नग = सर्प। भूषण = अलंकार।

जो मन को पसंद हो वही अच्छा लगता है चाहे उसमें रूप और गुण कुछ भी न हों। तभी तो शिवजी ने रत्नों की कुछ भी परवाह न करके सर्पों को युक्तिपूर्वक अपना अलंकार बनाया है।

१० पराधीन दुख—पराधीनता = परतन्त्रता। बन विषै = बन के बीच। कनक पींजरे = सोने के पिंजरे में। सुक = तोता।

दुनियाँ में स्वाधीन रहने में ही सुख है, परतन्त्रता तो सबसे बड़ा दुख है। बन में स्वच्छन्दता-पूर्वक घूमने में ही तोता सुखी है, सोने के पिंजरे में बंद होने में नहीं।

११ धनी सुखी—तोष = संतोष। तुष्ट = तृप्त। निधन = ग़रीब।

संतोष के बिना धनवान् भी सुखी नहीं होता। लेकिन जो संतुष्ट है वह ग़रीब भी सुखी है। देखो सुख के लिए राजा प्रयत्न करते-करते पच मरते हैं लेकिन ऋषि लोगों का मन महान आनन्द से पूर्ण रहता है।

१२ जग दुख को—दारन = दलन, नष्ट। लहि = पाकर। जड़ीबल = औषधि की शक्ति। नकुल = न्योला। नासै = नाश करे। भीम = भारी। भुजंग = सर्प। साधक = तपस्वी।

तपस्वी सत्संग प्राप्त करके संसार के दुखों का नाश करते हैं। जैसे न्योला ओषधि का बल पाकर बड़े भारी सर्प को मारने में समर्थ होता है।

१३ भाषत धीर—धीर = धैर्यवान। छनक = एक क्षण भी। इतवार = विश्वास। तीर = तट। बार = देर।

धीर (बुद्धिमान) लोग कहते हैं कि शरीर का ज़रा देर के लिए भी विश्वास नहीं। यह तो नदी तट के वृक्ष की तरह है जिसके गिरने में देर नहीं लगती।

१४ चलिबो है—चेते = होश में आये। समाज = झुंड। पथिक = बटोही। सयन = शयन, आराम।

दुनियाँ होश में नहीं आती, झुण्ड को देखकर भूल गई है कि उसे भी कहीं (परलोक) जाना है। यह तो वैसा ही हुआ जैसे बटोही सराय में पहुँचकर आराम करने के साज सजाने लगे।

१५पुलकित होहिं—पुलकित = प्रसन्न, गद्‌गद्। बुध = विद्वान। अजान = मूर्ख। मयूख = किरण। द्रवै = पिघले। पखान = पत्थर।

विद्वानों की उक्तियाँ सुनकर चतुर लोग ही प्रसन्न होते हैं, मूर्ख

लोग नहीं। चन्द्रमा की किरणों से चन्द्रमणि ही द्रवित होती है, कठोर पत्थर नहीं पिघलता।

१६ सरल सरल—सरल = सीधा। बंक = टेढ़ा। सर = बाण। कुटिल = टेढ़ा। निसंक = बिना विचार के।

सीधे का सीधे से ही प्रेम हो सकता है। टेढ़े और सीधे का आपस में प्रेम नहीं होता। जैसे सीधे तीर को टेढ़ा धनुष बिना विचार के दूर फेंक देता हैं।

१७ नेह सारखी—सारखी = समान। रजु = रस्सी। वारिज = कमल। बंध्यो = बन्द हुआ। मिलिन्द = भौंरा। दार = लकड़ी, काठ। बिदारनहार = बींधने वाला।

काठ में छेद करने वाले भौंरे को कमल में बंद होते देखकर कवि विचार करता है कि प्रेम के समान और कोई रस्सी नहीं है।

१८ मलिन पिता—विमल = स्वच्छ। सन्देह = संशय। पंक = कीचड़। पद्म = कमल। पावन परमा = (परमा पावन) परम+अपावन, अत्यन्त घिनौना (अपवित्र)। गेह = गृह कोष।

घिनौने बाप के साफ़-सुथरा बेटा होता है इसमें संशय नहीं; जैसे अत्यन्त अपवित्र कीचड़ के कोष से कमल पैदा होता है

प्रेम

१ रसना अहिकी—रसना = जीभ। अहि = साँप। गहिबो = पकड़ना। सुगमै = सरल। वन कंटक = कँटीले जंगल में। गौन = गमन। उबाहनो = नंगे पैर (बिना जूते के)। भिरिबो = भिड़ना। तिरिबो = अवगाहन करना। बड़वागि = बड़वाग्नि। हित = प्रेम। महामृदु = अत्यन्त सुकुमार।

साँप की जीभ को पकड़ना आसान हो सकता है। काँटेदार वन में बिना जूते के (नंगे पैर) जाना भी हो सकता है। पर्वत पर से गिरना और हाथी से द्वन्द युद्ध करना तथा समुद्र की आग में तैरना भी संभव हो सकता है। युद्ध में जो अकेला अनेकों से लड़े उसकी भी शूरता की सराहना न करें तो कोई हर्ज नहीं। 'दीनदयाल' कहते हैं कि प्रेम यद्यपि परम सुकुमार है तोभी उसका अन्त तक निर्वाह करना बड़ा कठिन है।

२ पछलत्त तुरीन—पछलत्त = दुलत्ती। तुरीनके = घोड़ों की। नाहर = सिंह। हठि = बलपूर्वक। विषनीर = विषैले घोल। चढ़ि = (मढ़ि ?) लपेट कर। चीर = वस्त्र। मरु-कूप = बालू का कूआँ। वरु = चाहे। मीच = मृत्यु। बिसाहनो = खरीदना।

घोड़ों की दुलत्तियाँ सहना सुगम है, शेर का पंजा भी बलपूर्वक पकड़ा जा सकता है, धैर्यवान् विष के घोल की यातना को भी सह सकता है, शरीर को वस्त्र में लपेट कर जलाया भी जा सकता है, यदि बालू के कुए में फँसकर मृत्यु से वैर मोल लेना पड़े तो वह भी सरल है। दीनदयाल कहते हैं यद्यपि प्रेम बहुत कोमल है तोभी उसका अन्त तक निवाहना बहुत कठिन है।

———

महाराज रघुराजसिंह

प्रतिज्ञाभंग

१ अर्जुन थाक्यो—समर = युद्ध। मझारी = में। विशिख = वाण शरपंजर = वाणों का जाल। विक्रम = वीरता। पारथ = अर्जुन। उघारी = खोल। पूरब केरी = पहले की। बदन = मुख। उचारी = कही थी। उपज्यो मन = मनमें प्रतीत हुआ। लचारी = विवशता। अधार = सहारा।

युद्ध में अर्जुन थक गया। हाथ में धनुष-वाण लेते नहीं बनता, अतिशय परिश्रम के कारण मुँह सूख गया। भीष्म पितामह के शरजाल में पड़कर वह अपनी बहादुरी को भूल गया। हृदय में हार स्वीकार करके वह अपने रथ पर चुपचाप बैठ गया। उसके मुँह से बात नहीं निकलती, शरीर काँप रहा है, यहाँ तक कि आँखें खोलना भी कठिन मालूम होता है। पहले जो प्रतिज्ञा उसने अपने मुख से की थी वह उसे एकदम भूल गया। हर प्रकार की विवशता सामने आ गई और उसे प्रतीत होने लगा कि विजय प्राप्ति बहुत कठिन है। कवि कहता है कि अन्त में वह सोचने लगा कि अब तो एक मात्र भगवान का ही सहारा है।

२. भीषम शर—छन छन=प्रतिक्षण। मूँदे = ढक दिये। तुरङ्ग = घोड़े। ताजन = चाबुक। बाजिन = घोड़ों के। तन = शरीर। बेग = गति। वाग = घोड़ों की रास। कपि-ध्वज = हनुमान के चिह्न वाली ध्वजा। चक्र = पहिया। घात = चोट। न बसात = वश नहीं चलता।

भीष्म के वाण पल-पल पर भयंकर रूप धारण करते जाते हैं। अर्जुन अपने सारथी कृष्ण तथा रथ समेत उस वाण-वर्षा में

छिप गये हैं यहाँ तक कि घोड़े भी दिखाई नहीं पड़ते। श्रीकृष्ण बार बार रथ को दबाते हैं तो भी मानों (बाणों की मार के सामने वह ठहर नहीं पाता) उड़ा-सा जा रहा है। घोड़ों के शरीर पर चाबुक पड़ते हैं, लेकिन उनमें गति आती ही नहीं। श्रीकृष्ण के हाथ से घोड़ों की रास भी छूट गई है और उनके रथ पर बन्दर के चिह्नवाली ध्वजा भी नहीं फहराती है। हृदय में बाणों की चोट लगने से दोनों ही चक्र-रक्षक मूर्छित होकर गिर पड़े हैं। श्रीकृष्ण से भी कुछ उपाय करते नहीं बनता है। यह देख कर सब कौरव (शत्रु-पक्ष के लोग) हँसते हैं। लेकिन कवि कहता है कि भगवान् की यह लीला है अपने भक्त (भीष्म) की प्रतिज्ञा पूरी कराने के लिए ही है वे ऐसा दिखाते हैं, मानों उनका कोई वश नहीं चलता।

३. हरि हरबरे—हरबरे = शीघ्रता की। दल = सेना। देवव्रत = भीष्म। द्रुतहिं = सवेग। भोगि = सर्प। ऊरध = ऊँचा। सुदर्शन = सुदर्शनचक्र। मंजुल = सुन्दर। पानि = हाथ। सनाल = डंडी सहित। सरोज = कमल। रवि = सूर्य। मंजीर = घुँघरू। पीतपट = पीताम्बर। रजरंजित = धूल से सनी हुई। रुचिर = सुन्दर। अलक = बालों की लट। बिथुरानि = बिखरी। छोनि = पृथ्वी। लौं = तक। छोर = सिरा। छहरत = लटक रहा है। युगल = दोनों। महि = पृथ्वी। भूरि = समस्त, अत्यन्त। बानि = शब्द। नेसुक = थोड़े। अरुण = लाल। राजत = सुशोभित होते हैं। मृगराज = सिंह। अमरष = (अमर्ष) क्रोध। बानि = प्रतिज्ञा। मति गति = बुद्धि की चैतन्यता।

अन्त में ठीक मौका देख कर और अपनी सेना को समाप्त होता समझ कर श्रीकृष्ण ने एक दम अर्जुन का रथ छोड़ दिया।

भीष्म के ऊपर उनके सवेग दौड़ने की शोभा अवर्णनीय है। सर्प के फन के समान तथा सुन्दरता की खान उनकी भुजा ऊपर को उठी थी। सुन्दर हाथ में अत्यन्त प्रकाशमान सुदर्शन-चक्र शोभित था। ऐसा मालूम पड़ता था मानों नालयुक्त कमल के ऊपर सूर्य ने आसन जमाया हो। पैरों में घुँघुरू बज रहे थे और प्यारा पीताम्बर हवा में लहरा रहा था। युद्धस्थल की धूलि से कुछ कुछ धूसरित बालों की लटें मुँह पर बिखरी हुई थीं। पृथ्वी तक फैले हुए पीताम्बर को दोनों बाँहों से समेटते जाते थे। ऐसा मालूम पड़ता था मानों भगवान कृष्ण पृथ्वी के ग्लानि-रूप बोझ को दूर करने जा रहे हों। यह देख कर दोनों दलों से 'भीष्म मरे' 'भीष्म मरे' का शोर हो पड़ा। सब लोग चकित हो गये। सब योद्धा अपना अपना धनुष तान कर रह गये; कोई बाण नहीं छोड़ता। कृष्ण की आँखें (क्रोध से) कुछ कुछ लाल हो गई थीं। मन्द गति से बढ़ते हुए वे कुपित सिंह की भाँति दिखाई पड़ने लगे जो हाथी के ऊपर आक्रमण कर रहा हो। भगवान कृष्ण के अतिरिक्त और कौन इतना दयावान है जो अपने भक्त की ख़ातिर अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दे। (भगवान कृष्ण की यह प्रतिज्ञा थी कि वे महाभारत के युद्ध में अस्त्र धारण न करेंगे, और भीष्म ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे एक बार भगवान को ज़रूर अस्त्र धारण करवा देंगे।) कवि कहता है उन्हीं यदुराज कृष्ण पर मेरी मति-गति बार-बार बिकी जा रही है, न्यौछावर हुई जा रही है।

———

हरिश्चन्द्र

गंगा वर्णन

नव उज्ज्वल—नव = नया, ताजा। उज्ज्वल = निर्मल। जलधार = जल की धारा। हार हीरक सी = हीरे के हार के समान। सोहति = शोभित होती है। छहरति = उछलती है। मुक्ता = मोती। पोहति = पिरोती है। लोल = चंचल। लहि = लेकर। पवन = हवा। इमि = इस प्रकार। मनोरथ = संकल्प, मनसूबा।

ताजे और निर्मल जल की धारा हीरों के हार के समान प्रतीत होती है। उस धारा के बीच में जो बूँदे उछलती हैं वे ही मानों हीरों के बीच में मणियाँ और मोती पिरोये जा रहे हैं। चंचल लहरें हवा पाकर एक पर दूसरी इस प्रकार आती (और नष्ट होती) हैं जैसे मनुष्य अपने मन में अनेक संकल्प करते और मिटाते हैं।

सुभग स्वर्ग—सुभग = सुन्दर। सोपान = सीढ़ी। सरिस = समान। मज्जन = स्नान। पान = पीना। त्रिविधभय = तीनों प्रकार के भय (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) हरिपद = विष्णु का चरण। चन्द्रकान्त = एक मणि, जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि वह चन्द्रमा के सामने रखने से पसीजती है, और उसमें से बूँद-बूँद पानी टपकता है। द्रवित = वहा हुआ। सुधारस = अमृत। ब्रह्म-कमण्डल-मण्डन = ब्रह्मा के कमंडलु को सुशोभित करने वाली। भव-खण्डन = संसार के बन्धन काटने वाली। सुर-सरबस = देवताओं का सर्वस्व।

स्वर्ग की सुन्दर सीढ़ी के समान सब के मन को भाती है। दर्शन, स्नान और जलपान करने से तीनों भयों को दूर कर देती है। यह विष्णु के चरण के नखरूपी चन्द्रकान्त मणि से वही हुई

अमृत की धारा है*। ब्रह्मा के कमंडलु को शोभित करने वाली* संसार के बन्धनों को काटने वाली और देवताओं का सर्वस्व है।

शिव सिर—मालतीमाल = मालती के फूलों की माला (मालती एक बेल का नाम है जिसका फूल सफेद होता है)। भगीरथ नृपति पुण्य फल = भगीरथ राजा के पुण्य (तप) का फल। ऐरावत गज = ऐरावत हाथी (ऐरावत इन्द्र के हाथी का नाम है जिसका रंग सफेद है)। गिरिपति = पर्वतों का राजा। हिमनग = हिमालय। कल = सुन्दर। कंठहार = गले की माला। सगरसुवन = सगर राजा के पुत्र (ये संख्या में साठ हज़ार कहे जाते हैं)। सठ सहस = साठ हज़ार। परस = स्पर्श, छूना। उधारण = उद्धार करने वाली, तारने वाली। धरि = धारण करके। सागरसंचारण = समुद्र की ओर जाने वाली।

शिवजी के सिर पर मालती की माला के समान शोभा देती है† भगीरथ राजा के तप का फल है†, और ऐरावत हाथी के समान शुभ्र और पर्वतराज हिमालय के गले का सुन्दर हार है। (गङ्गा हिमालय पर्वत पर चक्कर लगाती हुई आती है इस लिए हार के समान ही प्रतीत होती है)। सागर के साठ हज़ार पुत्रों को जल के स्पर्शमात्र से तारने वाली† है और अगणित धाराओं का रूप धारण करके समुद्र की ओर जाती है।

---

*(वामनावतार में विष्णु भगवान् का एक पैर ऊपर के सातों लोकों को मापता हुआ जब ब्रह्मलोक में पहुँचा तब ब्रह्मा जी ने उसको धोकर चरणामृत अपने कमंडलु में रख लिया। इसी चरणामृत से पीछे गंगा का उद्गम हुआ)।

† त्रेता युग में सूर्यवंशियों में राजा सगर एक प्रसिद्ध राजा हुआ है। इसकी दो रानियाँ थीं। पहली से असमंजस नाम का एक पुत्र

काशी कँह०—कहूँ = को। ललकि = ललक कर, उत्कण्ठा से। भेंट्यो = मिली। धाई = दौड़कर। अंकम = अंकमें, गोदी में। छतरी = साधु महात्माओं की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ छज्जेदार मण्डप। मढ़ी = छोटा देवालय। जोहत = देखते ही।

था, दूसरी से साठ हज़ार पुत्र हुए। एक बार सगर ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। ईर्ष्यावश इन्द्र ने यज्ञ का घोड़ा चुरा कर पाताल में जाकर कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। जब सगर के साठ हज़ार पुत्र घोड़े को ढूँढते हुए वहाँ पहुँचे तब उन्होंने घोड़ा वहाँ देखकर मुनि का अपमान किया। जिस पर क्रुद्ध होकर मुनि ने शाप द्वारा उन को भस्म कर दिया। उसके बाद सगर का पोता (असमंजस का पुत्र) अंशुमान उन्हें ढूँढता हुआ वहाँ पहुँचा। अपने चचाओं की यह दुर्दशा देखकर वह बड़ा दुखी हुआ, और उनकी मुक्ति के लिए गरुड़ की अनुमति से उसने गंगा की धारा को पृथ्वी पर लाने के लिए तप प्रारम्भ किया परन्तु सफल नहीं हुआ। तब उसके पुत्र दिलीप ने पिता का अनुकरण किया पर वह भी गंगा को पृथिवी पर न ला सका। उसके बाद दिलीप के पुत्र भगीरथ ने गोकरण तीर्थ पर घोर तपस्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और उसने 'गंगा' तथा अपने लिए पुत्र माँगा। ब्रह्मा जी ने स्वीकृति दे दी पर प्रश्न यह था कि गंगा के प्रबल प्रवाह को पृथिवी पर कौन सँभालेगा। इस लिए भगीरथ ने पुनः तप करके महादेवजी को इस काम के लिए प्रसन्न किया। ब्रह्मा के कमण्डलु से निकल कर गंगा बहुत दिन तक शिवजी के जटाजूट में घूमती रहीं। इसी के आधार पर 'भगीरथ नृपति पुन्यफल' और 'शिव सिर मालती माल' कहा गया है। वहाँ से गंगा जी हिमालय पर आई और वहाँ से भगीरथ उन्हें भूलोक पर लाया। उसी गंगा की धार के स्पर्श से ही भगीरथ के पूर्वजों (सगर के ६० हज़ार पुत्रों) का उद्धार हुआ।

काशी को प्रिय जानकर बड़ी उत्कण्ठा से दौड़कर मिली है, कभी उसे स्वप्न में भी नहीं छोड़ा, सदा गोदी में ही लिपटी रही है। कहीं किनारे पर बँधे हुए नये घाट ऊँचे पहाड़ के समान सोहते हैं, कहीं छज्जेदार मण्डप और कहीं छोटे छोटे देवालय बने हुए हैं जो कि देखते ही मन को मोह लेते हैं।

धवल धाम—धवल = शुभ्र, सफेद। धाम = घर, मन्दिर। फरहरत = फहराती हैं। धुजा = लम्बा झण्डा जो मन्दिर आदि के ऊपर लगाया जाता है। पताका = झण्डियाँ। घहरत = गम्भीर शब्द करते हुए। धुनि = ध्वनि, शब्द। धमकत = धमाके का शब्द करता है, ज़ोर से शब्द करता है। धौंसा = नगाड़ा। साका करि = रोब से, ज़ोर से। मधुरी = एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूक कर बजाया जाता है। नौबत = नक्कारा। अथवा मधुरी नौबत का अर्थ मधुर नौबत भी किया जा सकता है।

चारों ओर सफेद मकान हैं जिन पर झण्डे और झण्डियाँ फहराती हैं। घंटे की ध्वनि गम्भीर शब्द कर रही है और नगाड़े बड़े ज़ोर से बज रहे हैं। कहीं मधुरी और नौबत बज रहे हैं (अथवा मधुर स्वर से नौबत बज रहे हैं)। कहीं स्त्री पुरुष गा रहे हैं, कहीं ब्राह्मण वेद पढ़ रहे हैं और कहीं योगी जन ध्यान लगा रहे हैं।

कहुँ सुन्दरी—नहात = नहाती हुई। नीर = जल, पानी। कर जुगल = दोनों हाथों से। उछारत = उछालती हैं। जुग = युग, दो। अम्बुज = कमल। मुक्तगुच्छ = मोतियों के गुच्छे। सुच्छ = स्वच्छ। निकारत = निकालते हैं। बदन = मुख। करन = हाथों से। बारिधि = समुद्र। नाते = नाते से, सम्बन्ध से। ससि कलंक = चन्द्रमा का कलंक।

कहीं सुन्दरियाँ नहाती हुई दोनों हाथों से जल उछाल रही हैं मानों दो कमल मिलकर स्वच्छ मोतियों के गुच्छे निकाल रहे हैं। कहीं हाथों से मुँह धोतीं हुई स्त्रियाँ शोभा पा रही हैं। मानों समुद्र के नाते से कमल चन्द्र का कलंक मिटा रहा है। यद्यपि कमल और चन्द्र का विरोध है (चन्द्र के उदय होने पर कमल बंद हो जाते हैं) तो भी कमल जल में उत्पन्न होता है और चन्द्र भी समुद्र जल से उत्पन्न हुआ है इसलिए दोनों भाई हुए। सुन्दरियाँ हाथों से मुख धो रही हैं मानों हाथ-रूपी कमल मुखरूपी चन्द्र का कलंक मिटा रहे हैं।

सुन्दरि ससि मुख—नीर = जल। इमि = इस प्रकार। बेलि = बेल। लहलही = हरी भरी। कुसुमन = फूलों से। दीठि = दृष्टि। तितही = वहीं। ठहराई रहत = ठहरी रहती है, रुक जाती है।

सुन्दरियाँ अपने शशिमुख से जल के बीच इस प्रकार सोहती हैं जैसे हरी-भरी कमल की बेल नये पुष्पों से सब के मन को मोह लेते हैं। दृष्टि जहाँ जाती है वहीं अटक जाती है, हरिश्चन्द्र कहते हैं कि गंगा की छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता।

कालिन्दी-सुषमा

१ **तरनि तनूजा तट तमाल**—तरनि तनूजा = (तरनि) सूर्य की (तनूजा) लड़की, जमुना। तमाल = एक प्रकार का पेड़ जिसकी लकड़ी काले रंग की होती है। कूल = किनारा। मुकुर = दर्पण। लखत = देखते हैं। प्रणवत = प्रणाम करते हैं। पावन = पवित्र। आतप = धूप। बारन = हटाने को, बचाने को। सिमिटि = सिमिट कर, इकट्ठे होकर। नै = झुके। निरखि = देखकर।

यमुना के किनारे बहुत से तमाल के सुन्दर पेड़ छाये हुए हैं।

वे किनारे पर झुके हुए शोभा पा रहे हैं, मानों जल को छूने के लिए ही वे इस प्रकार झुके हुए हैं, या उझक कर (देखने के लिए सिर आगे बढ़ाकर और झुककर) दर्पण में सब अपनी अपनी शोभा देख रहे हैं, या जल को बहुत पवित्र समझ कर फल पाने के लोभ से उसको प्रणाम कर रहे हैं। या किनारे की धूप को दूर करने के लिए सब इकट्ठे होकर छाये रहते हैं, या भगवान की सेवा के लिए झुके हुए हैं। उनको देखकर आँखें और मन सुख प्राप्त करते हैं।

२ कहूँ तीर पर कमल—अमल = स्वच्छ। सैवालन = काई। दृग = आँखें। निरखत = देखती हैं। गोभा = कोंपल। टेरत = बुलाती हुई। उपचार = पूजा का सामान (धूप दीप नैवेद्य आदि)।

कहीं किनारे पर बहुत प्रकार के सुंदर कमल शोभित होरहे हैं, कहीं काई के बीच में कुमुदिनी की पंक्तियाँ लग रही हैं सो ऐसा मालूम पड़ता है, मानों यमुना अनेक आँखें धारण करके अपनी शोभा देख रही है; या प्रियतम और प्रिया के प्रेम की अनगिनत कोंपलें फूट रही हैं; या अपने बहुत से हाथ बनाकर अपने प्रियतम को अपने पास बुलाती हुई वह शोभा पारही है; या पूजा का सामान (धूप दीप नैवेद्य आदि) लेकर प्रिय-मिलन के लिए जाती हुई मन को मोह रही है।

३ कै पियपद उपमान—उपमान = जिससे उपमा दी जाय (प्रायः चरणों की कमल से उपमा दी जाती है। भृंग = भौंरा। झलकता = दिखाती है। झाँई = परछाईं। भाइँ = प्रकार। बगरे = बिखरे, फैले। सतधा = सैकड़ों धाराओं में।

या इनको (कमलों को) प्यारे के चरणों का उपमान समझ कर अपने हृदय में धारण करती है, या (उन पर मंडराते हुए)

भौंरों के बहाने अनेक मुख बनाकर स्तुति गान कर रही है (भौंरे जो गुनगुना रहे हैं वही मानों स्तुति गान है) या व्रज की स्त्रियों के मुखरूपी कमल की परछाईं दिखाई देती है; या व्रज के भगवान (कृष्ण भी विष्णु भगवान के अवतार माने जाते हैं) के पैरों को छूने के लिए लक्ष्मी बहुत प्रकार से शोभित हो रही है; (कुमुदिनी सफेद होती और कमल लाल ऐसे ही सतोगुण का रंग सफेद तथा अनुराग या प्रेम का रंग लाल माना जाता है। सो इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि) या सात्विकता और प्रेम व्रजमंडल में बिखरे पड़े हैं, या उसे (व्रज को) लक्ष्मी का घर समझ कर इसीकारण (जमुना) सैंकड़ों धाराओं में अपने जल को धारण करती है।

४ तिन पै जेहि छिन—राका = पूर्णमासी। अवनि = पृथ्वी। मुकुर = दर्पण। ओभा = आभा, कान्ति। जुड़ात = तृप्त होते हैं।

उन (कुमुदिनियों) पर जिस समय पूर्णमासी की रात की चन्द्रमा की चाँदनी छाती है, तब वह चाँदनी जल में मिलकर आकाश से पृथ्वी तक एक ताना तान देती है। तब सारी यमुना दर्पणमय हो जाती है और एक अत्यंत उज्ज्वल कान्ति फैल जाती है। उस सुन्दर शोभा को देखकर शरीर मन और नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं। वह कौन कवि है जो उस समय के जमुना के जल की शोभा का बखान कर सके। उस समय यमुना किनारे की शोभा आकाश से पृथ्वी तक एक सी छायी रहती है।

५ परत चन्द्र प्रतिबिम्ब—प्रतिबिम्ब = परछाहीं। लोल = चंचल। लहि = पाकर। रासरमन = रास-लीला। उर = हृदय।

कहीं चन्द्र की परछाहीं जल के बीच में पड़ती हुई चमक रही है। कभी चंचल लहर पाकर चन्द्र का प्रतिबिम्ब नाचता-सा है, जो मन को बड़ा अच्छा प्रतीत होता है (जब जल में लहर उठ

रही हो तो चाँद की परछाहीं नाचती सी मालूम पड़ती है)। (कृष्ण भगवान् यमुना के बीच में स्नान करते थे, कालिय-मर्दन के समय यमुना के बीच में रहे थे, अथवा यमुना के किनारे खेलते थे) सो मानों चन्द्रमा कृष्णजी के दर्शन के लिए जल में वास कर रहा है। या तरङ्गों का दर्पण लेकर अपनी सुन्दर छवि फैला रहा है। या रास-रमन (रास-लीला) में कृष्ण के मुकुट की शोभा जल में दिखाई देती है। या जल के बीच में जो भगवान की मूर्त्ति है, उसका ही प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

६ कबहुँ होत सतचंद—गवन = चलना। बालगुड़ी = छोटी पतंग। नभ = आकाश। धावती = दौड़ती हुई। अवगाहत = नहाती।

कभी एक चाँद के सैकड़ों चाँद हो जाते हैं, कभी वह प्रगट हो जाता है और कभी छिप कर भाग जाता है। इस तरह वायु के चलने के कारण परछाहीं के रूप में जल में चन्द्रमा बहुत प्रकार से शोभित होता है। ऐसा मालूम होता है मानों प्रेमवश चन्द्रमा यमुना के जल में लोटता फिरता है, या तरंग रूप की डोर से हिंडोलों पर कलोल कर रहा है। अथवा कोई छोटी गुड्डी आकाश में उड़ती हुई इधर उधर दौड़ रही है (जिसकी परछाहीं जल में पड़ रही हैं) या यमुना के जल में कोई व्रज की गोपी नहाती फिरती आ रही है।

७ कूजत कहुँ कल हंस—मज्जत = नहाता है। पारावत = कबूतर। कारण्डव = एक प्रकार की बत्तख। बक = बगुला। सुक = तोता। पिक = कोयल। भ्रमरावलि = भौंरों का समूह। रोर = शोर।

कहीं सुन्दर हंस आवाज़ कर रहे हैं, कहीं कबूतर नहा रहे हैं। कहीं बत्तखें उड़ रही हैं, कहीं जल की मुर्गियाँ दौड़ रही हैं। कहीं चकवे बैठे हैं; कहीं बगुले (मछलियों के लिए) ध्यान लगाते

हैं, कहीं कोयल और तोते पानी पीते हैं, कहीं भौंरे गूँज रहे हैं, कहीं किनारे पर बहुत से मोर नाच रहे हैं, कहीं नाना तरह के पक्षी शोर कर रहे हैं और सुख-पूर्वक जल पीकर तथा नहाकर किनारे की शोभा को दिल में धरते हैं। मूल पुस्तक में "जलयान न्हान करि" के स्थान पर "जलपान न्हान करि" पाठ चाहिए।

८ कहुँ वालुका विमल—वालुका=रेत। रजत=चाँदी। पाँवड़े=वह कपड़ा या चादर जो आदर के लिए किसी के मार्ग में बिछाई जाती है। कूल=किनारा। बगराये=बिखरे। चिकुरन=बाल।

कहीं बहुतसी साफ और कोमल रेत छाई हुई सफेद कान्ति-युक्त चमक रही है मानों वह चाँदी की सुंदर सीढ़ी शोभित हो रही हो, या मानों प्रिय के आगमन के लिए सफेद चादर बिछाई गई हो, अथवा मानों रत्नों की राशि को चूर करके किनारे पर बिखेर दिया गया हो। या मानों पानी (यमुना का जल काला माना जाता है) रूपी काले बालों को छूकर सफेद मोतियों की भरी हुई माँग शोभित हो रही है, या किनारे पर ब्रज का निवास देखकर हृदय में प्रसन्न हो कर सतोगुन छाया हुआ हो (इसका रंग सफेद माना जाता है)

देशभक्त के आँसू

१. रोवहु सब मिलि के—हे भारतीय भाइयो, आओ, सब मिल कर रोयें। हाय! हाय! अब भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती। सब से (सब देशों से) पहले जिसको ईश्वर ने धन और बल दिया था, सब से पहले (जिस समय कि सब देश जंगली थे) विधाता ने जिसे सभ्य बनाया था, सब से पहले जो रूप

रंग तथा रस से युक्त हुआ, और सबसे पहले जिसने अपनी विद्या का फल पा लिया था, अब वही भारत सब के पीछे दिखाई देता है, हाय, हाय, भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

२. जहँ भये शाक्य—जहाँ शाक्य (गौतम बुद्ध) हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति* रामचन्द्र, युधिष्ठिर, वासुदेव (कृष्ण) तथा शर्याति (मनु महाराज के पुत्र का नाम था) हुए, जहाँ भीम, कर्ण और अर्जुन की वीरता दिखाई देती थी, वहाँ अब मूढ़ता, लड़ाई झगड़ा और अविद्यारूपी रात फैली हुई है। अब जहाँ देखो वहाँ दुःख ही दुःख दिखाई देता है, हाय ! हाय ! भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

३. लरि वैदिक जैन—वैदिक मतावलम्बियों और जैनियों ने लड़ कर सब पुस्तकें नष्ट कर दीं। फिर (परस्पर) लड़ाई झगड़ा करके यवनों की भारी सेना को (कन्नौज के राजा जयचन्द ने) बुलाया। उस सेना ने बहुत बार हमारी बुद्धि, बल, धन, और विद्या को नष्ट किया। जिससे आलस्य, मूढ़ता और पारस्परिक झगड़े की अँधियारी छा गई है। अब तो सब अन्धे लंगड़े हो गये हैं और दीन-हीन होकर रोते हैं, हाय ! हाय ! भारत की दुर्दशा नहीं देखी जाती।

---

*राजा नहुष अयोध्या के इक्ष्वाकु वंश का बड़ा प्रतापी राजा था, इसने अपने प्रताप से इन्द्रपद पाया था। इसकी कहानी ४५ पृष्ठ पर देखिये। नहुष के पुत्र का नाम ययाति था यह भी पिता जैसा पराक्रमी था, इसका विवाह शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से हुआ था। इसके चार पुत्र थे, जिन में यदु और पुरु प्रसिद्ध हैं, जिनके नाम से यादव और पौरव वंश प्रारम्भ हुए।

४. अंगरेज राज—अंगरेजों के राज्य में सब तरह के सुख के सामान मौजूद हैं, परन्तु सब धन विदेश में चला जाता है, यही सबसे बड़ी ख्वारी (खराबी, बरबादी) है। हाय ! उस पर भी महँगी, अकाल और बीमारी फैलाकर परमात्मा दिन दिन दूना दुख दे रहे हैं। और इन सब के भी ऊपर टैक्स की आफत आई है, हाय ! हाय ! भारत की दुर्दशा देखी नहीं जाती।

कोमल-भावना

रहें क्यों—इनारूनि = इन्द्रायण फल, यह मुलतान, डेरागाजीखां और सिंध में बहुत ज्यादा होता है। इसका रंग बड़ा सुंदर पीला और लाल होता है, पर खाने में कड़वा और विषैला होता है।

एक म्यान में दो तलवार कैसे रह सकती हैं ? जिन नयनों में हरि-रस छाया हुआ है, उन्हें दूसरा कैसे पसन्द आ सकता है ? जिस शरीर और मन में मनमोहन कृष्ण रम रहे हैं वहाँ ज्ञान किस तरह आ सकता है ? चाहे जितनी भी बातें बनाओ यहाँ कौन है जो विश्वास कर सके ? अमृत चखकर अब इनारुनों को देख कर कौन ऐसा मूर्ख है जो भूल जाय ? हरिश्चन्द्र कहते हैं ब्रज तो केले के पेड़ के जंगल के समान है, जो इसको काटो तभी फिर फलेगा (फलियाँ तोड़ लेने के बाद केले का पेड़ काट दिया जाता है, तब वह फिर बढ़ता है, और फिर उसमें फल लगते हैं)

निराशा

१. सब भांति—इस भारत से दैव सब प्रकार से प्रतिकूल हो गया है, अब इसका नाश अवश्य होगा। हे वीरवर, अब भारत की सब आशा छोड़ दो। अब यहाँ सुख-रूपी सूरज का उदय नहीं

होगा। वे (अच्छे) दिन अब यहाँ सपने में भी नहीं आवेंगे। इसकी स्वतन्त्रता, बल, धीरज सब नष्ट हो जायगा। कल्याणयुक्त भारत की भूमि अब श्मशान हो जावेगी। अब चारों ओर दुख ही दुख दिखाई देंगे, इसलिए हे वीरवर! अब भारत की आशा छोड़ दो।

२. इत कलह विरोध—यहाँ लड़ाई झगड़ा ही सब के हृदय में घर कर लेगा, अर्थात् सब लड़ाई झगड़े में लगे रहेंगे, मूर्खता का अन्धकार चारों ओर फैल जावेगा। वीरता, एकता और ममता (प्रेम) सब दूर चली जायँगी। उद्यम को छोड़ कर सब दासवृत्ति का अनुसरण करेंगे, (सब नौकरी के पीछे दौड़ेंगे) और गुलाम होकर चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) शूद्र ही हो जायँगे, इसलिए हे वीरवर, अब भारत की सब आशा छोड़ दो।

३. ह्वै हैं इतके—यहाँ के (भारत के) सब निवासी, भूतों और पिशाचों के उपासक हो जावेंगे, और कोई-कोई स्वयं ही प्रकासी (धर्म प्रकाश करने वाला, अवतार) बन बैठेंगे। सब सनातन सत्य धर्म नष्ट हो जावेंगे, और अपने परमात्मा से सब भारतवासी विमुख हो जावेंगे। सुपथ (सन्मार्ग) को छोड़कर सब लोग कुमार्ग में चलने लगेंगे, अतएव हे वीरवर, अब भारत की आशा छोड़ दो।

४. अपनी वस्तुन—अपनी वस्तुओं को सब लोग पराई समझेंगे, अपनी चाल छोड़कर दूसरों की चाल की (नकल) दौड़ कर करेंगे। तुरकों (मुसलमानों) के लिए हिन्दू हिन्दुओं के संग लड़ाई करेंगे और म्लेच्छों (मुसलमानों) के पैरों पर अपने सिर चढ़ाते रहेंगे। अपना कुल छोड़ कर सब नीचों के संग रहेंगे, हे वीरवर! अब भारत की आशा छोड़ दो।

५. रहे हमहुँ कबहुँ—हम भी कभी स्वतन्त्र आर्य और बलशाली थे, यह बात सब अपने दिल से भुला बैठेंगे, मिटा देंगे। परमात्मा से विमुख, धर्म और धन तथा बल से हीन, दुखी, आलसी, दुर्बल

शरीर वाले और भूखे लोग डर कर यवनों के जूते सिर पर सुख से सहेंगे, उनकी गुलामी करेंगे। हे वीरवर! अब भारत की सब आशा छोड़ दो।

सूक्तिसुमन

१ प्रारम्भ ही०--नीच लोग विघ्नों के भय से उद्यम आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम लोग कार्य आरम्भ तो कर देते हैं पर किसी विघ्न के आने पर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं। परन्तु जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वह विघ्नों पर लात रखकर अर्थात् उनकी कुछ परवाह न कर निरन्तर उद्यम करते हुए अन्त तक काम को पूरा निभाते हैं।

२ का सेसहि०—दिवसमनि=सूर्य। सुकृति=भले आदमी। क्या शेषनाग के सिर पर भार नहीं है? परन्तु वह उसे गिरा नहीं देता। क्या दिवसमनि [रात दिन] चलते-चलते थक नहीं जाता? पर वह कभी रुकता नहीं है। सज्जन जिसको स्वीकार कर लेते हैं [जिसको अपनी शरण में ले लेते हैं] उसका अन्त तक हित ही करते हैं। भले आदमियों का यही नियम है, अपने हृदय में इसका विचार कीजिए।

३ जो दूजे को०—जो राजा दूसरे का हित करने में लगा रहे वह अपना काम गँवा बैठता है। जब अपना ही काम पूरा न हुआ तो राज्य किस काम का? जो दूसरे के ही हित में लगा रहे वह पराधीन और मूढ़ है उस मूर्ख को कठपुतली के समान स्वाद (आनन्द) कभी नहीं मिलता।

लक्ष्मी

क्रूर सदा०—क्रूर = मूर्ख। भाखति = कहती है। लखति = देखती है। भीरु = डरपोक। रतिहीन = प्रेमरहित। वारनारी=वेश्या।

चंचल स्वभाव वाली लक्ष्मी स्वामी को सदा (मूर्ख) कहती है। मनुष्य के गुण-अवगुण को वह नहीं देखती, सज्जन और दुष्ट—सब को एक जैसा समझती है। शूरवीर से डरती है और भीरु (डरपोक) को कुछ गिनती ही नहीं, बताओ प्रेम रहित वेश्या और लक्ष्मी को किसने वश में किया है?

गुरुवश्यता

जब लौं बिगारे०—जब तक शिष्य कार्य नहीं बिगाड़ता तब तक गुरु उसे कुछ नहीं कहता पर शिष्य बुरे रास्ते पर जाने लगे तो गुरु उसके सिर पर अंकुश के समान होजाता है। अर्थात् उस को उस कार्य से रोकता है। इसलिए गुरु के वाक्य के वशवर्ती होने के कारण हम सदा ही पराधीन हैं। निर्लोभ गुरु के समान सन्तजन ही जगत में स्वाधीन हैं।

शारदी सुषमा

सरद विमल—निशानाथ=चन्द्रमा। सेत = श्वेत, सफेद। सरन में = तालाबों में। लखौ = देखो। किधौं = अथवा। नवबाल = नवयुवती। बसन = वस्त्र। उड़गन=तारे।

विमल शरद् ऋतु शोभित हो रही है। आकाश स्वच्छ और नीला है, सोलह कला-युक्त पूर्ण चन्द्रमा उदित है। सुन्दर

चमेली के फूलों की सुगंध फैल रही है। नदी के किनारे सफेद सफेद बहुत से कास के फूल खिले हैं। कमल और कुमुदिनी तालाबों में खिले हुए शोभा पा रहे हैं। जिन पर गूँज-गूँज कर भौंरों के झुण्ड रस ले रहे हैं। चाँदनी ही कपड़े हैं, चन्द्रमा ही मुख है, तारागण मोतियों की माला के समान है, कास फूल ही मधुर मुसकान हैं, यह शरद् ऋतु है या कोई नव-युवती है।'

अहो यह०—कास=(एक प्रकार की घास का फूल—जिसका रंग बिलकुल सफेद होता है और जो शरद् ऋतु में ही खिलता है)। रंजित=रँगी हुई। कुसुम=फूल। धवलाई=सफेद।

अहो यह शरद्-ऋतु शंभु(महादेवजी) का रूप धारण करके आई है। (महादेव जी अपने शरीर पर भस्म रमाये रहते हैं)—शरद्-ऋतु में चारों ओर जो कास-फूल खिले हैं वही मानों अंगों में लगाई हुई भस्म है। आकाश में जो चन्द्रमा उदय हुआ है वही मानों महादेवजी के सिर का आभूषण है (महादेवजी ने मस्तक में चन्द्रमा को धारण किया हुआ है) आकाश में चन्द्र की किरणों से रंजित कहीं-कहीं जो बादलों की टुकड़ियाँ हैं वही मानों हाथी की खाल है जिसे महादेव जी ओढ़ते हैं। जो अति शुभ्र खिले हुए फूल हैं वे ही मानों महादेव जी के गले की मुंडमाला है। और राजहंसों की पंक्ति ही मानों महादेवजी का हास्य है (कवि लोग हास्य का रंग शुभ्र वर्णन करते हैं) इस प्रकार यह शरद्-ऋतु महादेव जी का रूप धारण करके आई है।

सेवा धर्म

नृपसों०—बिट=धूर्त, खुशामदी। श्वान-वृत्ति=कुत्ते की वृत्ति।

राजा से, मन्त्री से और सब दरबारियों से डरते रहना होता है। फिर राजा के आस-पास के (मुँह लगे) खुशामदियों का कहना मानना होता है। रात-दिन उनका मुख देखते ही बीतता है और प्राणों का सदा डर लगा रहता है। इसलिए अपना पेट भरने के लिए की गई नौकरी कुत्तों की वृत्ति के समान है।

सेवक प्रभु०—सेवक सदा स्वामी से डरते रहते हैं, पराधीन लोगों को सपने में भी सुख नहीं है। जो ऊँचे राजकर्मचारी हैं उनको मन ही मन बड़ा भय रहता है, क्योंकि सब ही बड़े लोगों से द्वेष करते हैं और दिन-रात स्वामी के कान भरते रहते हैं।

जिमि जे०—बिलगाहिं=अलग होते हैं।

जिस तरह जो जन्मते हैं उनकी मृत्यु तथा जो मिलते हैं उनका वियोग भी निश्चित है इसी तरह जो बहुत ऊँचा चढ़ते हैं उनका पतन भी अवश्य होता है।

पुराना उद्यान

राजा नंद का स्वामिभक्त मंत्री राक्षस नंद कुल के नष्ट हो जाने पर राजा नंद के पुराने उद्यान का वर्णन कर रहा है।

नसे विपुल०—नसे=नष्ट हो गये। विपुल=बड़ा, भारी। हिय=हृदय। ताल=तालाब। भे=हो गये। लोपी=घिर गई, छिप गई। लहि=प्राप्त करके।

राजा (नंद) के भारी परिवार के समान बड़े-बड़े घर नष्ट हो गये हैं। मित्र-नाश से जिस तरह साधुओं के हृदय सूख जाते हैं वैसे यह तालाब सूख गये हैं। प्रारब्ध के विपरीत होने पर जिस तरह नीति फलहीन (विफल) हो जाती है, वैसे ही ये वृक्ष

फलहीन हो गये हैं। मूर्ख की बुद्धि जैसे कुनीति से घिर जाती है वैसे ही घास-फूस मे यह ज़मीन घिर गई है।

तीछन परसु०—तीछन=तीक्ष्ण, तेज। परसु=कुल्हाड़ा। तरोवर=(तरुवर) वृक्ष। गात=शरीर। अहि=साँप। उसास लेत=ठंढी साँस लेते हैं, आहें भरते हैं।

तीक्ष्ण कुल्हाड़े के प्रहार से कटे हुए शरीर वाले तथा पिंडूक (एक पक्षी पेंडकी) के साथ मिलकर रोते हुए वृक्षों के घाव दिखाई दे रहे हैं) वृक्षों के खोंढ़रे में से कीड़ों के बोलने का जो शब्द निकलता है वही मानों वृक्ष रोते हैं और उन वृक्षों पर जो पेंड बोलती है वही मानों रोने में वृक्षों का साथ देती है) अपने मित्र अर्थात् वृक्षों को दुखी देख साँप आहें भरते हैं और फाहे के बहाने से उनके घावों पर अपनी केंचुली धरते हैं।

तरुगन०—वृक्षों का हृदय (भीतरी अंश) सूख गया है, कीड़ों के काटने से उनके शरीर में बहुत से छिद्र हो गये हैं (जिनमें उनका रस आँसू के समान बह रहा है) और पत्र, फल तथा छाया के न होने से वे दुखी हैं मानों सब श्मशान को जा रहे हैं।

उद्बोधन

जागो जागो—हे भाई जागो, जागो। तुमने रात में सोते-सोते ही सारी उमर गँवा दी। रात की कौन कहे अब तो दिन भी बीत गया, और कालरात्रि (मृत्यु की रात) आ गई है। अब भला बुरा कुछ नहीं दिखाई देता,अब तो शत्रु के बस आ पड़े हो। आगे अपने उद्धार का रास्ता नहीं सूझता, इसलिए सिर धुन कर पछताते हो। अब भी होश में आकर, जो बची खुची बड़ाई है उसी को क्यों नहीं सम्हालते ? फिर पछताने पर कुछ नहीं होगा, खाली मुँह बाये रह जाओगे।

बदरीनारायण चौधरी

विजयी भारत

जय जय भारतभूमि—भवानी = दुर्गा । अलका = यक्षराज कुबेर की पुरी। अमरावती = देवताओं की पुरी, इन्द्रपुरी। खिसानी = लज्जित हो गई। सूर = सूर्य। उदो = उदय।

भारतभूमिरूपी भवानी की जय हो। जिसकी यशरूपी पताका संसार की दसों दिशाओं में फैली हुई है। जो सब सामग्रियों से भरी-पूरी है, और जो सब ऋतुओं में एक समान सुन्दर रहती है। जिसकी शोभा को देख कर देवपुरी और कुबेरपुरी भी लज्जित हो गईं। जहाँ धर्मरूपी सूर्य उदय हुआ और जहाँ सब से पहले नीति पहचानी गई।

सकल कला—सुझाना = दिखाना, बताना। विबुध = विद्वान। न्याय-निरत = न्याय में लगे हुए।

जहाँ से सम्पूर्ण कलाओं और गुणों सहित सभ्यता सब (दूसरे देशों) को सुझाई गई, (दिखाई गई) जहाँ अनगिनत योगी, तपस्वी, श्रेष्ठ ऋषि मुनि तथा ज्ञानी और विद्वान ब्राह्मण हुए जिनसे जगत ने विज्ञान और सब विद्याएँ जानी। और जहाँ कभी सारे संसार को जीतने वाले, न्याय में रत तथा गुण की खान राजा थे—

जिन प्रताप—विलानी = छिप गई। रत बनिक = व्यापार में लगे हुए। बनिक = बनिया, वैश्य।

जिनके प्रताप से देवताओं और असुरों की भी हिम्मत पस्त हो गई। जहाँ के अभिमानी क्षत्रिय काल के समान (बलवान) शत्रुओं को भी तिनके की तरह समझते थे। जहाँ लाखों वीरों की स्त्रियाँ, विद्वानों की माताएँ, तथा चतुर और सती स्त्रियाँ

थीं। जहाँ करोड़ों करोड़पति, धन दान करनेवाले व्यापारी व्यापार में लगे रहते थे—

सेवत शिल्प—अघानी = तृप्त हो गई। खोटानी = कम हुई।

जहाँ के शूद्रों ने शिल्प-कार्य में लग कर तथा (उच्च वर्णों की) यथोचित सेवा करके समृद्धि को बढ़ाया था। जिस देश के अन्न को खाकर संसार ऐंठता है, और अनेक जातियाँ तृप्त हो गई है, जिसकी सम्पत्ति हज़ारों बरस लुटने पर भी कम नहीं हुई, हज़ारों बरस नित नये दुख सहते हुए भी जिसने हृदय में दुःख न माना—

धन्य धन्य—सकानी = दुखती है। बहुरि = दुबारा। प्रेमघन = कवि का उपनाम।

वह देश धन्य है जो पहले की तरह अब भी संसार के राजाओं के मन को लुभा रहा है। जिसको अब भी तीस करोड़ आदमी दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हैं। जहाँ के लोगों में एकता की झलक देख कर संसार की अक्ल सहम और डर जाती है। 'प्रेमघन' कहते हैं कि वह ईश्वर की कृपा को प्राप्त कर फिर वैसा ही शोभावाला हो जाय तथा वैसा ही शूरता और गुणों से युक्त होकर धनधाम से भरपूर हो जाय।

प्रताप नारायण मिश्र

जनम के ठगिया

साधो मनुवाँ अजब—मनुवाँ = मन। गोहरावत = पुकारता है।

हे साधो ! यह मन अजीब पागल है। माया और मोह जो जन्म के ही ठग हैं, यह उनके रूप में बहक गया है। जगत में लगातार छल प्रपंच करता फिरता है, और इसने दुख को सुख समझ लिया है—अर्थात् जिन सांसारिक सुखों के पीछे यह भटकता रहता है वे सब वास्तव में दुःख ही हैं। जहाँ अन्त समय में जाना है वहाँ की इसको तनिक भी फिक्र नहीं है, यह मुख से धर्म धर्म पुकारता है, परन्तु मनमाना काम करता है।

जो साहब घट—जो साहब घट घट की जानता है, अर्थात् अन्तर्यामी है उसी से यह बहाना करता है और उससे मार्ग पूछता है जो स्वयं ही भटका हुआ है—अर्थात् जो स्वयं ही विषय-वासनाओं में भूला हुआ है, उससे परम-धाम का रास्ता पूछता है। हाय, इसने इतना भी न समझा कि यहाँ (इस लोक में) भला सज्जनों का वास कहाँ ? इस पागल मन के पीछे चल कर सुख का कहाँ ठिकाना हो सकता है ? प्रताप-नारायण कहते हैं जो उस सुख देने वाले (परमात्मा) को पहचानता है वही परम चतुर है।

अपने करम आपने संगी

जागो भाई जागो—जागो भाई जागो, अब रात थोड़ी रह गई है (दिन हुआ चाहता है)। अन्यथा काल-रूपी चोर तुम्हारे जीवन (प्राण) रूपी धन की चोरी करना चाहता है। (यदि अब न जागोगे तो) अवसर के चूक जाने पर (मौका हाथ से निकल जाने पर) तुम हाथ मल कर और सिर फोड़ कर पछताओगे। कुछ काम करो, ये कोरी-कोरी (खाली खाली) बातें कुछ काम न आयँगी। जो कुछ हो चुका वह हो चुका और उसकी चिंता से मुँह मोड़ कुछ काम करो।

आगे जामें बने--ठौरी = स्थान। गोरी = स्त्री। भोरी = भोली।

शरीर और मन को एकाग्र करके वही काम करो, जिसमें आगे का कुछ बने। क्या माता, क्या पिता, क्या पुत्र, क्या स्त्री कोई भी किसी का साथी नहीं। अपने कर्म ही केवल साथ जायँगे (उन्हीं कर्मों के अनुसार परलोक बनेगा) और सब भोले विचार हैं। इसलिए सत्यमय, सहायक, सुख देने वाले स्वामी (परमात्मा) से दिल लगा कर प्रीति कर लो। प्रतापहरि (प्रतापनारायण) कहते हैं। कि नहीं तो फिर कोई भी तेरी बात न पूछेगा।

———

नाथूराम शंकर

मंगल कामना

१ द्विज वेद पढ़ें—द्विज=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य। अविरुद्ध= विरोध रहित, मेल मिलाप से। ऋजु=सरल। वसुधा=पृथ्वी। ध्रुव=अचल। सविता=प्रकाशमान।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद पढ़ें उनके मन में अच्छे विचार बढ़ें,सब लोग बल पाकर ऊपर चढ़ें (उन्नत हों) और मेल-मिलाप से रहें तथा सरल मार्ग को पकड़ें (टेढ़े रास्ते को छोड़ दें) पृथ्वी भर को अपना परिवार समझें। अचल धर्म को धारण करें, दूसरे के दुखों को दूर करें, शरीर त्याग कर भवसागर से पार हो जायँ। हे सविता (प्रकाशमान) पिता, हमें वर दो और हमारे दिन फेर दो तथा कविशंकर को कविता दो (उसे प्रवीण कवि बना दो)।

२ विदुषी उपजें—विदुषियाँ उत्पन्न हों, वे क्षमता (सहन शीलता) न छोड़ें और व्रत धारण कर धर्मात्मा पति प्राप्त करें। मूल पुस्तक में 'तजैं सुकृती वरको' पाठ है जो अशुद्ध है उसके स्थान पर 'भजैं सुकृती वरको' पाठ चाहिए। सधवा सुधर जायँ, और विधवाओं का उद्धार हो, वे (पापाचरण द्वारा) किसी घर को कलंकित न करें। कन्यायें बिकें नहीं, कुटनियाँ न रहें और कुलबोर निकाल दिए जायँ और दर दर तरसते रहें। हे सविता पिता, ...।

३ नृप नीति जगे—लचना=लचकना, नम्र होजाना। संगर= लड़ाई। सुरभी=गौ।

राजाओं को नीति उत्पन्न हो उन को अन्याय न ठगने पाय, प्रजाधर (प्रजापति राजा) को भ्रमरूपी भूत न चिपटें, परस्पर में झगड़े न मचें, दुर्जन नम्र हो जाँय। वीर मदमस्त होकर (व्यर्थ ही) लड़ाई न करते रहें। गाँवें न कटें और अनाज न घट जाय, सुख भोग बढ़ें, और डर को दबा दें, दूर कर दें। हे सविता पिता, ...।

४ महिमा उमड़े—लघुता=नीचता। जड़ता=मूर्खता। शठता=दुष्टता। सटकना=चंपत हो जाना। मुदिता=प्रसन्नता, आनन्द, हर्ष।

महिमा बढ़े और नीचता तंग न करे, मूर्खता चराचर को जकड़े नहीं, दुष्टता चंपत हो जाय, आनन्द बढ़े और प्रतिभा (प्रतिभाशाली) उचित आदर के लिए भटकता न फिरे। सुन्दर शुभकर्म की ज्योति प्रकट हो, और लक्ष्मी श्रमी के हाथ को पकड़े (मज़दूर धनी हों)। हे सविता पिता,......।

५ मत जाल जलें—मत्सर=ईर्षा। अघदम्भ=पाप-कपट। फबें=सजें। सुरपादप=कल्पवृक्ष, जो माँगने पर सब कुछ देता है। अक्षर=अविनाशी परमात्मा।

मतों (मज़हबों) का जाल जल जाय, छली लोग किसी को न छलें, ईर्षा द्वेष छोड़कर कुल फूलें फलें, पाप-कपट दब जाय, गुनी-मानी निरक्षर (मूर्ख मनुष्य) के सामने न झुकें—अर्थात् धन की आशा से गुनी मानी न दबें। और कल्पवृक्ष के समान तुम अविनाशी परमात्मा को जप से स्मरण करें और तप द्वारा देखें और प्राप्त करें। हे सविता पिता,...।

शंकर मिलन

हे शंकर मैं समझता था कि तेरा कुछ पता नहीं (ग्राम, शहर, नदी; पहाड़, मन्दिर, मस्जिद कहीं तेरा पता न मिलता था) आज जब तू मिल गया है तो मेरा ही पता नहीं रहा, मैं ही तुझ में विलीन हो गया हूँ।

१–२ अबलौं न चलें—अब तक उस पद्धति (रास्ते) पर नहीं चले जिस पर व्रती और विनीत आदमी गए हैं। आज ही अचानक यह रास्ता दिखाई दिया, अब भ्रम के बाधक दिन (जो सफलता में बाधक थे) बीत गए। अब तो प्रभु शंकर की याद ही साथ रह गई है, और हठी सब साथ छोड़ कर वापिस चले गए। यद्यपि चलते-चलते हम थक गए थे, पर मनोरथ पाकर (सफलता पाकर, प्रभु को पाकर) हम जीत गए।

रसविहीन के लिये कविता वृथा है

भरिबो है—शम्बुक = छोटा शंख। छिति = पृथ्वी। छिगुनी = सबसे छोटी अंगुली। करी = हाथी। शैल = पहाड़। विदारिबो = फाड़ना। रेणु = रेत।

शंकर कवि कहते हैं कि मूढ़ों को कविता समझाना ऐसा असंभव है जैसा कि समुद्र को छोटे से शंख में भरना, या पृथ्वी को कनिष्ठिका (सबसे छोटी) अंगुली पर उठाना, या कमलनाल से मस्त हाथी को बाँधना, या जुही के कोमल फूल द्वारा पहाड़ को फोड़ना, या तारों का गिनना, अथवा रेतकणों से तेल निकालना, या सूर्य को पकड़कर पृथ्वी पर ला पटकना।

अंध जगत् (अंधी दुनिया)

बोझ लदे—हय=घोड़े। खर=गधे। मराल=राजहंस। जग वंचन=जग को ठगने वाले। पामर=दुष्ट।

घोड़ों और हाथियों पर बोझ लद रहा है, और गधे खड़े खड़े रोज खाते हैं और खुजाये जाते हैं। शेर तो बंधन में पड़े हैं और दुष्ट गीदड़ स्वतंत्र होकर चिल्लाते पाये जाते हैं। बगुले तो मानसरोवर में विहार करते हैं, और राजहंसों को मारकर उड़ा दिया गया है। गुरू लोगों का आदर घट गया है, और जगत को ठगने वाले नीच आदमी पंच कहे जाते हैं।

पितृदेव क्या थे और मैं क्या हूँ ?

१ क्या शंकर—शंकर=कल्याणकारी परमात्मन्, साथ ही कवि का नाम भी है। प्रतिकूल=उलटा। मंगल=कल्याण। मृत्युपर्यन्त=मरते दम तक। अनुभूत=निरन्तर जिसका अनुभव कर रहा हूँ, भोग रहा हूँ। दाहक=जलाने वाला। दुर्दैव=दुर्भाग्य। कोप=क्रोध। कर्पूर होना (काफ़ूर होना)=लुप्त होना, गायब होना।

हे शंकर! क्या इस विपरीत समय की समाप्ति न होगी? क्या मरते दम तक भी कल्याण से मेल न होगा? निरन्तर जिसे सहन कर रहा हूँ वह निर्धनता का क्लेश क्या अब भी दूर न होगा? और हर घड़ी जलानेवाला दुर्भाग्य का क्रोध क्या काफ़ूर न होगा अर्थात् नष्ट न होगा?

२ होकर मालामाल—मेरे पिता जी ने खूब धन कमाकर नाम पैदा किया था परन्तु मुझ अभागे ने उनके साथ घर के काम में जरा भी हाथ न बटाया था। यद्यपि मैंने स्वयं पुस्तकों का पठन-पाठन करके पर्याप्त विद्या प्राप्त कर ली थी परन्तु मैं दूसरों की

तरह परीक्षा के झंझटों में नहीं पड़ा था अर्थात् मैंने कोई परीक्षा पास नहीं की थी।

३ जीवन का—कुलीन = अच्छे वंश का। निहार = देख।

पूज्य पिताजी अपने जीवन का पूरा फल—सब तरह के सुख आदि—पा चुके थे और सब शुभ कार्य्यों को कर के वे जनता द्वारा कुलीन कहलाये जा चुके थे। स्वर्ग के समान सुन्दर भोग-विलासों को वे छोड़ चुके थे, हम सब उनके न भूलने वाले जीवन का अन्त देख चुके थे।

४ बाँध बाप की—परमाधार = केवल एक सहारा। निरंकुश = स्वच्छन्द।

पिता जी की मृत्यु के बाद उनकी पगड़ी बाँधकर मैं सारे घर का मुखिया बना। सारे कुटुम्ब का मैं ही अब केवल सहारा था। परन्तु मैं अब भी पहले की भाँति ही सुख से स्वच्छन्द तथा निश्चिन्त रहता था (जैसे कि पिता जी के समय में रहता था) घर में कौन क्या करता है इस ओर मैं कुछ ध्यान न देता और किसी से कुछ न कहता था।

५ जिनका संचित—संचित = इकट्ठा किया हुआ। होड़ = बाजी।

जिन पिता जी का इकट्ठा किया हुआ खजाना मैंने स्वयं खाया और दूसरों को खिलाया उनके समान धन-संग्रह करने में मैंने तनिक भी बाजी न लगाई (प्रयत्न नहीं किया); अर्थात् मैं खर्च तो करता गया पर कुछ कमा न सका। कई लोग हित-चिंतक से बनकर मुझे लूट रहे थे पर मैं उनकी धोखे की चालों को पहचान न सका; फल यह हुआ कि मुझे घाटा पड़ गया पर मैं उसका कठोर परिणाम कुछ भी न समझ सका।

६ अटके डिगरीदार—अटके = अड़ गये, सवार हो गये निरुपाधि = उपाधि रहित।

जिनको कचहरियों से डिगरियाँ मिल गई थीं वे अब मेरे सिर पर सवार हो गये, उन्होंने अपना एक पैसा भी न छोड़ा और मेरा गाँव, धन, घर, बाग बग़ीचा सब छीन ले गये, मेरे कुटुम्ब में किसी के पास कोई गहना या वस्त्र भी न छोड़ा। अब नाम के साथ पिता जी के समय की उपाधि न रहीं अतः पुलिस ने मेरे यहाँ से अस्त्र भी ले लिये।

७ बैठ रहे मुखमोड़—दुर्वाद = गालियाँ, निन्दा। अड़ी पर मरने वाले = ज़रूरत के वक्त पर किसी तरह भी काम कर देनेवाले।

रोज़ के आने जाने वाले मित्र मुख मोड़कर घर बैठ रहे। अब तक जो हितू बनकर मुझे लूट रहे थे अब मेरा नमस्कार तक स्वीकार नहीं करते—देखते हैं और मुँह फेर लेते हैं। बड़ी बड़ी ठकुरसुहाती (प्रशंसा) करने वाले अब गालियाँ देते हैं। जो लोग पहले ज़रूरत के वक्त पर किसी तरह भी काम कर देने वाले थे वे अब बिना किसी बात के ही झट झगड़े पर उतर आते हैं।

८ कविता प्रेमी—विज्ञान गगन = ज्ञान का आकाश। विज्ञ = विद्वान्। धर्म-धुरन्धर = धर्म के जानने वाले। रवि = सूर्य।

कविता के प्रेमी जन अब मुझे अच्छा कवि कहने में कतराते हैं, विद्वान लोगों ने मुझे ज्ञान-रूपी आकाश का सूर्य कहना छोड़ दिया है, धर्म-धुरन्धर लोग मुझे माननीय नहीं समझते अर्थात् जब तक मेरे पास धन था तब तक मैं एक तुकबन्दी भी लिख देता तो लोग मुझे महाकवि कहते थे पर अब धन नहीं रहा अतएव अब कोई मुझे कवि या ज्ञानी नहीं कहता। धनी हो या निर्धन सभी मुझे तो कंगाल कहते हैं।

९ वित्त विना—वित्त=धन। विख्यात=प्रसिद्ध। विरद=कीर्ति। मग=मार्ग। विधाता=ईश्वर।

धन के बिना मेरी प्रतिष्ठा उलटी निन्दा में परिणत हो गई है। मेरा मन जो पहले निश्चिन्त रहता था अब उसमें बड़ा भय घर कर गया है। निर्धनता के आ पड़ने से सारा आनन्द किरकिरा हो गया है, हे विधाता, मेरे जीवन का मार्ग अब बड़ा तङ्ग-सा (कष्टकर) हो गया है।

१० प्रतिभा को प्रति०—प्रतिभा=बुद्धि, अनूठी सूझ। प्रतिवाद=विरोध। पौरुष=बल, शक्ति। निरुद्यम=बेकारी, आलस्य। विषाद=दुःख।

मेरी प्रतिभा प्रचण्ड विरोध के कारण दब सी गई है, अपमान रूपी चण्डाल ने मेरा आदर नष्ट कर दिया है, नीच आलस्य मेरी सारी शक्ति का नाश कर चुका है और दुःख ने मेरी सारी प्रसन्नता का रक्त चूस लिया है अर्थात् मेरे सारे आनन्द को धूल में मिला दिया है।

११ दरसे देश—दरसे=दिखाई देता। उपहास=हँसी।

यह स्थान मुझे अब उदास (आनन्दरहित) दिखाई देता है, अपनी जाति वाले ही मेरे अनुकूल नहीं रहे, वैरी हँसी उड़ाते हैं, सुख पहुँचाने वाला मित्र अब कोई नहीं रहा, सभी बन्धु-बांधव छूट गये हैं, किसी से मेल नहीं रहा। घर में कुहराम मचा है, कहीं भी खुशी का खेल नहीं रहा।

१२ बालक चोखे—काढ़=निकाल।

(इतनी दरिद्रता है) फिर भी कभी-कभी बच्चे (अपने सहज स्वभाव से) अच्छे-अच्छे खाने-पीने के सामान के लिए ज़िद कर बैठते हैं; कहीं खिलौने देख लेते हैं तो उनके

लिए पीछे पड़ जाते हैं। परन्तु हा ! उनको वह मनचाही वस्तु मिलती नहीं और हमारे हृदय को मानों निकाल कर वे रो रोकर सो जाते हैं।

१३. फूल फूलकर—व्यंजन=स्वादिष्ट भोजन। रसाला= दही का बना हुआ शरबत, श्रीखण्ड।

गर्व से फूल फूल कर फल फूल उड़ाने वाले, कई तरह के स्वादिष्ट भोजन खानेवाले और दूध तथा श्रीखण्ड जैसे अमृत-रस पीने वाले हम, हाय, आज शाक और चनों पर जीने वाले बने हैं, अर्थात् अब हमें वे चीजें नहीं मिलतीं, उनके स्थान पर साग तथा चनों पर ही निर्वाह करना होता है।

१४ लड़के लकड़ी—ईंधन=जलाने की लकड़ी। बीन बीन कर=चुन चुन कर, बटोर कर। महेरी=उबली हुई ज्वार जिसे गरीब लोग नमक मिर्च लगा कर लस्सी में मिलाकर खाते हैं।

लड़के लकड़ियाँ बटोर कर ला देते हैं, जलाने की लकड़ी का काम उससे चल ही जाता है, बूढ़े चाचा दो तीन बार पानी भर देते हैं और पड़ोसियों से छाछ तथा महेरी माँग माँग कर भर देते हैं (इकट्ठा कर देते हैं)।

१५. छप्पर में बिन बाँस—घुने=खोखले, कमजोर।

छप्पर में बाँस नहीं उनके स्थान पर खोखले एरंड लगे हैं, बर्तनों के भाग्य कहाँ उनके स्थान में अनेक घड़ों के ठीकरे पड़े हैं (उन्हीं से बर्तन का काम चल जाता है), खाट के भाग्य कहाँ उसकी जगह छः सात फटे से टाट बिछे हैं, दाने ही नहीं, चक्की कौन पीसे, उसके पुट इधर उधर अलग पड़े हैं।

१६. जाड़े का प्रतियोग—प्रतियोग=विरोध, वह जिससे

किसी पदार्थ का परिणाम नष्ट हो जाय। प्रतिकार=बदला, वह कार्य्य जो किसी कार्य्य को रोकने, दबाने अथवा बदला चुकाने के लिए किया जाय। उष्ण विलास = गरमी लाने वाला सामान। ठौर = स्थान।

अब जाड़े से बचानेवाला गरमी का सामान—गरम कपड़ा आग इत्यादि—नहीं मिलता तथा कठोर गरमी के प्रभाव से बचने के लिए ठंढी जगह पर रहना नहीं मिलता। बरसात चारों ओर से घेर रही है (यह खँडहर सब ओर से चू रही है) अतः कहीं भी सूखा स्थान नहीं मिलता। और इस खँडहर को छोड़ कर अब और तो कोई घर है ही नहीं।

१७. कर कर केहरि—केहरिनाद = सिंह की गर्जना। बलाहक = बादल। अस्थिर=चंचल। विद्युत=बिजली। त्राण=रक्षा।

बादल सिंह के समान दहाड़ दहाड़ कर बरस रहे हैं, बिजली की चंचल छटा दसों दिशाओं में दिखाई दे रही है। छेद (छिद्र) छत से गंदला पानी छोड़ रहे हैं अर्थात् छत के छिद्रों से मैला पानी चू रहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र देव आज रक्षा के सब उपाय नष्ट कर रहे हैं।

१८. दिया जले किस—कुटिया में अँधेरा है, दीया किस भाँति जलाया जाय तेल के लिए पैसे तो हैं ही नहीं, उधर मच्छर और डाँस काट रहे हैं जिनके मारे जरा भी चैन नहीं पड़ती। मेंह इस जोर से बरस रहा है कि यदि दीवारें टूटकर गिर पड़ें तो कुछ ताज्जुब नहीं; सब ओर पानी ही पानी न हो जाय तो वर्षा क्या हुई ?

१९. बीत गई अब रात—किसी प्रकार रात तो व्यतीत हुई

है, और अँधेरा तो दूर हुआ परन्तु कष्टों का समूह अब भी चकनाचूर नहीं हुआ; वह वैसे का वैसा ही बना है। तीसरा दिन आ गया है पर इस भयानक उपवास की समाप्ति नहीं हुई, यह भूख-हड़ताल चली ही जा रही है, हा ! हमारा निवास तो साक्षात् घोर नरक में ही हो गया है।

२०. जो जगती पर—जगति=पृथ्वी।

जो इस धरातल पर पाप के बीज बोने का साहस नहीं कर सकता, जिसकी आत्मा में सच्चे धर्म को छोड़ने का साहस नहीं है, जो भाग्य के विरुद्ध एक पग भी नहीं चल सकता, ऐसा निर्धन प्राणी कब तक रो रोकर बचा रहेगा ? अर्थात् उसे शीघ्र ही मरना पड़ेगा।

आत्मबोध

१. पठ पाठ प्रचण्ड—प्रमाद = आलस्य। रोप = छेड़, ठान।

शंकर कवि कहते हैं कि कई कपटी मनुष्य घोर आलस्य तथा कपट से भरे पाठ पढ़-पढ़ कर अपना जन्म गँवा गये तथा कई बलवान पुरुष (बल के गर्व में जान बूझ कर) आपस में घोर लड़ाई ठान कर केवल पाप कमा गये हैं। न जाने कितने धनी पुरुष अन्त में सब सम्पत्ति धन आदि इसी धरा-तल पर छोड़ कर अनन्त के गर्भ में समा गये, परन्तु जो निर्मल आत्मा थे, ज्ञानी थे, वे ही (इस संसार में) अपने मनोरथ की पूर्णता की जड़ जमा गये अर्थात् वे ही अपने मनोरथ पूरे कर गये। सारांश यह है कि पुस्तकों का स्वाध्याय, धन, बल आदि कुछ नहीं कर सकता जब तक आचरण शुद्ध और पवित्र न हों तथा वास्तविक ज्ञान न हो।

२. उपदेश अनेक—अनेक उपदेश सुने हैं और मन को अपनी ही इच्छा के अनुसार सुधार चुके हैं। ध्यान धर कर एकाग्रचित्त होकर मन्त्रों का विधिपूर्वक जाप भी किया है, वेद और पुराणों को भी खूब मथ चुके हैं। गुरु के पद को धारण करके (किसी मठ) के महन्त भी बन चुके और अपना धन घर तथा कुटुम्ब सब छोड़ चुके तथा चारों ओर टक्करें भी मार चुके हैं पर फिर भी (इस भवसागर से) ज्ञान के बिना तर न सके।

३. निगमागम तंत्र—निगमागम = वेद-शास्त्र। प्रतिवाद = विरोध। प्रगल्भ=चतुर। दम्भ = छल-कपट। वंचक = धोखे-बाज। प्रमाद = आलस्य। सुरा = शराब। हलाहल = घोर विष। महोदधि = समुद्र। विवेक = ज्ञान। बकराज = बगुले की तरह धूर्त्त, अर्थात् धूर्त्तराज।

वेद, शास्त्र तथा पुराण सब पढ़ बैठे हैं और दूसरों के खण्डन में चतुर कहे जाते हैं। अनेक छल-कपट रच कर तथा उनका प्रचार कर धोखेबाज बन कर कई वेश बनाते हैं। आलस्यरूपी शराब पीकर (मतवाला होकर) विचरते हैं, तथा अभिमान-रूपी जहर खाकर मर चुके हैं, शंकर कवि कहते हैं कि ऐसे धूर्तराज ज्ञान के बिना मोह-सागर के पार नहीं हो सकते।

४. घरबार बिसार—बिसार = छोड़कर। अनन्य = अद्वितीय। कुपंथ = बुरा रास्ता। उपताप = कष्ट।

घर-बार छोड़ कर विरक्त बने हैं और सन्यासी का वेष बना कर ये हमेशा मस्त रहते हैं, (इनको बड़ा ज्ञानी समझ

कर) अनेक मूर्ख गृहस्थी भक्त बनकर इनकी बकवास (उपदेश) सुनते हैं और धूर्त्त शिष्यजन इन्हें अद्वितीय पण्डित कहते हैं। ये कुल के नाशक घमंड-रूपी घोर जंगल में घुस कर विचरते हैं तथा बुरे मार्ग का अवलम्बन करते हैं। शंकर कवि कहते हैं कि इस तरह एक ज्ञान के बिना ये कपटी लोग अनेक कष्ट उठाते हैं।

५. तन सुन्दर—उपहास = हँसी, अनादर। प्रतिकूल = विरुद्ध। मनोज = कामदेव। उपभोग = सुख की सामग्री।

चाहे शरीर सुन्दर और रोग-रहित हो; मन में त्याग के भाव हों और वह कभी उदास न होता हो; मुख में हमेशा धर्मचर्चा रहे और मनुष्य समाज में अनादर न हो अर्थात् प्रतिष्ठा हो; धन भी काफी हो और अनुचित काम-वासना भी न हो परन्तु यदि किसी मनुष्य में चतुरता तथा प्रतिभा—तीक्ष्ण बुद्धि—न हो तो ये सब सुख की सामग्री व्यर्थ हैं।

६. दिन रात समोद—किरीट = मुकुट। अवनी = पृथ्वी। अधिराज = स्वामी।

चाहे दिन-रात खुशी तथा खेल में बीतें, हर तरह के राग-रंग तथा सुख-सामग्री मौजूद हों, सिर पर मुकुट तथा (हाथ में) तलवार धारण कर समस्त पृथ्वी के मालिक बन चुके हों और प्रताप अखण्ड हो तथा अनेक समाज (प्रजामण्डल) अविरुद्ध बन जायँ (अर्थात् विरोधी न हों—आज्ञाकारी हों) परन्तु कवि शंकर कहते हैं कि ज्ञानरूपी धन के सिवाय कोई चीज इस संसार रूपी-सागर की जहाज नहीं बनती अर्थात् ज्ञान के बिना इस सागर से पार नहीं जाया जा सकता।

श्रीधर पाठक

उजड़ा गाँव

कयहुँ—वहाँ (उस उजड़े गाँव में), अब ग्रामीण जन आकर कभी पैर न रक्खेंगे, और मधुर भुलावे में पड़कर प्रतिदिन अपनी चिंताओं को न भुलावेंगे। अब वहाँ आकर किसान अपना समाचार न सुनावेंगे और न नाई की बातें ही सबके मन को बहलायेंगी। लकड़ी काटने वालों का विरहा (एक प्रकार का गीत जिसे लकड़ी काटने वाले, और गडरिए गाते हैं) अब वहाँ कभी भी सुनाई न देगा। और कानों को आनंद देनो वाली तान (संगीत) का समुद्र अब वहाँ कभी भी न उभरेगा। माथा (माथे का पसीना) पोंछकर लोहार अब वहाँ काम के लिए नहीं रुकेगा, और भारी भार को ढीला कर बातें सुनने के लिए नहीं झुकेगा।

झाग उठे हुए प्याले को सब के पास फिराता हुआ (सब को पीने को देता हुआ) घर का मालिक अब वहाँ न दिखाई देगा। चाहे धनी लोग हँसी ठट्ठा करें और दीनों की संपत्ति को तुच्छ समझकर मानी लोग चाहे उसे नीची निगाह से देखें, परन्तु मुझे वह (ग्रामीण जीवन) बहुत प्यारा लगता है, सब तरह की बनावटों (कृत्रिमताओं) की अपेक्षा एक स्वाभाविक सुन्दरता ही मेरे मन को अधिक अच्छी लगती है।

जादूभरी थैली

कवि काश्मीर की सुंदरता देखकर मुग्ध हो गया है, और उसी का इस कविता में वर्णन करता है।

क्या यह संसार को (बनाने वाले) बाजीगर की जादूभरी थैली है, जो कि खेलते खेलते (खेल दिखाते दिखाते) खुल कर

पहाड़ के सिर पर फैल गई है। या जब सनातन पुरुष और प्रकृति को यौवन रस (यौवन की मस्ती, संभोग की इच्छा) आया तब उन्होंने केलि-क्रीड़ा करने और रसरंग रचने के लिए यह रंगमहल सजाया है। या यह प्रकृति महारानी के महलों की खिली हुई फुलवारी है, या उस (प्रकृति महारानी) की (रत्नों से) भरी हुई सिंगारपिटारी खुली पड़ी है। प्रकृति यहाँ एकान्त में बैठकर अपना रूप सँवारती है। पल पल में वेष बदलती है (कभी बादल आ जाते हैं और कभी तेज धूप निकल आती है) और क्षण क्षण में क्षणिक सुंदरता धारण करती है। स्वच्छ जल के तालाब रूपी दर्पण में अपने मुख की शोभा देखती है और अपनी सुन्दरता पर मोहित होकर आप ही तन-मन न्योछावर करती है। यही स्वर्ग है यही सुरलोक है; यही देवताओं का सुन्दर उपवन (बाग) है। यही अमरों (देवताओं) का ओक (घर) है। यहीं कहीं पुरंदर (इन्द्र) भी बसता है।

स्वर्गीय वीणा

कवि ईश्वर की अदृश्य माया को ही एक स्वर्गीय किशोरी मान कर उसकी मीठी तान का, उसके अनूठे नर्तन का, उसके अनेकों वेषों का वर्णन करता है, और कहता है इस अदृश्य 'जोगन' का पता लगा सकते हो तो लगाओ।

१ कहीं पै—कहीं पर कोई स्वर्गीय नवयुवती सुन्दर वीणा बजा रही है। सुरों के संगीत की सी किस तरह की मीठी झनकार सुनाई दे रही है।

२ हरेक स्वर—उसके प्रत्येक स्वर में नवीनता है। प्रत्येक पद (गीत) में चतुरता है। निराली लय (नाचने, गाने तथा बजाने में समता) है, विचित्र लीनता है और अद्भुत आलाप (तान) मिला रही है।

३ अलक्ष्य पर्दों—अलक्ष्य (न दिखाई देनेवाले) पर्दों (सितार, हारमोनियम आदि बाजों में वह स्थान जहाँ से स्वर निकाला जाता है) से गत सुना रही है। चंचल तरानों से मन को लुभा रही है और अनूठे अटपटे स्वर्गीय स्वरों में अमृत की धारा बहा रही है।

४ कोई पुरंदर—यह क्या कोई इन्द्र की किंकरी (सेविका) है अथवा किसी देवता की स्त्री है। वह भोग से मुक्त और वियोग की आग में जलती हुई-सी हृदय के उद्गारों को गा रही है।

५ कभी नई—कभी उसकी नई तान प्रेम से युक्त है, कभी उसकी तान में (प्रियतम के प्रति) क्रोध भरा है, और कभी विनय है। (उसके स्वर में) दया है और चतुरता मिली है, इस तरह वह अनेक बानक (वेष) बना रही है।

६ भरे गगन—भरे आकाश में जितने भी तारे हैं, वे सारे इसके गाने की मधुर स्वर के नशे में चूर हो गये हैं। इस तरह सारे ब्रह्माण्ड को मानों वह दो उँगलियों पर (जिनसे वह स्वर्गीय वीणा बजा रही है) नचा रही है।

७ सुनो तो—हे सुनने की शक्ति वालो, हे कानों वालो, इसकी आवाज़ को सुनो, और हो सके तो जाकर कुछ पता लो कि वह कौन जोगन (विरक्त स्त्री) है जो इतनी चुलबुल मचा रही है।

ओ घनश्याम (काले बादल)

१—७ हे वारिद नव—हे वारिद (जल देने वाले), हे नये जल को धारण करने वाले, हे धाराधर (धाराओं का धारण करने वाला) नाम वाले, हे पयोद (जल दाता), हे सुन्दर जल वाले, हे अत्यंत मनोहर, हे प्रानद (प्राण देने वाले) हे आनंद देने वाले बादल, हे जगत के जीवन के सार, हे जीवधारियों के जीवनरूपी धन, हे तीनों लोकों के आधार, हे अत्यंत प्यारे घनश्याम (काले बादल) मुदाम (सदा) हरिजनों के हृदय को मुदित करने वाले

हरितनुज, हे जगत के हृदय को जुड़ाने (प्रसन्न करने वाले), सब तरह के भय को छुड़ाने वाले, हे बगुले की स्त्रियों को उड़ाने वाले और उनके दिल को बढ़ाने वाले, हे युद्ध में चतुर, धनुष (इन्द्र धनुष) को धारण करने वाले, जल की धारा रूपी बाणों के तरकस, गरमी के कठोर कलुश (पाप, ताप) और सूर्य की किरणों के तेज प्रहार को हरने वाले, हे गिरि तुंग शिखर पर (पहाड़ की ऊँची चोटियों पर) भ्रमण करने वाले, हे निर्भय नभयान (आकाश में विचरने वाले) हे नित्य नये शरीर के धरने वाले (आकाश में उड़ते हुए बादल कभी कुछ रूप धर लेते हैं, और कभी कुछ रूप) हे पवमान (वायु) के विमान, तुम ही भारत के धन, वल, गुण, गौरव के आधार हो, तुम ही उसके शरीर, मन और प्राणों की पतवार हो। (भारत कृषि-प्रधान देश है, और कृषि प्रायः बादलों पर ही आश्रित है, यदि वर्षा अच्छी हुई तो खेती अच्छी हुई, यदि वर्षा न हुई तो अकाल पड़ गया। इसी प्रकार यदि अधिक वर्षा हो गई तो सब अनाज सड़ गया। अतएव बादलों को भारतवासियों का आधार कहना ठीक है।

८—९ परम पुरातन—तुम्हारा भारत के साथ बहुत पुराना प्रेम है, जिसको सारा संसार जानता है और इसे निश्चल नियम समझता है, इसलिए तुमको वह प्रेम का सम्बन्ध न छोड़ना चाहिये, प्रकृति का प्रबंध (नियम) सदैव पूर्ण तथा अटल कहा जाता है।

१०—११—१२ सोचहु सुमिरि—हे उज्ज्वल जसभौन (यश के भवन, बड़ाई के पात्र), बादल अपने सुयश को स्मरण करके सोचो कि इन दुखियों का तुम्हारे सिवाय और कौन अवलंब (सहारा) है। अतः तुम परम सुंदर और पवित्र पुरविया वायु (पुरविया वायु चलने पर अवश्य वर्षा होती है) भेजो, जो (किसानों को) शुभ संदेशा सुनाने वाली और जल की धारा लाने वाली है। और

श्याम (काली) घटा लेकर दौड़ो और आकाश को दबाकर छा जाओ; अपने दल को सजाकर लाओ और अपनी सुन्दर शोभा फैलाओ।

१३–१४. घोरहु घुमुड़ि—जोर से घुमड़ (उमड़) कर गर्जो, और दसों दिशाओं को घेर लो, दामिनि (बिजली) को जल्दी ही दमकाओ (चमकाओ) और धनुष (इन्द्र धनुष) का चिह्न धारण कर लो। रणव्रत (युद्धव्रती) वीर की तरह घोर गर्जन सुनाओ, साथ ही सुन्दर कम्पन दिखाओ और धुरवान (बादलों) की धुर बाँध दो।

१५. १६. १७. मुग्ध मयूर—अपनी घनगर्जना सुनाकर मत्त मयूर (मदमस्त मोर) को नचाओ, नये जल से सींच कर मेंढकों को बुलाओ, मेंढकों की टर-टर कराओ। कहीं-कहीं कड़क-कड़क बिजली के गिरने की ठनकार सुनाओ, कहीं झिल्लीगणों (झींगुरों) की कोमल झंकार सुनाओ। हे बहुत तरह के ढंग (रचना) के घर वन-वन को (प्रत्येक जंगल को) रंगबिरंगे कीड़ों पतंगों से और घरघर को (प्रत्येक घर को) स्त्रियों के गान की तानों से भर दो।

१७. १८. १९. करि कृत—किसानों को कृतकृत्य कर (किसानों का मनोरथ पूरा कर) संवत्सर (वर्ष) को सफल बनाओ (वर्ष में खेती पूरी हो जाना ही उसकी सफलता है)। शस्य (फसल) तृण और धानों को सींच कर तब अपने घर जाओ। समय समय पर फिर आओ, फिर इसी तरह चले जाओ। अपने स्वाभाविक नीति-मार्ग को स्वीकार कर सहज सौभाग्य को बढ़ाओ।

२०. प्रथित प्रेमरस—हे बादल! हमारी यह विनती है कि (इस भारत भूमि को) प्रथित (प्रसिद्ध) प्रेमरस से सान दो और प्रणय तथा विश्वास से युक्त सदा सरस अनुराग करो—प्रीति करो।

बालमुकुन्द गुप्त

श्रीराम स्तोत्र

अब आये—हे राम, अब हम तुम्हारी शरण आये हैं, क्योंकि सब तरह से हारे हुए के हरि ही सहायक मशहूर हैं। हे रघुवंश-मणि रामचन्द्र ! हमने यही साख (बात) सुनी है जिस निर्बल का और कोई सहारा नहीं और उसके बल रामचन्द्र ही है, उसे राम का ही सहारा है।

जप बल—एक जप का बल, दूसरा तप का बल, तीसरा बाहुओं का (शारीरिक) बल और चौथा पैसे का बल होता है, परन्तु हमारे पास इसमें से एक भी बल नहीं है, इसलिए हे राम आप ही रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

सेल गई—सेल (भाला) चला गया, बरछी चली गई, और तीर तलवार सब चले गये, अब तो घड़ी, छड़ी और ऐनक ही क्षत्रियों के हथियार रह गये हैं।

जो लिखते—जो अरि (शत्रुओं) के हीय (दिल) पर भाले के अंक (अक्षर-चिह्न) लिखा करते थे अर्थात् जिनकी बहादुरी दुश्मन के हृदय पर अंकित रहती थी, आज उनके पुत्रों की आँखें कलम के डंक बनाते-बनाते भी झपका करती हैं।

कहां राज—हे प्रभु ! अब वह राज कहाँ, और (पाट) सिंहासन कहाँ तथा वह मान-सम्मान कहाँ रहा ? अब तो हे हरि ! तुम्हारी संतान पेट के लिए दूसरों के पाँव पर पड़ती फिरती है।

जिनके कर सों—जिनके कर (हाथों) से मरने तक कठोर तलवार नहीं छूटी, हे प्रभु ! अब उनके पुत्र पेट के लिए गुलाम और दरबान हो गये हैं।

जहां लौं—जहाँ बेटा बाप से लड़े और भाई भाई से लड़े, उनके सिर से गैरों के पैर कैसे दूर हों, अर्थात् उनके यहाँ से गुलामी कैसे भागे।

बार बार—बार-बार महामारी (प्लेग) आदि फैलती है, बार-बार ही अकाल (दुर्भिक्ष) पड़ता है। (इन्हीं बहानों से) यमराज अपने भयंकर मुँह को खोल कर हमारे सिरों पर फिर रहा है।

अब तुमसों विनती—हे दीनों पर दया करनेवाले अब तुम से यही विनती करते हैं कि इन दुखिया आँखों में आपका राज बसे।

जहँ मारी को—जहाँ प्लेग आदि महामारियों और अकाल का डर नहीं हो,जिस देश की सुख सम्पत्ति बारह मास रहती हो,जहाँ बलवानों में बल (ऐंठ) हो और निर्बलों की हाय-हाय न होती हो, हे भगवन् एक बार वह दृश्य इन आँखों से दिखा दो।

अबलों—हे राम ! अब तक हम तुम्हारा नाम ले लेकर जीते रहे, हे गुणों के धाम राम, अब हम वह तुम्हारा नाम भी भूलने लगे हैं।

कर्म धर्म—कर्म, धर्म, संयम, नियम, जप, तप और वैराग्य इन सब की तो हम बहुत दिन पहले ही फाग (होली) खेल चुके, अर्थात् इन सब को तो दूर भगा चुके।

धन बल—धन का बल, जन (संगठन) का बल, और शारीरिक, बल, बुद्धि, विवेक और विचार तथा ज्ञान, मान और मर्यादा का जुआ तो हम कब का हार बैठे हैं, ये सब चीजें तो हम पहले ही गँवा बैठे हैं।

हमरे जाति—हमारी न कोई जाति है, न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, आदि वर्ण हैं, न धन है, न काम। हे प्रभो, हम आप से क्या छिपावें हमारी जाति तो अब गुलाम है।

बहु दिन बीते—हे प्रभो रामचन्द्र ! बहुत दिन हुए जब हमने

अपना देश गँवा दिया था, और हम अब बैठे-बैठे अपनी भाषा, अपने भोजन और अपने भेष को भी गँवा रहे हैं, विदेशी भाषा और सभ्यता को अपना रहे हैं।

नहीं गाँव—अब न तो गाँव में कोई झोपड़ा ही है, और न ही जंगल में कोई खेत ही है। घर में बैठे बैठे ही हमने अपने सोने को रेत कर डाला है।

दो दो मूठी—दो दो मुट्ठी अन्न के लिए हम दूसरे के मुँह की ओर ताकते रहते हैं। घर ही में हम पारधी (हत्यारे) हैं, और घर ही में हम चोर हैं।

तो हूँ—तब भी हम स्वान (कुत्तों) की तरह रात-दिन आपस में लड़ते हैं। हे सुजान रामचन्द्र! हमारी आगे क्या दशा होगी?

विप्रन छोड्यो—ब्राह्मणों ने हवन और तप छोड़ दिये हैं, क्षत्रियों ने तलवार छोड़ दी है, और वैश्यों के पुत्रों ने अपने अच्छे व्यापार छोड़ दिये हैं।

Shankar has read this fully

अपनो कछु—अब अपना कोई उद्यम नहीं रहा, अब तो सब पराई आशा पर ही ताकते रहते हैं। इस भारत भूमि में अब तो सब वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) दास ही हैं।

सबै कहैं—सब हम को नीच (भारतीयों को अब तक सब देशों में 'कुली' नाम से पुकारा जाता था) कहते हैं, और हम भी अपने को नीच ही मानते हैं। मन मलीन और शरीर से दुर्बल होकर हम किसी तरह दिनों को धक्का दे रहे हैं—दिन बिता रहे हैं।

कौन काज—हे रघुकुल नाथ! तुमसे हाथ जोड़कर यह पूछते हैं कि हम किस लिये जन्म लेते और मरते हैं, और किस पाप के कारण हमारी यह हालत हुई है?

अयोध्यासिंह उपाध्याय

वीरवर सौमित्र

१—२ कर करवाल—करवाल = तलवार। विशिखादिक = तीर आदि से। लख = देख। रुधिर प्रवाह = खून की धारा। शतखंड = सौ टुकड़े। गयंद = हाथी। व्याल = साँप। विपुल = बहुत, समूह। केहरि = बब्बर शेर।

हाथ में तलवार लेकर पृथ्वी पर निधड़क विचरना, तीर आदियों से बींधे जाने पर भी पीछे पैर न हटाना, खून की धारा देखकर और अधिक जोश में आना, रोम-रोम के छिद जाने पर भी चित्त की दृढ़ता न खोना, और लोथ पर लोथ गिरते देख, तथा सिरों को कटते देख, तथा शरीर के सौ टुकड़े होते देखकर भी विचलित न होना, तोपों के बरसते हुए अग्निकांड को देखकर भी चित्तमें न डरना और सिर पर से गोलों को गुज़रते देखकर भी न काँपना; मदमस्त हाथी से भिड़ना और बब्बर शेर से लड़ना, और दौड़कर हाथ से बहुत ही क्रुद्ध साँप को पकड़ना तथा काल का भयानक मुँह देखकर भी धीरता न छोड़ना, साथ ही अनेक वीरों से अकेले लड़ना यद्यपि बड़ी भारी वीरता है।

३ किन्तु वीरता—वर = श्रेष्ठ, बढ़िया। वज्रशरीरता = वज्र जैसा दृढ़ शरीर होना।

परन्तु इनसे भी उच्चकोटि की और कई वीरताएँ हैं जो कि (ऊपर) वर्णन की गई वीरताओं से भी श्रेष्ठ कही गई हैं। स्वार्थ त्याग करना और क्रोध से जीता न जाना, विपत्तिकाल और आड़े मौके पर भी धैर्य न खोना, ऐसे ही कितनी और दूसरी तरह की वीरताएँ हैं जिनमें न तो बहुत बल चाहिये, और न वज्र जैसा कठोर शरीर ही।

४ रामानुज में—रामानुज = राम का छोटा भाई लक्ष्मण। कीर्त्ति निकेत = यश का घर। कलित = सुन्दर।

राम के छोटे भाई लक्ष्मण में दोनों प्रकार की वीरता ही दीखती है, जो कि समय समय पर चित को बहुत ही लुभाती है। जब पति को वन में जाते देख सीताजी घबराई थीं, और जबकि पुत्र की जुदाई देख कौशल्या जी भी रो पड़ीं थीं उस समय सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने जो आत्मबल दिखलाया, वह उनके यश के मकान का सुंदर और अटल खंभा है—अर्थात् उस आत्मबल ने उनके यश को अटल कर दिया है।

५ तजा उन्होंने—सुर-उर-ग्राही = देवताओं के चित्त को भी खींचने वाला। जाया = स्त्री। भायप = भ्रातृभाव।

उन्होंने देवताओं के भी चित्त को खींचने वाला राज-भवन का सुख छोड़ दिया, सब भाँति प्रशंसा के योग्य सुमित्रा जैसी माँ को भी छोड़ दिया, जिसका विरह कभी किसी के सम्मुख नहीं आया, ऐसी परम सुशीला उर्मिला जैसी स्त्री को भी छोड़ दिया (कवियों ने सीता, दमयन्ती, आदि के विरह का बहुत गान गाया, पर उर्मिला के १४ साल के विरह पर किसी ने एक पंक्ति भी नहीं लिखी, अतएव वह जनता के सम्मुख मानों आया ही नहीं) परन्तु बचपन की प्रीति की डोरी में बँधे और भ्रातृ-भाव के रंग में रँगे लक्ष्मण अपने प्यारे भाई को न छोड़ सके और उसके पीछे लगे (साथ-साथ) जंगल को गये।

६ यों उनका—आत्मबल-संभवा = आत्मबल से उत्पन्न होने वाली।

इस तरह उनका अपनी स्त्री, माता और राज-सुख को छोड़ जाना, यति-भाव से वन में चौदह बरस बिताना तथा राम और सीता को पिता, माता, और स्वामी समझकर वन में अनेक दुःख सहकर भी उनका आज्ञाकारी बना रहना संसार को चकित कर

देने वाला काम है, और यही मनोहर धीरता से मिली हुई आत्मबल से उत्पन्न अलौकिक वीरता है।

७. कुसुम चयन—कुसुम = फूल । अलकावलि = केशपाश जूड़ा। केलिरत = प्रेमक्रीड़ा में मग्न। उटजादि = झोंपड़ी आदि। कर्त्तन = काटना। किसलय = किशलय, कोमल पत्ता। यामिनी = रात। सुमुखी = सुन्दरी। नखतावलि = तारों का समूह।

जिस समय रामचन्द्र फूल चुन चुन कर सीता के जूड़े में लगाते, या जब सीता के संग अन्य प्रेम-लीलाओं में मग्न देखते, उस समय लक्ष्मण सुन्दर कुटी आदि बनाते और सुन्दर शाल वृक्ष की शाखा काटते दिखाई देते थे। जो रात रामचन्द्रजी कोमल पत्तों की सेज पर पत्नी के साथ सोकर बिताते थे, वह रात लक्ष्मण जागते हुए तारों के गिनने में बिताते थे।

८ कभी जानकी—पेटिका = पेटी। दुरारोह = जिस पर कठिनता से चढ़ा जा सके। सरसि = तालाब। गमनागमन = आना जाना। वसन = कपड़ा। पादप = पेड़।

कभी जानकी के कपड़े और आभूषणों की पेटी हाथ में लिये वे कठिनता से चढ़े जाने योग्य ऊँचे पहाड़ पर चढ़ते दिखाई देते थे, कभी लता और बेल काटते और कटीले पेड़ों को अलग करके घने जंगल में रास्ता बनाते दिखाई देते थे। और कभी सीता जी की कुटी से तालाब तक आने जाने के लिए पेड़ों पर कपड़े बाँधकर रास्ते पर निशान बनाते दिखाई देते थे।

९. यक तुषार से—तुषार = बर्फ़, कोहरा। सीकरमय = जल-कण से युक्त।

एक कोहरे से मलिन चाँदनी वाली रात में, जब कि वह समाप्त होने वाली थी, और वन में बड़ी सरदी थी, वे तालाब में पानी भरते हुए और जलकणों (ओसकणों) से युक्त घास के बीच में बच बच कर पैर रखते हुए दिखाई दिये थे। एक बादलों

से घिरी हुई रात में अपने सिर पर पानी की झड़ी को सहते हुए वे चूती हुई कुटिया के लिए पत्ते लाते हुए मिले थे।

१०. यह अति कोमल—कुवलय-कर-लालित = कमल के समान कोमल हाथों से खिलाया गया। व्यंजन = स्वादिष्ट भोजन। विभव = ऐश्वर्य, सम्पत्ति। अवगत = ज्ञात। रामरत = राम के प्रेम में मग्न।

कमल के समान कोमल हाथों से खिलाया गया, सुख से पाला गया, सोने की तरह उज्ज्वल कांतिवाला, फूलों की सेज पर सोने में चतुर (जिसे फूलों के सेज पर सोने की आदत थी), कोमल पृथ्वी पर विचरण करनेवाला, और स्वादिष्ट भोजन, अच्छे कपड़े तथा अत्यधिक ऐश्वर्य का अधिकारी वह सुकुमार राजकुमार जब जंगल में कठोर व्रत करता दिखाई देता था, तब संसार को यह ज्ञात हुआ था कि वह राम के प्रेम में कितना मग्न है

११. सुन कर धनु—मेदिनी = पृथ्वी। दिग्दन्ती = दिशाओं के हाथी। दलक = किसी चोट के कारण काँपना। विशिखवृन्द = बाणों का समूह। शोणित = खून। वह्नि = आग। त्रिपुरान्तक = त्रिपुर राक्षस को मारने वाले, महादेव। पग रोपते = पैर धरते।

जिसके धनुष की टंकार सुन कर पृथिवी थर्रा जाती थी, और दिशाओं के हाथियों की छाती दुगुनी काँप उठती थी, जिसके बाणों के समूह से आकाश घिर जाता था, और जो दशों दिशाओं में खून का सोता बहाता था, वह वीर लक्ष्मण जिस समय रण भूमि में पैर रखता था, उस समय प्रलय की आग दहकती दिखाई देती थी, और महादेव क्रुद्ध हुए दिखाई देते थे।

१२ अमर वृन्द जिसके—अमर = देवता। पूषण = सूर्य। पाहन = पत्थर। गठित = बनी हुई। काया = शरीर। रिपुदमन = रिपुओं का दमन (मर्दन) करने वाला।

जिसके डर से देवता थर-थर काँपते थे, जो युद्ध-भूमि में प्रचंड सूर्य के समान तपता था, जिसका शरीर पत्थर का बना हुआ था (पत्थरों के समान कठोर था), जिसकी (राक्षसी) माया अनेक तरह की और बड़ी भयंकर थी, वह बड़ा साहसी तथा शत्रुओं का दमन करने वाला मेघनाद भी जिसकी क्रोधरूपी आग में जल गया, वह सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण धन्य है।

१३ कुंठित मति—कुंठित मति = मंद बुद्धि। पौरुष = पुरुषार्थ। अपर = दूसरे। हिमगिरि = हिमालय। अमरावती = इन्द्र की नगरी। राकारजनी = पूर्णमासी की रात।

वे मंद बुद्धि होने से, पुरुषार्थ की कमी या लाचारी से अथवा किसी स्वार्थ साधन के लिए रामचन्द्र के अनुगामी (आज्ञाकारी) न थे, वरन् उनके हृदय में न्यारी भ्रातृ-भक्ति थी, जिसने उनके दूसरे विचारों पर मोहिनी डाल दी थी (दूसरे भावों को जीत लिया था)। मानों उनके जीवन-रूपी हिमालय की चोटी पर अमरावती से गिरी हुई पूर्णिमा की चाँदनी की तरह उज्ज्वल स्नेह से युक्त वीरता शोभित थी।

१४ वे वासर थे—वासर = दिन। शुचि = पवित्र।

वे दिन बहुत सुन्दर तथा दिव्य दिखाई देते थे जब कि भारत में लक्ष्मण जैसे भाई विराजमान थे। आज तो घर-घर में झगड़ा और छल कपट फैला हुआ है, भाई का हृदय भाई से मैला हो गया है। हे प्रभो ! फिर लक्ष्मण जैसे भाई घर-घर में पैदा हों, शोभित हों और पवित्र चरित्र वाले सुखी परिवार फिर भारत भूमि में बसें।

फूल और काँटा

१ हैं जन्म लेते—काँटा और फूल दोनों एक ही जगह पैदा होते हैं, एक ही पौदा उन्हें पालता है। रात में चमकता हुआ चाँद भी उन पर अपना एक ही सा प्रकाश डालता है।

२ मेह उन पर—उन पर एक-सा ही मेह बरसता है, एक-सी ही हवायें बहती हैं, पर हमें हमेशा यही दिखाई देता है कि उन की चाल-ढाल एक सी नहीं होती।

३ छेद कर—काँटा किसी की उँगलियों को छेद देता है, किसी के सुन्दर वस्त्र फाड़ डालता है, प्यार में डूबी हुई तितलियों के पर कतर देता है, और भौंरे के काले शरीर को वेध डालता है।

४ फूल लेकर तितलियों को—फूल तितलियों को अपनी गोद में ले लेता है और भौंरे को अपना अनूठा रस पिलाता है। अपनी सुगन्ध से और विचित्र रंगों से जी की कली को खिला देता है—जी को प्रसन्न कर देता है।

५ है खटकता एक सब की—सुर-सीस = देवताओं का सिर।

एक सब की आँखों में खटकता है और दूसरा देवों के सिर पर शोभित होता है। फिर बताओ जब किसी में बड़प्पन की ही कमी हो तो उसके कुल की बड़ाई किस काम में आवे।

———

भगवानदीन "दीन"

आँसू

दीन-दुखियों के—ग़रीब और दुखियों के दुखे हुए दिल के लाडले आँसू, प्रेममार्ग के यात्रियों—प्रेमियों—के प्यारे आँसू, डरी हुई आँखों के तारे आँसू, भक्तिरस से भीगे हुए मान के आँसू, आदि-कवि बाल्मीकि के परमपुष्ट सहारे आँसू* हे खारे आँसू! तेरी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ?

शोक से—दुख से, या डर से जब कभी दिल घबरा जाता है, खुशी से या ईश्वर की भक्ति से जब कभी दिल भर आता है, हे खारे आँसू! तब तू शीघ्र ही लपक कर आँखों पर आ जाता है, तथा दिल के सब भेद—सब रहस्य—खोलकर एकदम बतला देता है और दिल की हालत का तू पता दे देता है। हे खारे आँसू! तेरी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ?

पूत की आँख—हे खारे आँसू! पुत्र की आँखों में माता जो कहीं तुझे देख पाती है तो दौड़कर झट से तुझे अपने अंचल में बिठा लेती है अर्थात् अपने आँचल से झट तुझे पोंछ देती है। ऐसे ही प्यारी की आँखों में जब कभी तू चमकता है, तब झट से उसके प्रेमी का हाथ तुझे सुन्दर कपड़े पहनाता है अर्थात् तुझे कपड़े से पोंछ देता है। इस तरह तेरा अजब आदर होते देखा गया है। हे खारे आँसू! तेरी महिमा कौन कह सकता है ?

द्रौपदी-दृग—द्रौपदी की आँखों में जब तू चमका था, तब तूने सब कौरवों का नाश कर दिया था अर्थात् जब भीम ने दीन-दुखी

---

* पृष्ठ ३१२ के फ़ुटनोट की कहानी देखिये।

द्रौपदी की आँखों में आँसुओं को देखा था तब उसने आवेश में आकर कुरुकुल के नाश करने की प्रतिज्ञा की थी, जिसका फल सब को विदित ही है। (यही आवेश दिलाकर) तूने भीम को भाई ही का खून पिलाया था और अर्जुन के हाथ से अवध्यों (न मारने योग्य पितामह, गुरु, भाई इत्यादियों) को मरवाया था। हे खारे आँसू! तूने अपने बल से क्या काम नहीं किया अतः तेरी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है?

मातु के नैन—माता की आँखों से गिर कर जो तूने गज़ब ढाया और परशुराम से जो काम कराया था उसका वर्णन क्या करूँ। तूने संसार को इक्कीस वार क्षत्रियहीन करवा दिया था* यह तेरी माया सारे संसार को विदित है; तूने ही परशुधर को वह ज़ोर दिया था। हे खारे आँसू! तेरी महिमा कौन कह सकता है?

---

*परशुराम की मासी सत्या का विवाह हैहयाधिपति कार्त्तवीर्य से हुआ था। कार्त्तवीर्य का नाम सहस्रार्जुन भी था क्योंकि उसके हज़ार हाथ थे। एक दिन परशुराम की माता रेणुका अपनी बहन सत्या के यहाँ किसी व्यावहारिक अवसर पर न्यौता खाने गई। चलती बार उसने अपनी बहन से कहा कि बहन तुम भी कभी मेरे घर पर आओ। इस पर उसकी बहन बड़े अभिमान से बोली तुम दरिद्र ऋषि की स्त्री हमारी सेना को कहाँ से खिलाओगी? रेणुका को यह बात लग गई। उसने घर आकर अपने पति जमदग्नि ऋषि से कहा। संयोगवश एक बार कार्त्तवीर्य आखेट खेलते हुए जमदग्नि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने कामधेनु गौ द्वारा सेनासहित राजा का सत्कार किया। कामधेनु का यह प्रभाव देखकर राजा ने ऋषि से वह गौ माँगी, पर जब ऋषि ने देने से इन्कार कर दिया। तब राजा जबर्दस्ती गौ छीन कर चल दिये।

आदि कवि—आदि कवि बाल्मीकि की आँखों में जब तू आया था तब तूने उनके मुख से 'मा निषादादि' श्लोक बुलवाया था तथा उसके बाद राम के चरित को प्रत्यक्ष कर दिखलाया था और बाल्मीकि रामायण का सा बड़ा ग्रन्थ बनवा दिया था। हे आँसू! कविता का मूल तू ही है।* अतः हे प्यारे आँसू! तेरी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है?

उस समय परशुराम आश्रम में नहीं थे, जब परशुराम आश्रम में लौट कर आये तब उसके पिता ने उन्हें सारा हाल बतलाया। परशुराम उसी समय राजा के पीछे गये, और उसे मारकर गौ वापिस ले आये।

इधर कुछ दिन बाद जब परशुराम आश्रम से बाहर गये हुए थे तब अवसर पाकर सहस्रार्जुन के बेटे आश्रम में घुस गये और जमदग्नि ऋषि का सिर काट कर अपने नगर को चल दिये। जब परशुराम आश्रम में लौटे तब उन्होंने अपनी माता को बिलखते देख कर कारण पूछा। रेणुका ने सब बातें कह सुनाईं और इक्कीस बार छाती को पीटा तथा शत्रुओं से इसका बदला लेने की आज्ञा दी। परशुराम उसी समय सहस्रार्जुन की राजधानी में गये और सहस्रार्जुन के सब बेटों को मारकर उन्होंने इक्कीसबार शेष क्षत्रियों का भी नाश किया।

*एक बार बाल्मीकि मुनि तमसा नदी के किनारे बैठे हुए सन्ध्या-वंदन कर रहे थे। नदी के दूसरे तीर पर एक सुन्दर क्रौंच पक्षी का जोड़ा केलि-क्रीड़ा कर रहा था। इतने में ही किसी निर्दयी व्याध ने उस जोड़े में से नर को तीर का निशाना बनाया। वह निरपराध पक्षी खून से लथ-पथ हो पृथ्वी पर गिर कर छटपटाने लगा। नर की यह दशा देख मादा बहुत दुखी हो विलाप करने लगी। इस करुणापूर्ण

जगन्नाथ दास रत्नाकर

हरिश्चन्द्र-परीक्षा

१ चलि सुरपुर—सुरपुर = स्वर्ग। अवधपुरी = अयोध्या। सुभग = सुन्दर। उपवन = बाग। आराम = बाग। तरुवर = सुन्दर वृक्ष।

स्वर्ग से चलकर विश्वामित्र मुनि अयोध्या नगरी में आये और उन्होंने वहाँ की सुन्दर मनोहर शोभा देखी। अयोध्यापुरी में सब तरह से सुख देने वाले और मन को हरने वाले, वन, बाग तथा बगीचे थे, जिनमें पत्तों एवं फल-फूलों से हरे-भरे तथा लदे हुए सुन्दर वृक्ष लहलहाते थे।

२ विवध गुनावन—करत गुनावन = विचार करते हुए। राजपौरी = राजद्वार। रचना = बनावट, ऊँचे ऊँचे मकानों की बनावट। निज सृष्टि शक्ति = सृष्टि उत्पन्न करने की अपनी शक्ति। रजत = चाँदी। हेम = सोना। मुकता = मोती। मञ्जुल = सुन्दर। विराजत = शोभित था। खचित = जड़ा हुआ।

दृश्य ने धर्मात्मा ऋषि को पिघला दिया, उनकी आँखों में आँसू आ गये, और सहसा उनके मुख से निकल पड़ा:—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

हे निषाद! तुम भी इस संसार में अधिक दिन तक जीवित न रहो, क्योंकि अकारण ही क्रौंच के जोड़े में से एक को, जो काम से मोहित था, तुमने मारा है। दयार्द्र मुनि के मुँह से जो यह सहसा वाणी निकली वह चार चरणों में बँटी हुई, लयसंयुक्त और वीणा पर गाने योग्य थी। इसका नाम श्लोक रक्खा गया। इस से पहले जगत् में केवल वैदिक छन्द ही प्रचलित थे, लोक में छन्द-रचना न होती थी। इसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने इन्हीं छन्दों में अपना रामायण नामक बृहद्ग्रन्थ लिखा, अतएव इनको 'आदि कवि' कहा जाता है और आँसुओं को या करुणा-रस को कविता का मूल कहा जाता है।

तरह तरह के विचार करते हुए वे राजद्वार पर आये, वहाँ की बनावट (शोभा) देख कर उनका अपना सृष्टि-निर्माण का सब घमण्ड जाता रहा।* चाँदी, सोना, और मोतियों से

---

* राजा हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे, उसके लिए उन्होंने अपने पुरोहित वसिष्ठ से कहा, पर उन्होंने उत्तर दिया कि यह असम्भव बात हम से न होगी। तब त्रिशंकु वसिष्ठ के पुत्रों के पास गया, पर उन्होंने भी पिता की तरह इनकार कर दिया। इस पर त्रिशंकु ने दूसरा पुरोहित करना चाहा पर वसिष्ठ के पुत्रों ने शाप द्वारा उसे चांडाल बना दिया। तब वह दुखी होकर विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र ने वसिष्ठ से अपने पुराने वैर का बदला चुकाने के लिए राजा से प्रतिज्ञा की, कि वे उसे इसी देह से स्वर्ग भेजेंगे और उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ किया। यज्ञ में और सब ऋषि आये पर वसिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये। विश्वामित्र ने शाप द्वारा उनको भस्म कर दिया। यह देख कर डर के मारे अन्य ऋषि यज्ञ करने लगे पर देवताओं ने यज्ञ-भाग न लिया। इस पर विश्वामित्र बहुत बिगड़े और केवल अपनी तपस्या के बल से ही वे त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजने लगे। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है, तो उसने पुकारा कि तू यहाँ आने योग्य नहीं है, "नीचे गिर।" त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और उसने विश्वामित्र को "त्राहि त्राहि" पुकारा। विश्वामित्र ने तपोबल से उसे वहीं बीच ही में रोक दिया और क्रुद्ध होकर उन्होंने दक्षिण की ओर दूसरी सृष्टि तथा नक्षत्रों की रचना की, और बहुत से जीवजन्तु बनाये। तब इन्द्रादि देवता लोग डर कर इन से क्षमा माँगने आये। इस पर विश्वामित्र ने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रख कर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति स्थिर करके आगे सृष्टि बनानी बन्द कर दी।

युक्त सुन्दर महल विराज रहा था जिसके दरवाजे पर बड़े-बड़े अच्छे जड़े हुए मणि शोभित हो रहे थे।

३. टरै चन्द—"सूर्य और चन्द्र चाहे अपने नियम से टल जायँ और मेरु पर्वत भी चाहे टल जाय (अपने स्थान से विचलित हो जाय) समुद्र चाहे अपनी जगह (मर्यादा) छोड़ दे परन्तु राजा हरिश्चन्द्र उज्ज्वल सत्य से कभी विचलित नहीं होगा।" इस अभिमानयुक्त प्रतिज्ञा को पढ़ कर मुनि के मन में फिर ईर्ष्या उत्पन्न हो गई और उन्होंने भौंह चढ़ा कर मन में कहा—"भला देखेंगे तो"

४. तब लौं—पौरिया=दरबान। उमगि=उत्साहपूर्वक।

तब तक द्वारपाल ने दौड़ कर राजा को यह खबर दी कि महाराज आज इधर एक ऋषिवर ने कृपा की है अर्थात् द्वार पर एक ऋषिवर आये हैं। यह सुन कर राजा उत्साहपूर्वक स्वयं ही वेग से द्वार पर आये और प्रणाम करके तथा पैर छूकर आदर पूर्वक उन्हें सभा में ले गये।

५. बैठारयो—हिराये=दंग रह गये, अत्यन्त चकित रह गये।

बहुत तरह के विनय के शब्द कह कर सम्मान से राजा ने ऋषि को बैठाया और आनन्द से उन का शरीर पुलकित हो गया तथा आँखों में (आनन्द के) आँसू आ गये। राजा का स्वाभाविक (बेबनावटी) व्यवहार मुनि के मन को बड़ा ही अच्छा लगा और राजा की श्रद्धा, सुशील स्वभाव और नम्रता देख कर मुनि दंग रह गये।

६. पै बानि करि—परन्तु फिर उन्होंने वाणी को उदासीन

करके अपना परिचय दिया और कहा हे राजन्! सुनो, जिसका तुमने इतना आदर किया वे हम कौन हैं? जिसके तप के बल से सारे ब्रह्माण्ड में आतंक फैल गया था और विष्णु भगवान का आसन विचलित हो गया था तथा जो तप के बल से क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि हो गया है—

७. कौसिक विस्वामित्र—वे ही हम कौशिक (कुशिक राजा के वंशज) विश्वामित्र सारी पृथ्वी का दान लेने की इच्छा से तुम्हारे पास आये हैं। तुमने हमें जान लिया है और हमारे आने का कारण भी तुम जान गये हो, अब तुम्हारे हृदय में जो विचार हो सो शीघ्र कहो।

८. कह्यौ भूप—सुपात्र=अधिकारी। हूकै=चुभती रहेगी।

राजा ने कहा "हे ज्ञानी मुनि! जान बूझ कर क्यों आप मुझ से इस प्रकार पूछते हैं? यदि आपने सारी पृथिवी का दान लेने का सङ्कल्प कर लिया है तो इसमें सोचना कैसा? भगवन्! यदि आप जैसे अधिकारी को पाकर दान देने में तनिक भी चूक जाऊँ, तो यह भूल सदा मेरे मन में चुभती रहेगी।

९. लीजै मानि—प्रमोद=आनन्द। स्वस्ति=कल्याण। स्रवन=कान। लेख्यौ=मन ही मन ठहराया।

लीजिये बड़े आनन्द के साथ तथा आदरपूर्वक मैंने सारी पृथिवी आपको दान कर दी—मुनि ने "कल्याण हो" ऐसा कह कर मन में राजा की बड़ी प्रशंसा की और (मन ही मन) कहा कि जैसा मैंने कानों से सुन रक्खा था उससे बढ़ कर

आँखों से देख लिया है। सचमुच ही राजा हरिश्चन्द्र उत्तम चरित्रशाली है ऐसा मुनि ने निश्चित किया।

१०-११ सद्-गुन-गन—सद्-गुण गन-आगार=शुभ गुणों का कोप। तचैं पचैं=हाथ पैर मारते हैं। नैकु=थोड़े से भी। गुनि=सोचकर।

मुनि सोचने लगे—सत्य ही यह राजा श्रेष्ठ गुणों की खान है, धर्म का आश्रय है और परम उदार है। जिस भूमि के दस हाथ (जरा से टुकड़े) के लिए राजा लोग मस्तक कटा देते हैं, रुंड हो जाने पर भी लड़ते हैं और रुधिर के तालाब भर देते हैं, जिसके लिए स्वार्थ से घिरे हुए मनुष्य तप कर करके पच मरते हैं (हैरान हो जाते हैं) वह सारी पृथिवी एक तिनके की भाँति इसने छोड़ दी--माथे पर जरा भी बल नहीं आने दिया। अब मैं कौन सी कुचाल चल कर इसका व्रत भङ्ग करूं? फिर कुछ सोच कर बोले—राजन्! अब इस दान की कुछ दक्षिणा भी तो दो।

१२. कह्यो भूप—वेगि=जल्दी ही। आननहित=लाने के लिए।

राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—"भगवन! जो आपकी इच्छा हो वह लीजिए।" ऋषि ने कहा—"बस केवल एक हजार मोहरें दे दीजिये"—"जैसी आपकी आज्ञा" यह कह कर राजा ने तुरन्त ही मंत्री को बुलवाया और एक हजार मोहरें लाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक भेज दिया।

१३ यह लखि—विकराल=भयङ्कर। धर्मध्वज=धर्म की डींग मारने वाले। मृषा=झूठे। पन=प्रतिज्ञा।

यह बात देखते ही ऋषिवर ने दोनों भौंहों को तान कर क्रोध से नासिका को फुलाते हुए भयंकर लाल लाल आँखें करके कहा—"अरे झूठी धर्म की डींग मारने वाले! व्यर्थ ही सत्य का अभिमान करने वाले! तेरी धर्म में दृढ़ता, प्रतिज्ञा पालनता मैंने आज सब जान ली है—

१४ ऐसहिं तुच्छ—ऐसे ही छल कपट से तूने अपनी महिमा फैला रक्खी है, और जगत् में सत्यव्रती प्रसिद्ध हो गया है। जब तूने मुझे सारी पृथिवी दान कर दी है तब वह मेरी ही हो गई। तो हे मूर्ख! फिर इस राज्य के खजाने का तू कैसे मालिक रहा!

१५ सुनि मुनिवर—परुष = कठोर। सकाए = डर से सकुचाए, डरे। निहोरि = मनौती करके। बसाए = भरे हुए। तरनि = सूर्य।

मुनि के उन कठोर वचनों को सुन कर राजा डर से सकुचा गये, फिर हाथ जोड़ और मनौती कर विनय से भरे हुए वचन बोले—"हे दया के सागर, गुणों की खान ऋषिवर! क्षमा करो—क्षमा करो—तीनों लोकों को अपने तप और तेज रूपी सूर्य से प्रकाशित करने वाले ऋषिवर क्षमा करो।

१६. साँचहिं अब—सचमुच ही अब मैंने जान लिया कि मैं अनुचित बात कर बैठा हूँ, जो मैंने मन्त्री को स्वर्णमुद्रा लाने की आज्ञा दी। मैं तो दोषों की खान हूँ और मैंने आपके अनेकों अपराध किये हैं—परन्तु आप गुणों के अगाध समुद्र हैं, आप मेरे दोषों को क्षमा कर दीजिये।

१७. जिहि तिहिं—दारा = स्त्री। सुवन = पुत्र। भ्रूवंक = त्योरी चढ़ा कर। आतङ्क = रोब। मतिरंक = मूर्ख।

जिस किसी प्रकार मैं आपको हजार स्वर्णमुद्रा दे दूँगा। स्त्री-पुत्र समेत मैं इस ऋण को चुकाने के लिए बिक जाऊँगा। मुनि फिर त्योरी चढ़ा कर रोष सहित बोले "ऐ सूर्य वंश के कलङ्क! क्या तूने हमें बिलकुल मूर्ख समझ लिया है।"

१८. जा हित—पानिप = कांति। बिसद = विशद, स्वच्छ। विमल।

जिसके लिए तू इधर क्षमा माँग रहा है वही बात तू अब भी नहीं छोड़ता और अपने मुख की कांति के साथ साथ अपने विमल ज्ञान को मिटा रहा है—हे मन्दमति! जब सारी पृथिवी ही मेरी हो गई तो, किसके धन से तेरी यह नीच देह बिकेगी?

१९-२०. यह सुनि—समाने=लीन हो गये। अघ-ओघनि= पापसमूह। छैनी=काटने वाली। नरनाह=राजा।

यह सुन कर राजा फिर शोक के सागर में लीन हो गये। फिर बहुत प्रकार से विचार कर मोतियों के समान ये वचन उन्होंने मुख से निकाले—"सब शास्त्रों ने जिस काशी नगरी को तीनों लोकों से बाहर माना है, जिसे अविनाशी शिव अपने त्रिशूल पर धारण किये हुए हैं, जो सब पापों के समूह को नष्ट करके जबरदस्ती मुक्ति धाम देने वाली है, वही यदि हमारे ऋण को काटने वाली बन जाय तो यह कोई कठिन बात नहीं। यदि आप दयासागर हमें एक मास का समय दें तो हम वहाँ जाकर स्त्री और पुत्र समेत बिक जावें।

२१. सुनि भूपति के—बहुरि=फिर, अनंतर।

राजा के इन वचनों को सुन कर मुनि पहले तो बड़े

चकित हुए। फिर मन ही मन अपनी बुद्धि के अनुसार उनकी प्रशंसा करने लगे—"हे हरिश्चन्द्र! तुम्हारी धर्म की इतनी अधिक दृढ़ता धन्य है और सचमुच ही तुम तीनों लोकों में मनुष्यों को गौरवयुक्त करने वाले हो (वस्तुतः तुम यशस्वी हो!)

२२. पुनि बानि—फिर अपनी वाणी को कुछ उदासीन सा करके उन्होंने यह आज्ञा दी, कि तुम्हें दया करके एक मास का अवसर देते हैं। परन्तु जो एक मास के भीतर सब स्वर्ण-मुद्राएँ नहीं पायेंगे तो तुम्हें तुम्हारे सब पूर्वजों समेत शाप देकर नरक भेज देंगे।

२३. जो आज्ञा—उछाह=उत्साह।

राजा ने बड़ी प्रसन्नता से "जो आपकी आज्ञा" कह कर मस्तक झुका दिया और मन्त्री तथा अन्य सब राजकर्मचारियों को बुलवा कर उनसे बड़े उत्साह से उसी समय कह दिया कि "हमने आज से सारा राज्यभार ऋषिराज को दे दिया है।"

२४ बेगहिं उठि—राजा ने शीघ्र ही उठ कर अपने सिंहासन को प्रणाम किया और रानी शैव्या तथा पुत्र रोहिताश्व को साथ लेकर वे राज्य छोड़ कर चल दिये; किसी तरह का हर्ष या शोक उनके हृदय में उत्पन्न नहीं हुआ। उस समय वे और विचारों को भूल गये एक केवल ऋण उतारने का विचार ही उनके हृदय में व्याप्त हो गया।

———

देवीप्रसाद पूर्ण

मृत्युंजय

१. प्रतिनिधे खल—हे दुष्ट कराल काल के प्रतिनिधि, कुटिल, क्रूर, भयंकर, पापी, महानीच तथा अपवित्र मृत्यु तेरी दुष्क्रिया (काली करतूत) बड़ी विलक्षण है।

२. करत सैर हुते कल—हुते = थे। तुरग = घोड़े।

जो कल घोड़ों की रेशमी बाग हाथ में ले कर बाग की सैर कर रहे थे, अब उनकी कहानी ही सुनाई देती है, वे जगत रूपी बाग को छोड़ कर चल बसे।

३. रतन मन्दिर—अमंद = सुन्दर।

जो अति सुन्दर रत्नों के मंदिर में हमेशा रमण करते थे दो दिनों के फेर में ही वे आज घोर भयंकर श्मशान में सो रहे हैं।

४. गति सुधारन की करि—इसलिए अपनी गति (मृत्यु के उपरान्त की दशा) सुधारने का निश्चय करके चित्त में धीरज धरना उचित है। फिर जल्दी हो अथवा कुछ काल में हो हम काल को अवश्य ही जीत लेंगे।

५. सकल पापन—हमेशा सब पापों से बचकर बिना वासना (इच्छा) के शुभ कर्म करो। असली तत्व हमेशा ध्यान में रक्खा जाय, बस सुन्दर ज्ञान का यही सुखदायक मार्ग है।

६. जगत है मन—'यह संसार केवल मन की कल्पना मात्र है' जब यह निश्चय दृढ़ हो जाता है, और जगत् पूर्ण ब्रह्म ही दिखाई देता है, बस यही परिपूर्ण ज्ञान है।

७. पर दशा वह—पर यह पूर्ण ज्ञान की दशा तब तक सदा एक समान स्थिर नहीं रहती जब तक कि सब चराचर वासनाओं को छोड़कर मन को वश में नहीं करते।

८. सुहृद संग—मित्र संगी, भाई, सुंदरी स्त्री, सुख देने वाली संतान, घर, पृथ्वी, सुयश और संपत्ति की कामना सब को बस बंधन-मात्र ही समझना चाहिए।

९. यदि लखात असार—यदि तुम्हें संसार असार मालूम पड़ता है, और तुम्हारे हृदय में जगत् का बंधन बुरा लगता है, और दिल में मुक्ति की इच्छा उत्पन्न हो गई है, तो तुम ज्ञान को साधन बनाओ।

१०. तिमिर नाश—जिस तरह प्रकाश के बिना तिमिर (अंधेरे) का नाश नहीं होता, जिस तरह वायु के बिना बादल नष्ट नहीं होते, जैसे वर्षा के बिना निदाघ (गरमी) नहीं जाती, ऐसे ही ज्ञान के बिना मृत्यु नष्ट नहीं होती।

११. विलग वारिधि ते—चाहे मूर्ख कुछ ही समझें, परन्तु वारिधि (समुद्र) से तरंग अलग नहीं है। लहर और अंबुधि (समुद्र) दोनों ही जल हैं, ऐसे ही जगत को ब्रह्ममय ही समझो।

१२. कनक के—सोने के अनेक आकृति के चाहे कड़े अथवा किंकनी (करधनी) बनाइए तब भी वह सोने से अन्य कुछ नहीं होता, ऐसे ही सम्पूर्ण जगत को ब्रह्ममय समझो।

१३. भवन में—जैसे भवन में, मंदिर में तथा घड़े में आकाश अनेक प्रकार का दिखाई देता है तब भी शुद्ध बुद्धि वालों के लिए आकाश एक ही है, ऐसे ही सब में परमात्मा एक ही है।

मन बंदर

मन शरीर में रहता हुआ, त्रिभुवन में विचरता रहता है, कभी वह कुछ इच्छा करता है, कभी कुछ। कभी वह कुछ रूप धारण

करता है, कभी कुछ। पल भर में वह सारे संसार का चक्कर काट आता है, इसी पर कवि लिखता है—

हे मन रूपी वंदर! मैंने तुझे पहचान लिया है। तू भवन (शरीर) में बँधा हुआ भी त्रिभुवन में कूदता फिरता है। कभी तू बाजीगर है, कभी जादूगर है कभी बहुरूपिया है और कभी कलंदर (नाच नचाने वाला) है। कभी तू छोटा है, कभी तू भारी है कभी मच्छर है और कभी बड़ी-बड़ी मूंछों वाला है। कभी तू सवार है कभी तू पैदल है, कभी तू दारा (शाहजहाँ का बेटा जो उदार समझा जाता है) कभी तू सिकन्दर (के समान आक्रमणकारी) है। कभी महन्त है और कभी संत है, कभी गुरु है तो कभी चेला है, कभी कुबेर है और कभी इन्द्र है। कभी तू राई से दबकर ही बुरा मानने लगता है, और कभी तू पहाड़ गिरा देता है। कभी जल में विचरता है और कभी आग में; कभी तू मगर है और कभी समुद्र है। परन्तु हे मूर्ख मन, तू मछली है, और यह सब संसार अगम समुद्र है। इसमें अपनी उछल कूद को निष्फल समझ कर हे वन्दर, तू उस पूर्ण परमात्मा को न छोड़।

———

रामचरित उपाध्याय

वीरवचनावलि

१. निजबल से बलि के—पैठि=घुसकर, पहुँचकर। शीस=सिर। शेस=शेष नाग, जिसके फणों पर यह पृथिवी ठहरी मानी जाती है। शमन=दमन।

यदि मैं पाताल में घुस कर बलि के बंधन* को अपने बल से तोड़ न सका, यदि मैंने चन्द्रमा के कलंक को न मिटा दिया और यदि मेरे हाथों से यमराज न मरा, यदि मैं शेषनाग के सिर पर से पृथ्वी को छीन कर उसका भार अपने सिर पर न ले सका. और यदि मैं अपने शत्रुओं का दमन न कर सका तो मुझे लाख वार धिक्कार है। कवि का भाव यह है कि 'वीर' के कोष में असंभव शब्द नहीं है। जो किसी कार्य को असम्भव समझे वह वीर नहीं है।

---

* बलि और वामन की कहानी ३५वें पृष्ठ पर आ चुकी है। उसमें बताया गया है कि किस तरह भगवान ने वामन अवतार ले कर बलि से तीन पग पृथ्वी माँगी और किस तरह उन्होंने विराट रूप धारण कर तीनों लोकों को तीन पैर में नाप लिया। उस समय बलि ने अहंकार के साथ वामन महाराज से कहा कि तुम बड़े दरिद्र हो जो तुम मुझ सरीखे दानी से केवल तीन पग भूमि माँगते हो, इसलिए भगवान् ने ने गरुड़ द्वारा उसकी मुश्कें बँधवाईं। उसी बंधन का इस पद में उल्लेख है।

२ खाकर जिसे—जिस चीज़ को खाकर उगल देते हैं (कै कर देते हैं) उसे फिर कुत्ते ही खाते हैं पर बुद्धिमान जिसे एक वार छोड़ दें उसे वे फिर कभी नहीं छूते। हमेशा प्राणों के साथ ही उनका प्रण जाता है (उससे पहले नहीं) आग ठंढी कभी नहीं होती चाहे वह बुझ भले ही जाय। जब वह बुझ गई तो आग नहीं रही, पर जब तक आग रही तब तक गरम ही रही। इसी प्रकार वीर पुरुष भी प्राण रहते कभी अपने प्रण से नहीं टलते।

३ खाकर लात—जो लात खाकर अपना अपमान करा कर भी शांत रहते हैं वे साधु नहीं पर पूरे मूढ़ हैं, देखो धूल पर ही लात मारो तो वह भी सिर पर आरूढ़ होजावेगी (सिर पर चढ़ जावेगी) शत्रु से बिना बदला लिए कायर लोग रह ही जाते हैं। परन्तु तेजस्वी पुरुष तो शत्रु के सिर पर लात रख कर—उसे दबाकर—अपना यश फैलाते हैं।

विधि-बिडम्बना

१ जिसका पतन (अवनति, तबाही) निश्चित हो गया है, उसे अपने शरीर से भी अधिक ज़िद प्यारी होती है। उसकी विधिकी विपरीतता (भाग्य का उलटा होना) अटल है, यह विनय से या नीति से नहीं घटती।

२ जिसकी महिमा (बड़प्पन) को देखकर, दुष्टों की मंडली अनिश (हमेशा) निन्दा करती है। यदि उसको भाग्य का बल मिला है, भाग्य का सहारा है तो क्या संसार में यश निर्मल नहीं रहता? अर्थात् रहता है।

३ हे हृदय, तू अच्छी तरह स्थिर होकर—एकाग्र होकर देख कि जिसको नियति (भाग्य) का बल प्राप्त है उसके लिए कठिन

और काँटों से भरा रास्ता भी सुगम है अतः गम (खेद) करना फिज़ूल है ।

४ लाखों पुरुष यहाँ गुणों से युक्त और विविध शास्त्रों को जानने वाले पड़े हैं, हे हृदय ! बताओ तो उनमें से फिर एक दो ही ऐसे क्यों हैं जिन्होंने अपने सुकृत (भाग्य) से लोगों को अपना नौकर बना लिया है ।

५ पैदा होने का परिणाम ही मरना है, यदि मृत्यु नहीं तो फिर देह (शरीर) ही कैसे मिले । हे मन, बलवान् भाग्य की करतूत के कारण पतन और शरीर का देर से साथ है ।

६ हे मन, यदि दैवयोग से रमा (लक्ष्मी) रमणी (सुन्दरी स्त्री) और रमणीयता (सुन्दरता) मिल गई तो भी जिसे कविता-रूपी अमृत नहीं मिला उसे रसिकता सिकता (रेत) के समान है ।

७ यदि तुझे सौभाग्य से जलयुक्त तालाब के समान रस वाली सरस्वती अच्छी तरह मिल गई है तो हे मन ! तुझे वसुधा (पृथ्वी) पर ही अमरता देने वाला नया अमृत मिल गया है ।

८ हे मन वही चतुरानन (ब्रह्मा) के समान चतुर है, वही अच्छे भाग्य से सुशोभित मस्तक वाला है—अर्थात् वही भाग्यशाली है, जिसे अपने मन में दूसरे के काव्य की रुचिरता (सुन्दरता) चिरतापकरी (हमेशा दुःख देने वाली) न हो ।

———

अमीरअली

अन्योक्ति सुमन

१ मैना तू वन—हे मैना तू तो वनवासिनी (जंगल में रहने वाली) है (और दैवयोग से) पिंजरे में आ पड़ी है। इसे दैव की ही इच्छा समझकर तू इस पिंजरे में सुख मानकर शांत रहती है। तेरी कोमल वाणी के कारण ही तुझे चतुर कवि पक्षियों का सरदार कहते हैं। मीर कवि कहते हैं कि तू हमेशा मधुर वचन ही बोलती है, फिर भी तू धन्य है जो अब भी 'मैं ना' ही बनी हुई है, अर्थात् तुझ में "मैं पन"—अहंकार नहीं आया।

२ तोता तू—हे तोता, जब तू निपट नादान था,—जब तू बहुत ही छोटा था—तब तू पकड़ा गया था। और बड़ा होने पर तूने कुछ पढ़ लिया—राम-राम बोलना सीख लिया, फिर भी तू मूर्ख ही रहा, और तूने ज्ञान के भेद को—रामनाम के महत्व को—न समझा तथा अपना जीवन दूसरे के हाथ सौंपकर अपना घर (जंगल का घर) भुला बैठा है। 'मीर' कवि समझाकर कहते हैं कि हाय ! तू अब तक सोता है (तुझे अब तक होश नहीं है) और यदि तू अपने आप होश में न आया तो फिर तूने पढ़कर ही क्या किया ?

३ बगला बैठा—बगला सवेरे जल के किनारे ध्यान लगाकर बैठा है, सो ऐसा प्रतीत होता है मानो तपस्वी शरीर पर भस्म लगाकर जल के किनारे तप कर रहा है, परन्तु जब उस बगले ने किनारे पर मछली देखी, तो मीर कहते हैं कि झट से उसे चोंच से पकड़कर वह सारी की सारी निगल गया। हे बगुले, तुझे धिक्कार है, जो मछलियाँ पिछला वैर भुलाकर फिर भी तेरे पास आती हैं उनके भी तू प्राण हर लेता है।

४ कैदी होने—मीर कहते हैं कि कैदी होने से पहले अलि (भौंरा) स्वतंत्र था। उसे वायु ने मोहन मंत्र कहकर (कमल की सुगंध पहुँचा कर) ठग लिया। फिर कुछ तंत्र (जादू) सा करके उसे वह गहरे तालाब के पास खींचकर ले गई। वहाँ लकड़ी में छेद करने वाला भौंरा अचल प्रेम में पड़ गया, और उसे कोमल कमल ने भी कैदी बना लिया। लकड़ी में छेद करने वाला भौंरा कमल के—फूल को छेद कर बाहर नहीं निकल पाता।

५ जाने कीन्हों शमन—शमन = शांत। मतङ्गन = हाथियों का। स्वान = कुत्ता। ढिग = पास। ससा = शशक, खरगोश। कूकै = चिल्लाते हैं।

जिस शेर ने मस्त हाथियों का मान मिटा दिया है, हाय! आज दुर्भाग्य से वह पिंजरे में आ पड़ा है। अब कुत्तों के समूह भी उसके पास भूँकते हैं, और खरगोश तथा गीदड़ भी हँसते और कान के पास आकर चिल्लाते हैं। मीर कहते हैं कि चतुर लोग सच बात कह गये हैं कि किस पर कब क्या बीतेगी इसे कौन जानता है?

६ कोयल तू—हे कोयल! तू मन मोहकर किस देश को चली गई है, तेरे अभाव में—तेरे न होने पर—कौवा का भदेस (भद्दा) मुँह देखना पड़ा। वह है तो तेरे जैसा ही काला, परन्तु बड़ी कठोर कड़वी और न्यारी वाणी बोलता है। मीर कहते हैं, हे देव, कौवों के इस झुंड को दूर करो, फिर वसंत ऋतु लाओ जिससे कोयल मनोहर वाणी बोलें।

————

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही—त्रिशूल'

सत्य

१. सत्य सृष्टि का—मकरंद=फूलों का रस। सौरभ=सुगंध मलिन्द=भौंरे।

सत्य सृष्टि का सार है और सत्य ही निर्बल का बल है। सत्य सच्चा है, सदा रहने वाला है, अचल और अटल है। हे मित्रवर! जीवन-रूपी तालाब में यह सत्य ही कमल है, जिसमें आनन्द-रूपी मधुर पुष्परस है और सुयश (कीर्ति) रूपी स्वच्छ सुगंध है। मुनियों के मन-रूपी भौंरे इसी पर (समय समय पर) मचलते रहे हैं, उनके प्राण भी यदि गये तो इसी पर न्यौछावर होकर।

२. अटल सत्य—जिस मनुष्य के मन में अटल सत्य का प्रेम भरा हो, जो आत्मबल (आत्मा के बल) के देखने में आनन्द पाता हो, जो पशुबल (शारीरिक बल) को तुच्छ समझता हो, और तलवार को गर्दन का गहना मानता हो जो गोलियों की सनसन में भी सनकता—डरता—नहीं और जिसके जीवन में प्रेम ही प्राणों का आधार हो, और सत्य जिसके गले का हार हो और जिसे उस पर इतना प्यार हो—

३. सह कर सिर—उसे सिर पर भार (विपत्ति) सह कर भी चुप रहना होगा और आये-दिन की (रोज रोज की) बड़ी मुसीबतें सहनी होंगी। उसके लिए जेल रंगमहल के समान होगी और आहनी (लोहे की हथकड़ी) गहना (आभूषण) होगी। इतने पर भी उसे मुख से 'हा हंत' (अफसोस का एक शब्द भी) न कहना होगा। उसे परमात्मा से और

दुखी की हाय से डरना होगा तथा ताल ठोक कर अनीति और अन्याय से लड़ना होगा।

४ तुम होगे सुकरात—तुम सुकरात[1] होगे और तुम्हारे आगे ज़हर के प्याले रखे जावेंगे। ईसा[2] के समान तुम्हारे हाथों में हथकड़ी और पैर में छाले होंगे और काले सांप डस रहे होंगे इस पर भी तुम निश्चेष्ट रहोगे। इस नवजनित विषाद (नये पैदा हुए दुःख) से व्याकुल मत होना, अपने आग्रह पर, अपने वचन पर प्रह्लाद[3] के समान डटे रहना।

५. होंगे शीतल—तुम्हारे लिए आग के अंगारे भी ठंढे होंगे और मौत के मारने पर भी (तुम्हारे शरीर को नष्ट कर देने पर भी) तुम मर न सकोगे (तुम्हारा नाम अमर रहेगा)

---

१. सुकरात का जन्म ईसा से ४६९ वर्ष पहले हुआ था। ४० वर्ष तक इनके जीवन में कोई घटना नहीं हुई। इसके बाद पोरिडिया के युद्ध में वीरता दिखाने के कारण इनका नाम प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद इन्होंने तर्क-शास्त्र का अभ्यास किया और यूनान के प्रायः सभी काव्य और दर्शन पढ़ डाले। इससे इनकी तर्क-प्रणाली खूब प्रचण्ड हो गई, और बड़े बड़े तर्क-शास्त्री इनसे हार मानने लगे। धीरे-धीरे इन के विरुद्ध काफ़ी मण्डल खड़ा हो गया। फलतः युवकों को बहका कर धर्मनीति से भ्रष्ट करने का इन पर अभियोग लगाया गया और इन्हें विष-पान करने को विवश किया गया। ये महात्मा शांतिपूर्वक विष का प्याला पी गये, मरते दम तक ये निश्चिंतता से तर्क करते रहे।

२. ईसा को वधस्थान पर ले जाते समय फाँसी का दण्ड भी उनकी ही पीठ पर लाद कर ले गये थे, और जब वे महापुरुष कहीं ठहरते तो ऊपर से हंटर पड़ते थे इसीसे उनके पैरों में छाले पड़ गये थे।

३. प्रह्लाद की कहानी १४१ पृष्ठ पर देखिये।

तुम्हें क्या दुःख है अगर तुम्हारे सब साथी छूट जावेंगे, तो (वहाँ स्वर्ग में) चन्द्र और चमकीले तारे तुम्हारा मन बहलावेंगे। इस तरह दुख में भी सुख-शान्ति का नया अनुभव हो जायगा, और प्रेम के जल से द्वेष का सारा मैल धुल जायगा।

६. धीरज देगी—हे मित्रवर ! तुम्हें मीराबाई* धीरज देगी, जिसने भक्ति से प्रेमरूपी समुद्र की थाह पाली थी। वह सत्य पर डटी रही, और प्रेम से बाज नहीं आई थी। कृष्ण

---

* प्रचलित दंत-कथा के अनुसार महारानी मीराबाई का विवाह सिसोदिया-कुल-तिलक वीरवर सांगा के बड़े राजकुमार भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के दस वर्ष के भीतर ही मीरा विधवा होगई। तत्पश्चात् वे अपना सारा समय भजन कीर्तन में बिताने लगीं। भक्ति के आवेश में आकर प्रभुभक्त मीरा आनन्दमग्न होकर संत-मंडली की उपस्थिति में गिरिधरगोपाल की मूर्ति के आगे नाचती और गाती थीं--

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।"
छांडि दाई कुल की कान क्या करि है कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई॥

कुल-ललना भक्तिके आवेश में श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने नाचे भला राजकुल यह कैसे सह सकता था। अतः मीरा के देवर महाराणा विक्रमाजीतसिंह ने उनको उस मार्ग से रोकने के लिए बहुत प्रयत्न किये उनपर कई अत्याचार किये, पर भक्तिनी मीरा यह कब स्वीकार कर सकती थी। अंत में राणा ने प्रभुचरणामृत कह कर ज़हर का प्याला मीरा के पास भेजा। मीरा ने जानते बूझते भी उसे चरणामृत मान कर पी लिया। कहते हैं उस विष का उस भक्तिनी पर कुछ असर न हुआ। कुछ दिन बाद राणा ने मीरा को मेवाड़ से चले जाने को कहा। तदनन्तर मीरा वृन्दावन में बहुत दिन रही वहाँ से द्वारका चली गई, और वहीं रणछोड़जी के मंदिर में समा गई—फिर न उठीं।

के (प्रेम के) रंग में रँग कर उसने उज्ज्वल यश फैलाया। वह विष का प्याला भी पी गई फिर भी उसकी आई हुई (मौत भी) टल गई। और वह उसी कृष्ण भगवान की गोद में मरी जिसको पाकर वह जीगई, अपना नाम अमर कर गई।

७. सत्य रूप—हे सत्यरूप भगवान, मैं तुम्हारी ही शरण में रहूँगा, जो व्रत मैंने एक बार ले लिया है, उसे मृत्यु-पर्यंत पा लूँगा और सदा आपके चरण पकड़े रहूँगा। हे भय को दूर करने वाले देव (तेरे सिवा) और किसी से भी न डरूँगा। (मैं जानता हूँ) प्रेम मार्ग दूर का है (बहुत लम्बा है) और मौत ही उसकी पहली मंजिल (पहला पड़ाव) है। सुनता हूँ कि मंसूर का भी फाँसी के तख्ते पर यही मत था। ❀

❀ मंसूर एक मुस्लिम संत थे, जिस तरह वेदान्ती लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं, वैसे ही वे 'अनल हक' का जप करते थे अर्थात् 'मैं खुदा हूँ।' इस पर नाराज होकर उस समय के धर्माचार्यों ने उन पर पर्याप्त अत्याचार किये, और उनसे माफी माँगने को कहा। पर मंसूर ने यह स्वीकार न किया। खलीफा ने आज्ञा दी कि जब तक यह 'अनल हक' बोलता रहे तब तक इसे लकड़ियों से पीटा जाय और फिर उसका बध कर दिया जाये। लकड़ी की हर एक मार के साथ मंसूर के मुँह से 'अनल हक' शब्द निकलता था आखिर उन्हें फाँसी पर लेजाया गया। मंसूर ने उसका चुम्बन किया और सूली की सीढ़ी पर पाँव रखते हुए कहा—यह वीर पुरुषों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी है। सूली पर चढ़ाने से पहले उनके हाथ पैर काट डाले गये। तब वे बोले—"हे परमेश्वर! जिन्होंने मुझे इतनी पीड़ा पहुँचाई है, उन्हें तू सुखसे वंचित्त न रखना उन्होंने मेरे हाथ पैर काट कर तप करनेकी मेरी मंजिल को कम कर दिया है, अभी ये मेरा सिर काट देंगे, तो मैं सूली पर से तेरे दर्शन करने में समर्थ हो सकूँगा।" इसके बाद उनके नाक कान काट डाले गये, और अंत में इस दुरवस्था में उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया।

रामचन्द्र शुक्ल

अछूत की आह

१. एक दिन हम भी किसी के लाड़ले थे, और कभी किसी के आँख के तारे थे। तब हमारा बूँद भर पसीना झरता देख कर कोई घड़ों खून बहा देता था।

२. अनेक देवी देवताओं को पूज कर और कई (निर्जला) एकादशियों को बिना पानी पिये रह कर कई तीर्थों पर ब्राह्मणों को दान देकर तब कहीं माँ ने हमें गर्भ में पाया था।

३. जिस दिन हमारा जन्म हुआ था उस दिन फूल (काँस से मिलता-जुलता धातु जिसकी कटोरी, गिलास, थाली आदि बनती हैं) की थाली बजी थी। माँ के दुख की रातें कट गईं और सुख का दिन निकल आया था। और प्यार से हमारा मुख चूम कर माता-पिता स्वर्ग के समान सुख पाने लगे।

४. हाय, हमने भी कुलीनों की तरह ही जन्म पाया और बड़े प्यार से हम पाले गये। अब जी बचे हैं और फूले फले — बड़े हुए, तब क्या हुआ कि हम कीड़ों से भी तुच्छ समझे गये।

५. हमने पवित्र हिन्दुस्तान में जन्म पाया, यहीं का अन्न खाया और यहीं का जल पिया। हमें हिन्दू धर्म पर अभिमान है, और हम हमेशा भगवान का नाम लेते हैं।

६. पर इस लोक का व्यवहार बड़ा अजब है, अब संसार से न्याय तो चला ही गया है। जिन्हें कुत्ते (श्वान) छूना भी स्वीकार है, वे भी हम अभागों से घृणा करते हैं।

७. जिस गली से उच्च कुल वाले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य चलते हैं, उस तरफ हमारा चलना भी दण्डनीय समझा जाता है। (यह प्रथा अधिकतर मद्रास और दक्षिण भारत में है) क्या धर्मग्रन्थों की यही व्यवस्था है अथवा किसी कुलवान का यह पाखण्ड—ढोंग है।

८. हम अछूतों से छू जाने पर ये छूत मानते हैं, आप चाहे कुछ करें पर हमेशा पूत (पवित्र) हैं और ये सभी को पराया समझते हैं, हे प्रभो, क्या तुम्हारे यही (ब्राह्मण) दूत हैं।

९. सरकार से अधिकार मांगते हैं, पर अपना अन्याय नहीं छोड़ते। पुराना प्यार का नाता तोड़ कर हम से नया निराला सम्बन्ध जोड़ते हैं।

१०. हे नाथ, तुमने ही हमें पैदा किया है, और तुमने ही हमें रक्त, मज्जा और मांस दिया है। फिर हमें ज्ञान देकर मनुष्य बनाया। (पर बताओ इतने पर भी) हमें ऐसा अपवित्र क्यों कर दिया?

११. हे दयानिधि जो तुम्हें कुछ दया आवे तो अछूतों की जलती हुई आह का हिन्दुस्तान में यह असर होवे कि परस्पर प्रेम के पैर जम जावें।

उपदेश

१. अप्रमेय को न शब्द—अप्रमेय=जो नापा न जा सके, अपार, अनन्त। अथाह=जिसकी थाह न पाई जा सके। थहाना=गहराई का पता लगाना, थाह लेना। वाद=वादविवाद।

जो परमात्मा अपार है, जो नहीं नापा जा सकता उसको शब्दों में बाँध कर न बताओ। जिस परमात्मा की थाह नहीं पाई जा सकती, बुद्धि द्वारा उसकी थाह न लगवाओ। उसके बारे में पूँछ कर, और बता कर लोग भूल ही करते हैं, और उस प्रसंग को लाकर—उस चर्चा को छेड़ कर—लोग व्यर्थ में वादविवाद करते हैं। मूल पुस्तक में पहली पंक्ति में 'न' छूट गया है।

२. अन्धकार आदि में—पुराण कहते हैं कि (सृष्टि के) आरम्भ में केवल अन्धकार ही था, या अखण्ड महानिशा (प्रलय की रात) में केवल ब्रह्मा ही थे। अरे, न ब्रह्मा के फेर में रहो और न इस फेर में पड़ो कि आदि में कौन था, क्योंकि यह विषय इन चमड़े की आँखों से नहीं देखा जा सकता और बुद्धि से भी परे है, अर्थात् बुद्धि उस विषय को नहीं जान सकती।

३. चलत तारे—तारे चलते रहते हैं वे यह सब पूछने नहीं जाते। बस केवल इतना समझ लो कि इस संसार में जीना-मरना, सुख-दुख, शोक और उत्साह तथा कार्य कारण की लड़ी (जैसा कारण होगा, वैसा ही कार्य) और कालचक्र का प्रवाह हमेशा चलता रहता है।

४. और यह भवधार—भवधार = संसार की धारा। अविराम = बिना रुके। उद्गम = निकासस्थान। सरित = नदी।

और यह जो संसार की धारा बिना रुके निरन्तर चलती दिखाई देती है, यह ऐसी ही है जैसे दूर निकासस्थान से निकल कर नदी समुद्र की ओर बढ़ती जाती है। लगातार एक के पीछे एक जो तरंगें उठती रहती हैं वे सब एक हैं, पर एक सी दिखाई नहीं पड़तीं।

५. जानिवो एतो बहुत—भू = पृथिवी। धाम = लोक। परिणाम = बदलने का भाव या कार्य, एक रूप या अवस्था को छोड़ कर दूसरे रूप या अवस्था को प्राप्त होना। सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति का स्वभाव ही परिणाम (एक रूप या अवस्था से हट कर दूसरे रूप या अवस्था को प्राप्त होते रहना) है, प्रकृति के इसी स्वभाव के कारण संसार की उत्पत्ति, स्थिति और नाश होता है।

इतना जान लेना ही बहुत है कि यह पृथिवी स्वर्ग आदि सब लोक माया के दृश्य हैं और सब रूप बदलने वाले हैं अर्थात् एक रूप या अवस्था से हट कर दूसरे रूप या अवस्था को प्राप्त होते रहते हैं। इस तरह यह श्रम और दुःख से भरा हुआ अपार चक्र घूमता ही रहता है, इसको कोई भी किसी प्रकार रोक नहीं सकता।

६ ब्रह्म लोक तें परे—सनातन = सदा रहने वाली। सत्व = सतोगुण, जिसके लक्षण ज्ञान, शान्ति और शुद्धता आदि हैं। सर्ग = संसार।

ब्रह्म लोक से परे एक सनातन—सदा रहने वाली शक्ति मौजूद है, जो इस संसार में धर्म नाम से पुकारी जाती है। जिसका आदि और अंत नहीं है, और जिसके नियम अटल हैं, तथा जो कर्म फल को संचित कर संसार की गति को सतोगुण की ओर लेजाती है।

७ कला ताकी करति—घनपुंज = बादलों का समूह। रंजित = रंगयुक्त। द्युति = कांति। उपचार = पूजा। दामिनि = बिजली।

उसी की कला—शोभा—जाकर बादलों के समूह को रंग देती है। मोर की चन्द्रिकाओं पर भी उसी की कान्ति दिखाई देती है। नक्षत्रों में भी वही (उसी की चमक) है। बिजली चमक कर वायु बह कर और मेघ जल-धारा बरसाकर उसी शक्ति की पूजा करते हैं।

८ नाहिं कुंठित होति—कुंठित = मंद। उरोज = स्तन। व्याल = सांप। दशनन = दांत। गरल = विष। कराल = भयंकर।

कैसे भी व्यवहार करने में वह मंद नहीं होती। जहाँ भी जो कुछ भी होता है, वह उसी की रुचि के अनुसार होता है। जो शक्ति माँ के स्तनों में मीठा दूध भरती है वही साँपों के दाँतों में भयंकर विष रखती है।

९ गगन मंडप—वही शक्ति आकाश-रूपी मंडप में ग्रहों और नक्षत्रों को सजाकर और उनकी गति (चाल) नियत कर अपने सुर और ताल पर उनको नाच नचा रही है और वही शक्ति पृथिवी के गर्भ में पहुँचकर गहरे खात (गढ़े) में सोना, मानिक (लालमणि) और नीलम के ढेर छिपाकर रख देती है।

१० शक्ति तुम्हरे हाथ—तुम्हारे हाथों में देवों से कुछ कम शक्ति नहीं है। देवता, मनुष्य, पशु आदि जितने जीव इन लोकों में हैं, वे सब कर्मवश घूमते फिरते रहते हैं, और इस संसार के भार को उठाते हैं तथा अपने अपने कर्मों के ही अनुसार सुख पाते हैं और दुःख सहते हैं।

मैथिलीशरण गुप्त

भारतवर्ष की श्रेष्ठता

१. भूगोल का—पृथिवी का गौरवस्वरूप तथा प्रकृति का पवित्र क्रीड़ा-स्थान कहां है—अर्थात् जिससे पृथिवी का गौरव है, जहाँ प्रकृति अपना मनोरंजन करती है वह कौन-सा देश है? वह वही देश है जहाँ मन को हरने वाला हिमालय पहाड़ और पवित्र गंगाजल है। (भूमण्डल के) सब देशों से अधिक जिस देश की प्रशंसा फैली है? उस देश की जो कि ऋषियों की भूमि है। वह कौन सी है ? वह भारतवर्ष है।

२. हां वृद्ध भारतवर्ष—हाँ बूढ़ा भारतवर्ष ही संसार का सिरताज है ऐसा पुराना देश क्या ससार में कोई और (दूसरा) है ? भगवान के सांसारिक ऐश्वर्य का यही सब से पहला खज़ाना है और विधाता ने सब से पहले मनुष्य-सृष्टि का यहीं विस्तार किया था।

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध—यही प्रसिद्ध पुण्यभूमि (आर्यावर्त्त) है और इसके निवासी आर्य हैं। जो विद्या कला-कौशल आदि में सब देशों के प्रथम आचार्य थे। यद्यपि आज हम उनकी सन्तान अधोगति में पड़ गए हैं, हमारी अवनति होगई है, पर उनकी महत्ता (उन्नति) के कोई चिह्न आज भीकोई कोई खड़े हैं।

४. शुभ शान्तिमय—जहाँ की पवित्र तथा शान्ति से युक्त सुन्दरता सांसारिक बंधनों को खोल देती थी, जहाँ मृगों से हिल-मिल कर खेल करती हुई सिंहनी फिरती थी (अर्थात् जहाँ सिंहनी भी मृगों से खेल करती थी, उन्हें मारती न थी) जहाँ स्वर्गीय भावों से—उच्च विचारों से भरे हुए ऋषि हवन करते थे, उन्हीं ऋषिगणों से यहाँ (भारतवर्ष में) हमारी उत्पत्ति हुई थी।

५ उन पूर्वजों की—उन पूर्वजों (हमारे पुरखाओं) की

कीर्ति का वर्णन अत्यन्त अधिक है, हम ही केवल उनके गुण नहीं गाते अपितु सारा संसार उनके गुण गा रहा है। वे धर्म पर तिनके के समान अपने शरीर निछावर कर देते थे। उनके समान वेही श्रेष्ठ वीर थे, अटल धैर्य वाले थे और गम्भीर थे अर्थात् और कोई उनका मुकावला नहीं कर सकता था।

६ उनके अलौकिक—उनके अलौकिक—पवित्र—दर्शनों से पाप दूर हो जाता था; अत्यंत अधिक पुण्य मिलता था और हृदय का ताप (जलन) मिट जाता था। उनके उपदेश शांति देने वाले थे, और शोक को दूर करने वाले थे। सारा संसार उनका भक्त था, और वे लोक के हितैषी थे।

७ वे ईश नियमों—वे ईश्वर के नियमों की कभी अवहेलना (तिरस्कार) न करते थे, और अच्छे मार्ग में चलते हुए वे विघ्नों से न डरते थे। अपने लिए वे कभी दूसरों के हित को नष्ट नहीं करते थे। चिंता से युक्त अशांति-पूर्वक वे कभी मरते न थे, अर्थात् मरते समय वे समाधिस्थ होते थे, उन्हें कोई चिन्ता न रहती थी।

८ वे मोह बंधन—वे मोह के बंधनों से मुक्त थे, स्वच्छन्द थे और स्वतंत्र थे। सब प्रकार के सुखों से वे युक्त थे, और शांति के शिखर पर बैठे थे, उनमें बड़ी शांति थी। मन से, वचन से और कर्म से (तीनों प्रकार से) वे प्रभु-भजन में लीन थे और ब्रह्म के अनुभव से प्राप्त होने वाली प्रसिद्ध आनंद-रूपी नदी की मनोहर मछलियाँ थे अर्थात् जिस तरह मछली जल में आनन्द प्राप्त करती है वैसे ही वे ब्रह्म के अनुभव में आनन्द प्राप्त करते थे।

९ वे आर्य ही थे—वे आर्य ही थे, जो अपने लिए कभी जीते न थे, अपितु दूसरों के उपकार के लिए जीते थे, वे कभी स्वार्थ-वश हो मोह-ममता की शराब न पीते थे, अर्थात् मोह-ममता में न फँसते थे। जब वे सब संसार के उपकार के लिये जन्म लेते थे, फिर वे किस तरह कभी खाली (बिना कुछ किये धरे) बैठ सकते थे।

१० आदर्श जन संसार—संसार में इतने आदर्श जन किस देश में हुए हैं जितने कि सत्कार्यों में लगे हुए आर्यगण यहाँ पर हुए हैं। यद्यपि आज उनके कुछ रहे सहे गीत ही रह गये हैं, पर दूसरे देशों वालों के वचन भी हमारे लिए साक्षी ही रहे हैं, अर्थात् दूसरे देश वाले भी उनकी कहानियाँ कहकर हमारे वचनों की साक्षी दे रहे हैं।

११ लक्ष्मी नहीं सर्वस्व—केवल लक्ष्मी ही नहीं अपितु चाहे सर्वस्व (सब कुछ) चला जाय, तब भी सत्य नहीं छोड़ेंगे। ❀ अंधे

❀ राजा सत्यव्रत की तरफ निर्देश है जिसका नियम था कि उसके बाज़ार में जो चीज़ें बिकने के लिये आवें वे यदि दिन भर में न बिक सकें तो शाम को स्वयं राजा उन्हें खरीद लेगा। राजा सर्वदा अपने इस नियम का पालन करता था। एक दिन एक लुहार लोहे की बनी हुई शनिश्चर की मूर्ति लाया और कहने लगा कि उसका मूल्य एक लाख रुपया है, पर इसे जो खरीदेगा उसे लक्ष्मी धर्म, कर्म और यश आदि सब छोड़ जायेंगे। उसकी ऐसी बातें सुन कर उस मूर्ति को किसी ने न खरीदा। नियमा-नुसार शाम को वह मूर्ति राजा के सामने लाई गई। राजा ने सब कुछ सुन समझकर भी उसे खरीद लिया। अपने नियम को नहीं तोड़ा। आधी रात के वक्त एक सुन्दर स्त्री ने आकर राजा से कहा कि मैं तुम्हारी राजलक्ष्मी हूँ, तुम्हारे यहाँ शनिश्चर आगया; अब मैं नहीं रह सकती। मुझको विदा कीजिये। राजा ने कहा जाओ। इसी तरह धर्म, कर्म, और यश भी विदा हुए। अन्त में सत्य देव आये, और बोले कि हे राजा मैं सत्य हूँ, शनिश्चर के कारण मैं अब नहीं रह सकता, जाता हूँ। राजा ने उठकर हाथ पकड़ लिया और कहा कि लक्ष्मी, धर्म, कर्म और यश जाँय तो भले ही चले जायँ, पर आप कहाँ जाते हैं? आपको रखने के लिये ही तो मैंने शनिश्चर की मूर्ति ली है! सत्य से उत्तर देते न बना! जब सत्य न गया तब लक्ष्मी, धर्म, कर्म और यश आदि सब लौट आये।

हो जायँ पर सत्य से सम्बन्ध न तोड़ेंगे।* अपने पुत्र का मरना स्वीकार है पर अपने वचन का पालन होना चाहिये† ऐसा कौन है जो उन पुरुखाओं के आचरण का वर्णन कर सके।

---

* राजा अलर्क की तरफ निर्देश है जिस ने अन्धे ब्राह्मण के मांगने पर अपनी दोनों आंखें निकाल कर देदी थीं।

† राजा मयूरध्वज की तरफ निर्देश है। मयूरध्वज बड़े सत्यवादी, दानी और ब्राह्मण-भक्त राजा थे। उनकी ख्याति सब तरफ फैल रही थी। यम के कहने से एक बार विष्णु भगवान उनकी परीक्षा लेने को उद्यत हुए। उन्होंने ब्राह्मण का वेश धरा और यम ने सिंह का। दोनों राजा के यहाँ पहुँचे। राजा ने ब्राह्मण का बड़ा आदर सत्कार किया। ब्राह्मण ने कहा राजन् मैं आप के व्यवहार से संतुष्ट हो गया, अब इतना निवेदन है कि मेरे साथ जो यह सिंह है इसके भोजन का भार मेरे ऊपर है। इसकी यह आदत है कि यदि कोई अपने लड़के के दो टुकड़े करके इसके आगे डालता है तो यह केवल दाहिना अंग खाता है। इसकी जहाँ भूख मिट सके ऐसा मुझे कोई भी स्थान नहीं मिला। आप जैसा साधु और अतिथि प्रेमी संसार में दूसरा नहीं है इसलिए मैं आप के यहाँ आया हूँ। पर यह काम भी बड़ा मुश्किल है, इस लिए यदि आप के मन में ज़रा भी कष्ट हो तो न कर दीजिये जिससे मैं किसी दूसरे के दरवाजे पर जाऊँ। राजा ने कहा—महाराज अतिथि और ब्राह्मणों के लिए मैं सब कुछ दे सकता हूँ। ब्राह्मण-रूप-धारी भगवान ने फिर कहा—राजन्, सहसा कोई बात नहीं करनी चाहिए इस लिए एक बार फिर सोच लीजिए। पुत्र का बलिदान आसान काम नहीं और फिर पुत्र पर केवल आपका ही

१२ सर्वस्व करके—सर्वस्व दान करके जो राजा रंतिदेव* चालीस दिन भूखे रहे, फिर भी जो अतिथि सत्कार में रूखे न रहे, जिन्होंने

अधिकार नहीं, रानी का भी अधिकार है। राजा ने कहा—महाराज आपका कहना ठीक है पर वचन देकर अब सोचना क्या? मुझे निश्चय है कि रानी और कुंवर भी आपकी सेवा से मुख नहीं मोड़ेंगे।

रानी और राजकुमार को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने ज़रा भी खेद न माना। राजकुमार सहर्ष प्राण देने के लिए उद्यत हो गये। आखिर ब्राह्मण के कथनानुसार राजा और रानी आरा लेकर अपने हाथों से राजकुमार के दो टुकड़े करने लगे। राजकुमार प्रसन्नमुख थे पर इसी समय उन की आँख से एक आँसू निकल आया। यह देख ब्राह्मण चलने को उद्यत हो गया। उसने कहा—राजकुमार के हृदय में दुख है इसलिए इसे मेरा शेर नहीं खायगा। यह सुन कर राजकुमार ने कहा—महाराज मरने के भय से मेरी आँख से आँसू नहीं निकला। मेरे आँसू का कारण यह है कि मेरे शरीर के बायें भाग को दुःख है कि दायाँ भाग तो ब्राह्मण के काम आयगा, पर बायाँ वैसे ही रह जागया। इसीलिए मेरे केवल बायें नेत्र से आँसू निकला है। यह सुनते ही भगवान गदगद हो गये और उन्होंने अपने आप को प्रकट कर के राजा और राजकुमार को गले से लगा लिया।

* रंतिदेव एक बड़े दानी राजा थे, उन्होंने बहुत अधिक यज्ञ किये थे। एक बार सब कुछ दे डालने पर इन्हें ४८ दिनतक पीने को जल भी न मिला। उनंचासवें दिन वे कुछ खाने-पीने का आयोजन कर रहे थे कि क्रम से एक ब्राह्मण, एक शूद्र और कुत्ते को लिये हुए एक अतिथि आ पहुँचे। सब सामान उन्हीं के आतिथ्य में समाप्त होगया। केवल जल बच रहा। उसे पीने के लिए ज्योंही उन्होंने हाथ उठाया त्योंही एक प्यासा चांडाल वहाँ दिखाई दिया। राजा ने वह जल भी देदिया, अंत में भगवान ने प्रसन्न हो उन्हें मोक्ष दिया।

अतिथि-सत्कार में कमी न की और दूसरे को तृप्त करके जिन्होंने अपनी तृप्ति मानी ऐसे रंतिदेव के समान अतिथि को तृप्त करने वाले राजा किस देश ने पैदा किये हैं।

१३ आमिष दिया अपना—अमिष = मांस । श्येन = बाज़ अस्थियाँ = हड्डियाँ।

जिन्होंने अपना माँस बाज़ के खाने के लिए दे दिया जो अपने सत्य की रक्षा के लिए चांडाल के हाथ बिक गये थे, जिन्होंने दूसरों का कल्याण समझ कर अपनी हड्डियाँ दे दीं, ऐसे शिवि * हरिश्चन्द्र† और दधीचि‡ के समान दानी और किस देश में होते रहे हैं।

---

* शिवि की कहानी पृष्ट ३५ पर देखिये।

† हरिश्चन्द्र की कथा प्रसिद्ध है।

‡ राक्षसों से अत्यन्त सताये हुए देवता ब्रह्मा के पास पहुँचे और कहने लगे, भगवान् ! वृत्र राक्षस ने हमें बड़ा व्याकुल कर रखा है कोई उपाय बताइये। ब्रह्मा ने कहा--हे इंद्र ! मत घबड़ाओ, मैं समझता हूँ कि वृत्र राक्षस का संहार करना तनिक टेढ़ी खीर है परन्तु उसका केवल एक ही उपाय है और वह यह कि ऋषि दधीचि की--जो निष्काम भाव से घोर तपस्या कर रहे हैं--अस्थियों से एक अस्त्र निर्मित करो और उस से ही वह राक्षस मारा जा सकता है। इस पर सब देवता ऋषि दधिचि के पास पहुँचे और उन्हें सब वृत्तांत सुना उन्होंने अपनी अभिलाषा प्रकट की। कहते हैं कि बिना किसी सङ्कोच के उस त्यागी ऋषि ने देवताओं की रक्षा के लिये अपनी हड्डियाँ निकाल कर दे दीं।

१४ सत्पुत्र पुरु से—(इसी देश में) पुरु* के समान सत्पुत्र हुए जिन्होंने पिता के लिए सब कुछ सहा, भरत के समान भाई थे, जिन्होंने भाई रामचन्द्र के लिए राज्य भी त्याग दिया। जो धीरता और वीरता के बड़े पालक हुए, अर्थात् जो बड़े धीर और वीर थे ऐसे प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु से बालक यहाँ हुए।

१५ वह भीष्म का इन्द्रिय—भीष्म का वह इन्द्रिय-दमन (इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की शक्ति) और धरा (पृथ्वी) के समान धैर्य और उनका वह शील, उनकी वह वीरता, गंभीरता, अटलता तथा विशाल ज्ञान एक मनुष्य में अनुकरण करने लायक सब गुणों की एकता है।

---

* पुरु महाराज ययाति के पुत्र थे। जिनकी कहानी पृष्ठ २७२ पर दी है। महाराज ययाति का विवाह जब देवयानी से हुआ था तब दैत्यराज वृषपर्व की कन्या शर्मिष्ठा भी वचन-बद्ध होकर दासी-रूप में देवयानी के साथ गई। शुक्राचार्य ने कहा कि शर्मिष्ठा के साथ संभोग न करना। एक बार ययाति भूलकर यह कर बैठे। तब शुक्राचार्य ने उन्हें शाप दिया कि तुम्हें बुढ़ापा आजाय। जब ययाति ने बहुत विनती की तब शुक्राचार्य ने कहा कि यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा लेने को तैयार हो तो तुम फिर ज्यों की त्यों हो जाओगे। राजा ययाति ने अपने चारों पुत्रों से कहा कि तुम मेरा बुढ़ापा ले लो और अपना यौवन हमें दे दो। पर किसी ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में पुरु ने उनका बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दी। इस तरह ययाति कई वर्ष तक राज्य कर फिर पुरु को राज्य देकर वे वन में चले गये।

पंचवटी

१. चारु चंद्र की चंचल किरणें—चारु = सुन्दर। अंबरतल = आकाश। हरित = हरे।

सुन्दर चाँद की चंचल किरणें जल और स्थल में खेल रही हैं। आकाश और पृथिवी में स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है। धरती हरे तृणों की नोकों से मानों हर्ष प्रकट कर रही है। (जब प्रसन्नता होती है तब शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। धरती पर हरे तृणों को खड़े देख कर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानों वह भी पुलकित हुई हुई अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रही है) पेड़ मंद वायु के झोंकों से हिल रहे हैं मानों वे भी खुशी से झूम रहे हैं।

२. पंचवटी की छाया में—पर्ण कुटीर = पत्तों की कुटिया। निर्भीकमना = निडर मन वाला। धनुर्धर = धनुषधारी। कुसुमायुध = कामदेव।

पंचवटी की छाया में पत्तों की एक सुन्दर कुटिया बना कर उसके सामने स्वच्छ शिला के ऊपर यह कौन धीर-वीर तथा निडर मन वाला धनुर्धारी जाग रहा है जब कि सारा संसार सो रहा है? ऐसा प्रतीत होता है कि मानों भोगी कामदेव ने ही योगी का वेष बना लिया हो।

३. किस व्रत में है व्रती—विपिन = जंगल। प्रहरी = चौकीदार।

राजाओं के आसन पर बैठने के योग्य यह वीर किस व्रत में व्रती होने के कारण (किस प्रतिज्ञा के कारण) आज जंगल में वैराग्य लेकर तथा अपनी नींद को इस तरह छोड़ कर बैठा है। यह जिस कुटिया का चौकीदार बना हुआ है, उस कुटीर में ऐसा क्या धन है जिसकी रक्षा में इसका शरीर, मन तथा जीवन लगे हुए हैं?

४. कोई पास न रहने—अगर कोई पास न भी रहे तो भी मनुष्य का मन चुप नहीं रहता। वह अपने आपकी ही सुनता रहता है और अपने आप से कुछ कहता रहता है। बीच बीच में इधर उधर अपनी प्रसन्न दृष्टि डाल कर वह धीर धनुर्धर मन ही मन नई नई बातें करता है।

५. क्या ही स्वच्छ चाँदनी—निस्तब्ध = शान्त, मौन। गंधवह = गंध ले जाने वाली, वायु। निरानन्द = विना आनन्द के। नियति = भाग्य। कार्यकलाप = काम।

यह चाँदनी कैसी स्वच्छ है, रात कैसी सुनसान है, स्वच्छन्द, मन्द मन्द वायु बह रहा है, कौन सी दिशा विना आनन्द के है? भाग्य-रूपी नटी के काम बन्द नहीं हैं, अब भी चल रहे हैं, पर वे कितने एकान्त भाव से, कितने शान्त और कितने चुप-चाप चल रहे हैं।

६. है बिखेर देती वसुन्धरा—वसुन्धरा=पृथिवी। रवि=सूर्य। विरामदायिनी=आराम देने वाली।

सबके सो जाने पर पृथिवी (ओस के रूप में) मोती बिखेर देती है, और सबेरा होने पर सदा सूर्य उनको बटोर लेता है, (सुबह होने पर सूर्य की किरणों के पड़ने पर वह ओस सूख जाती है इस पर कवि कहता है कि सूर्य अपने हाथों से उन ओस-रूपी मोतियों को बटोर लेता है)। शाम हो जाने पर वह सूर्य अपने बटोरे हुए मोती (तारों के रूप में) आराम देने वाली संध्या को दे जाता है, जिस से (उन मोती रूपी तारों से) उस सन्ध्या का काला शरीर नया रूप दिखलाता है।

७ तेरह वर्ष व्यतीत—आर्त=दुखी।

तेरह वर्ष वीत चुके हैं पर यह मानों कल की ही बात

है जब कि हम को जंगल में आते देख पिता जी दुखी तथा मूर्छित हुए थे। अब वह समय निकट ही है जब कि अवधि (१४ साल वन में रहने की मियाद) पूरी हो जायगी, परन्तु इस वंदे को इस से बढ़ कर किस धन की प्राप्ति होगी ?

८ और आर्य को ?—और आर्य (बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी) को क्या मिलेगा ? क्योंकि राज्य का भार तो वह केवल प्रजा के लिए ही उठायेंगे। वे उस काम में व्यस्त (लगे) रहेंगे, और जबरदस्ती हमको भी भूल जायेंगे। पर लोकोपकार का ध्यान कर हमें इससे शोक नहीं होगा। (अर्थात् रामचन्द्र जी हमको भूल गए हैं इसका शोक हमें इसलिए नहीं होगा कि हमें यह ख्याल रहेगा कि लोकोपकार में व्यस्त रहने के कारण ही उन्हें हमसे बात करने का समय नहीं मिलता) पर क्या यह मनुष्य लोक अपना कल्याण आप नहीं कर सकता ?

९. मझली मां ने क्या समझा—मझली माँ (कैकेयी) ने क्या समझा था कि भरत के राजा होने से मैं राजमाता बन जाऊँगी और श्रीराम को निर्वासित कर (जंगल में भेज) मैं राज्य में अपनी जड़ें जमा लूंगी। परन्तु चित्रकूट में उसकी दयनीय हालत (जब भरत रामचन्द्र जी को वापस अयोध्या बुलाने आए थे, उस समय की कैकेयी की दयनीय दशा) देख कर करुणा भी थक जाती थी। सब उसे देखते थे (कि इस के कारण हमारे प्यारे रामचन्द्र जी को वनवास मिला है) पर वह (शरम के मारे) अपने आपको भी न देख सकती थी।

१०. होता यदि राजत्व—यदि राज्य करना मात्र ही हमारे जीवन का उद्देश्य होता तो हमारे पूर्वज (वृद्धावस्था) में राज्य

को छोड़ कर वन का रास्ता क्यों लेते ? यदि जीवन में परिवर्तन ही को उन्नति समझा जाय तो हम बढ़ते जाते हैं, परन्तु मुझे तो सीधे-सादे पुराने विचार ही पसन्द हैं।

११. जो हो, जहां आर्य रहते—कुछ भी हो आर्य रामचन्द्र जहाँ रहते हैं वहीं वे राज्य करते हैं। उनके शासन में सब जंगल में रहने वाले स्वच्छन्द घूमते हैं। शहरों में जिन पशु-पक्षियों को प्रयत्न से हम पिंजरों में बन्द करके रखते हैं यहाँ वे ही पशु-पक्षी भाभी (सीता) के साथ अपने आप ही प्रसन्नता से हिल गये हैं।

१२. आ आकर—विचित्र पशु-पक्षी यहाँ आ आकर पंचवटी की गहरी छाया में दोपहरी बिताते हैं और भाभी उनको भोजन देती है। सुन्दर चंचल बालक मिल करके जिस तरह माँ को घेर कर खिझाते हैं, उसी तरह खेल खिझाकर वे सब भाभी को प्रसन्न करते हैं।

१३ गोदावरी नदी का तट—वह गोदावरी नदी का तट अब भी ताल दे रहा है और चंचल जल अब भी कल-कल कर के तान ले रहा है। अब भी पत्ते नाच रहे हैं और फूल महक रहे हैं। चन्द्र और नक्षत्र लालच भरे लालसा से लपकते हैं।

१४. मुनियों का सत्संग—यहाँ उन मुनियों का सत्संग (साथ) है जिन्हें तत्व-ज्ञान (परमात्मा का ज्ञान) हो चुका है। उनसे नित्य नये विचित्र आख्यान (वृत्तान्त) सुनने को मिलते हैं। जिनका जीवन-रूपी फूल जितने ही कष्टरूपी काँटों में खिला है, उन्हें यहाँ वहाँ, सब जगह उतनी ही बड़ाई रूपी सुगन्ध मिली है—अर्थात् जो जितना कष्ट उठाता है वह उतना ही यश भी पाता है।

१५. अपने पौधों में जब—निराती=खेत की घास-पात साफ करती।

जब भाभी भर-भर कर अपने पौधों में पानी देती हैं, और जब खुरपी लेकर अपने आप खेती की घास-पात साफ करती हैं, तब वह कितना गौरव, कितना सुख, और कितना सन्तोष पाती हैं ? सचमुच स्वावलम्बन की एक झलक पर कुबेर का सारा खजाना न्योछावर है।

१६. सांसारिकता में मिलती—निस्पृहता=वासना का न होना, वासना का अभाव। अधिष्ठात्री=मालकिन। विकृति=विकार।

यहाँ सांसारिकता में वासनाओं (इच्छाओं) का विचित्र अभाव दिखाई देता है। अत्रि और अनुसूया के समान पवित्र गृहस्थी कहाँ होगी ? मानों यह संसार ही दूसरा है, यहाँ कृत्रिमता (बनावटीपन) का काम ही नहीं है। स्वयं प्रकृति ही यहाँ की स्वामिनी है और विकार का कहीं नाम नहीं है।

'बार बार तू आया'

बार बार तू—हिम-कंपित=अत्यंतशीत से काँपता हुआ। कृशपाणि=दुबले-पतले हाथ। पसारे=फैलाए। बुभुक्षित=भूखा।

हे ईश्वर ! तू बारम्बार मेरे पास आया, पर मैं तुझे पहचान न सका। एक बार तू अत्यधिक सर्दी से काँपता हुआ, अपना दुबला-पतला हाथ फैलाए, भूखा बनकर मेरे दरवाज़े पर पहुँचा, पर मैंने तुझे धक्का दे दिया (तेरा सत्कार नहीं किया)

दीन दृगों से—दीन-दृग=गरीब की आँख। सरस=रसीला। विकल=व्याकुल। कौतुक=खेल, विनोद।

दूसरी बार तू गरीब की आँखों से (आँसू बनकर) निकल पड़ा। उस समय तू बड़ा सरस (सुहावना) था और अत्यंत

व्याकुल भी था। पर मैं विनोद से मुसकुराता रहा, मैंने तुझे पहचाना नहीं।

गलितांगों का—गलितांग = जिनके अंग गल गये हों, जिनसे पीप बहता हो। गंध = सुगंधित वस्तुएँ। अलख जगाना = योगी लोग धूप जलाकर अलख (अलक्ष्य-ईश्वर) को जगाते हैं, ईश्वर के अलक्ष्य रूप को देखने का प्रयास करते हैं।

तू गलितांगों के पीप-मवाद का इत्र लगाकर मेरे पास आया, फिर योगियों का रूप धर कर अलख जगाता हुआ आया पर मैं घृणा से हट गया और तुझे भी हटा दिया (पहचान कर भी मैंने तेरा सत्कार नहीं किया।)

आर्त गिरा कानों—आर्त-गिरा = दुखभरी पुकार।

फिर मेरे कानोंमें किसीकी दुखभरी पुकार सुन पड़ी मानों साक्षात् तुम्हारे चरणोंकी ही आहट थी,पर मैंने उसे भी अनसुना कर दिया।

पीड़ित के निश्वास—पीड़ित = दुखिया, संतप्त। निःश्वास = दुःख भरी साँस। कर = हाथ।

अरे! मैं इस बात को कब जानता था कि दुखियों की आह वस्तुतः तेरे हाथ हैं। मेरे ऊपर तो माया का नशा चढ़ा हुआ था, अतः मैंने ध्यान नहीं दिया।

जिस प्रकार ईश्वर अपने हाथ से सब कुछ कर सकता है, उसी प्रकार दुखिया अपनी आह से सब कुछ कर सकता है, इसी से निश्वास को 'कर' कहा है। मैंने घमण्ड से दुखियों की आह पर कभी ध्यान नहीं दिया।

अब जो—अब जो मैं तुझे पहचानता हूँ तो तू मुझे भूल गया है। वस्तुतः मैंने ही तुझे भुलाया है; तूने मुझे नहीं भुलाया। तू बारंबार मेरे पास आता रहा पर मैं तुझे पहचान न सका।

पहले मैंने दीन-दुखियों की सहायता नहीं की, उनसे सहानुभूति नहीं दिखालाई। यदि अब मैं उसके लिये प्रयत्न करूँ भी तो वे लोग उसे स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि वे जान गये हैं कि मैं क्रूर हूँ।

कवि का तात्पर्य यह है कि ईश्वर के स्वरूप के दर्शन दीन-दुखियों में ही होते है, ईश्वर का कार्य लोक-मंगल है। लोक-मंगल करने वाले ईश्वर के आदेश का पालन करते हैं, वे ही ईश्वर को समझ सकते हैं, अन्य नहीं।

इन्द्रजाल

इस कविता में कवि ईश्वर को जादूगर और सारी सृष्टि को उसका इन्द्रजाल बतला रहा है।

अच्छा—इन्द्रजाल = जादू के खेल-तमाशे। कौतुकी = इन्द्रजाल करने वाला, जादूगर।

हे कौतुकी! तुमने यह अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया है, जब तक मैं अपनी पलक खोलूँ तब तक तुमने पेड़ लगा दिया।

यहाँ पर पलक खोलने का तात्पर्य संसार में जन्म लेना है। पेड़ लगाने का भाव है सांसारिक कुटुंब का दिखाई पड़ना। मनुष्य जन्म लेते ही कुटुम्ब के बंधन में पड़ जाता है।

भांति भांति—रूप = आकार। रस = मकरंद, पुष्परस। गंध = महक। गुंजारव = भौंरों की गुंजार।

जिस प्रकार जादूगर अपने जादू से फूल खिला देता है, उसी प्रकार ईश्वर ने इस संसाररूपी वाटिका में अनेक प्रकार के फूल खिला रखे हैं, उनके भिन्न-भिन्न रंग और आकार हैं, वे भिन्न-भिन्न रस और गंध से युक्त हैं, उनमें भौंरे प्रसन्नता से मँडरा रहे हैं, गुंजार हो रहा है।

फूल से तात्पर्य सांसारिक सुख-भोग के पदार्थों से है। भौंरों को सांसारिक जीव समझिए। संसार में अनेक प्रकार की सुख-भोग की सामग्रियाँ हैं, जीव सहर्ष उनका उपभोग करता है।

उड़ उड़ कर—पेड़ों पर पत्ती उड़-उड़ कर बैठते हैं, फिर फुर-फुर करते उड़ जाते हैं। वे वृक्षों पर क्या लेकर आते हैं और वृक्षों से क्या ले जाते हैं, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। यह अच्छा इन्द्रजाल है।

पत्ती को भी सांसारिक जीव समझिए। संसार में अनेक आत्माएँ आकर जन्म-ग्रहण करती हैं, फिर वे अन्त समय में चली जाती हैं। वे न तो कुछ लेकर आती हैं और न साथ में कुछ ले ही जाती हैं।

यह जो अम्ल—अम्ल = खट्टा। मधुर = मीठा।

यह जो खटमीठा फल ले आया है, उसके लिये कौन नहीं ललचाया। जिसने खाया वह भी पछताया और जिसने नहीं खाया वह भी पछताया। यह विचित्र इन्द्रजाल है।

अम्ल-मधुर फल सांसारिक सुख-दुःख हैं। जिसके ऊपर सुख-दुःख पड़ता है वह भी पछताता है और जो इन्हें नहीं अनुभव करता वह इनका अनुभव न करने के लिये पछताता रहता है।

पहले के पत्ते—नवदल = नये पत्ते।

संसार रूपी वृक्ष के पुराने पत्ते झड़ जाते हैं, वे उड़-उड़ कर गिर पड़ते हैं और उसमें रत्न की तरह नये पत्ते लगते हैं। पत्तों के गिरने और लगने का यह क्रम किसे अच्छा नहीं लगता।

पत्तों का झड़ना सांसारिक परिवर्तन है। पुरानी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, उनके स्थान पर नई-नई वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, यही संसार का क्रम है।

फल में स्वादु—कुसुम = फूल । मूल = जड़ । द्रुम = वृक्ष ।

फल में स्वाद मिलता है, फूलों से सुगन्ध आती है, पर इस वृक्ष की जड़ का कहीं पता नहीं चलता । हे भगवन ! आप क्या कह रहे हैं कि वह जड़ तुम्हीं में है, हे राम ! यह आपकी अद्भुत माया है ।

इस संसार-रूपी वृक्ष के फलों (उपभोग्य वस्तुओं—शरीर आदि) में स्वाद, फूलों में सुगंध तो जान पड़ती है, पर यह पता नहीं कि इसकी जड़ कहाँ है ? इसकी जड़ मनुष्य के भीतर आत्मारूप में ही विराजमान है, वह वस्तुतः परमात्मा का ही अंश है । कवि यह दिखलाना चाहता है कि संसार जादूगर के खेल की भाँति अज्ञेय है । हम खेल देखते हैं पर उसका कुछ भी रहस्य नहीं समझ पाते । संसार के रहस्य का पता किसने लगाया है ?

जयशंकरप्रसाद

किरण

किरण—सरसिज=कमल । किञ्जल्क=कमलके फूलका पराग ।

हे किरण, तुम आज क्यों फैल रही हो, किस के प्रेम में रँगी हो और स्वर्ण के कमल के पराग के समान तुम पराग के परमाणु क्यों उड़ाती फिरती हो ?

धरा—तुम पृथिवी पर प्रार्थना के समान नीचे झुकी हुई, मीठी बाँसुरी के समान हो फिर भी शान्त हो । किसी अपरिचित संसार की व्याकुलता का सन्देश लाने वाली देव-दूतिका के समान तुम कौन हो ?

अरुन-शिशु—अरुण शिशु=बालसूर्य । कान्त=सुन्दर । अश्रान्त=बेथके ।

वालसूर्य के मुख पर सानन्द सुन्दर घुँघराली सुनहली लटा जैसी उषा के आंचल में बैठके नाचने वाली तुम कौन हो ?

भला उस—भाल=मस्तक ।

हे किरण ! उस (वालसूर्य के) भोले मुख को छोड़ कर अब किसका मस्तक चूमने लगी हो ! यह तुम्हारा कैसा खेल है, कैसा नाच है, कौन तुम्हारे साथ साथ ताल दे रहा है ?

कोकनद—कोकनद=लालकमल । तरल=द्रव, चंचल ।

लालकमल के रस की धारा के समान चंचल ! तुम संसार में किस ओर वहती हो ! संसार में सुन्दर तथा सरल लहर उठा कर तुम प्रकृति को वहुत आनन्द देती हो ।

स्वर्ग के—सूत्र=सूत । तंतु=तार । भूलोक=पृथिवी । विरज = रज (दोप) रहित, निर्दोष । विलोक = शोक (दुःख, रंज) के बिना ।

स्वर्ग के तंतु—स्वर्ग के तार के समान तुम कौन हो जो उस से पृथिवी को मिला रही हो । (पृथिवी और स्वर्ग का) आपस में कैसा सम्वन्ध जोड़ रही हो ? क्या पृथिवी को भी (स्वर्ग के समान ही) दोष तथा दुःख से रहित कर देगी ?

चपल ठहरो—शून्य = आकाश । अनंत=जिस का अन्त न हो, असीम । सुमन=फूल ।

हे चपल किरण ! ठहरो कुछ आराम करलो, तुम आकाश का असीम रास्ता तय कर चुकी हो । सबेरे की सूर्य की किरणें जब संसार में दिखाई देती हैं तब कलियें खिल उठती हैं उसी को ध्यान में रख कर कवि कहता है । किरण ! अब तुम फूलों के मन्दिर के द्वार खोलो अर्थात् बंद कलियों को खिलाओ; और फिर वहाँ सोया हुआ वसंत जाग उठे ।

बदरीनाथ भट्ट

सूरदास

सूरदास को कौन अंधा कह सकता है, क्या जो लोक (सारे संसार) को आलोकित (प्रकाशित) करता है वही अन्धा है अर्थात् जिस महाकवि सूरदास ने प्रभु के ज्ञान से सब को प्रकाशित किया है क्या वही अन्धा है ? क्या प्रभु ने (तुम सूरदास को अन्धा बनाकर) प्रत्यक्ष दीपक के तले अन्धकार का रूप दिखाया है, 'दिया तले अँधेरा' इस कहावत को चरितार्थ किया है—नहीं वरन् (तुम्हारे रूप द्वारा) उन्होंने घोर (अज्ञान) अन्धकार में अलौकिक और अनूठा दीया दिखाया है। उस वनविहारी कृष्ण ने अपनी चकाचौंध से सबके नेत्र बिगाड़ दिये थे, किन्तु उसने ही तुमको अन्तर्दृष्टि (ज्ञान-चक्षु हृदय की आँख) दी और तुम्हारी सब आड़ (परदा) दूर कर दी। आँखों से हीन होने पर भी तुमने उस अथाह की थाह पाली—उस अज्ञेय परमात्मा को जान लिया। हम नेत्रों—बाहिरी नेत्रों—सहित होते हुए भी अज्ञान के कारण भटकते रहते हैं और राह नहीं सूझता। कृष्ण ने तुम्हारी बाँह पकड़ी थी, अतः तुम्हें जरा भी कठिनाई न हुई। तुम्हारे लिए कृष्ण ही सब दुनिया थे, तथा कृष्ण और तुम दोनों एक थे। भक्त भगवान का ही रूप होता है। जिस अदृश्य भगवान ने तुम्हें अंधकूप से खींचकर तुम्हारा दुःख दूर किया

था ❀ तुमने उसी भगवान को अपने हृदय में कैद कर लिया सचमुच तुम शूरवीर हो। कहीं भी सूर (सूरज) और श्याम (अंधेरे) का साथ न देखा गया था और न सुना गया था, अर्थात् जहाँ सूर्य होता है वहाँ अंधेरा कभी नहीं रहता, परन्तु तुमने वह भी हाथों हाथ कर दिखलाया, अर्थात् तुमने सूर (सूरदास) और श्याम (कृष्ण) का साथ दिखा दिया। (सूरदास की) हृदय रूपी बाँसुरी से अलंकार ध्वनि तथा रस से युक्त जो तान निकली वही हमारे लिए मधुर अलौकिक गान हो गये। पर भगवद्भक्ति के जिस तत्व को उसने सब

❀सूरदास के अंधे होने के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं, कहते हैं कि एक दिन सूरदास एक सुंदरी की ओर एकटक बहुत देर तक देखते रहे, सुंदरी ने उन्हें लज्जित करने के लिए उनसे आकर पूछा— महाराज आपको क्या चाहिये ? तब सूरदास को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने उस सुंदरी से वचन लेकर उससे कहा—मेरी इन आँखों ने अपराध किया है अतः तुम इनको सुई से फोड़ डालो। वचन-बद्ध सुंदरी ने वैसा ही किया। अंधे सूरदास प्रभुभक्ति में इधर उधर गाते फिरते थे। एक दिन वे इधर उधर फिरते हुए एक अंधे कुएँ में गिर पड़े और ६ दिन तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन भगवान कृष्णरूप में इनके सामने प्रकट हुए और दर्शन देकर तथा इनकी बाँह पकड़कर उन्होंने उस कुएँ से निकाला। तब सूरदास ने उनसे वर माँगा कि जिन नेत्रों से मैंने भगवान को देखा है उनसे मैं और किसी को न देखूँ। अतः कुएँ से निकलने के बाद सूरदास फिर ज्यों के त्यों अंधे हो गये।

स्थानों पर फैलाया, उसे भूलकर हम और के और ही हो गये हैं।

मेरी विभूति

क्या तुम मेरा नाम पूछते हो ? जड़ और चेतन सब मेरा ललाम (सुंदर) रूप दिखा रहे हैं। जल, स्थल, अनल (आग) अनिल (वायु) और गगन (आकाश) इन सब में मैं व्याप्त हूँ। समस्त संसार का बीज-रूप जो ओंकार है वह भी मुझ में समाप्त है। मैं सानंद आत्म-ज्ञान की नाव में बैठा हूँ, और संसाररूपी सागर में स्वच्छंद विचरता हूँ—आत्मा का ज्ञान होजाने के कारण अब कोई बंधन मुझपर नहीं रहा। संसार-रूपी जल में मैं कमल हूँ, और संसार-रूपी बादलों में मैं आदित्य (सूर्य) हूँ। और संसार-रूपी घड़े या मठ में मैं व्योम (आकाश) हूँ; इस तरह मैं अद्भुत अविनाशी (अक्षर) और नित्य हूँ अर्थात् ब्रह्म हूँ। वेदांती लोग जीव को ही ब्रह्म समझते हैं वे 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ, कहा करते हैं, यहाँ भी कवि उसी पक्ष का समर्थन करता है। मैंने (अविनाशी परमात्मा ने) केवल खिलवाड़ करने को ही मनुष्य का शरीर धारण किया है, यह कोई न समझ सका कि तिल की ओट में पहाड़ है, अर्थात् मनुष्य-रूप में मैं परमात्मा हूँ। कल्पना (भावना) के गले अहंकार (मैं और मेरापन) का हार डाल कर मैं स्वयं ही मायामय संसार बन बैठा हूँ। वेदांतियों का मत है कि यह संसार, जीव और ब्रह्म सब एक ही हैं, माया-युक्त ब्रह्म ही जीव है, अर्थात् माया के कारण जब ब्रह्म में अहंकार का (मैं और 'मेरा') भाव आ जाता है तब वह परमात्मा ही जीवात्मा हो जाता है, और जैसे रस्सी में साँप की भावना होती है, ऐसे ही परमात्मा

में ही जीवात्मा का भान होने लगता है इसी भाव को लेकर कवि कहता है कि अहंकार का भाव धारण करके मैं ही ब्रह्म मायायुक्त संसार बन बैठा हूँ।

नया फूल

इस उपवन में नया फूल खिला है। सब वृक्ष प्रसन्न हो रहे हैं, और बेलें मन में हँसती हैं (दूसरी पंक्ति के आरम्भ में 'हो रहे' के स्थान पर 'मुदित हो रहे' होना चाहिए। मूल में 'मुदित' शब्द छूट गया है) सवेरे की वायु के लगते ही फूल ने बहुत सुख पाया और पहली दशा भूल गया। अब उसने जिधर देखा उधर प्रेम की थाली परोसी हुई देखी। वह अनूठा रूप लेकर आया है और उसने मधुर सुगंधि फैलाई है। इस तरह उसने सब के हृदय में प्रभुता की ध्वजा उड़ाई है, सब के हृदय देश में घर कर लिया है और एक ऐसी लहर चलाई कि सब को जीत लिया। रोकर और हँस कर सब तरह से उसने अपनी बात बना ली। रोने का मतलब है जब पहली अवस्था में फूल अभी कली के रूप में था, तब उस पर ओस के बूँदें पड़ती थीं, वे मानों उसके आँसू थे और हँस कर अर्थात् खिल कर।

तुलसीदास और रामायण

हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों—गीता पुराण रामायण महाभारत आदि—में गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण का एक विशेष स्थान है। इसके कथानक के नायक स्वयं ईश्वर के अवतार भगवान् रामचन्द्र हैं, और स्थान स्थान पर इसमें

भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के उपदेशों का अनूठा समावेश पाया जाता है। वे सांसारिक पुरुष जो वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों को नहीं समझ सकते, बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ इसका अध्ययन करते हैं, भक्त हिन्दू इसका नित्य पाठ करते हैं।

१. सुलभ—गोस्वामी तुलसीदास (रामायण बना कर) ब्रह्म का ज्ञान सब के लिए सुलभ कर गये हैं अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान देने वाले वेदादि ग्रन्थों का समझना सांसारिक पुरुषों के लिए बड़ा कठिन था पर रामायण द्वारा वही ज्ञान सुलभ हो गया है। इस तरह संसाररूपी सागर को तरने के लिए उन्होंने रामनाम रूपी जहाज बना दिया है।

२. दृश्य-अदृश्य—दृश्य = आँखों द्वारा दिखाई देने वाला (साकार)। अदृश्य=आँखों से दिखाई न देने वाला (निराकार)

साकार और निराकार प्रभु की भक्ति, रामचन्द्र और सीता आदि के अलौकिक चरित्र और रावण कुम्भकर्ण आदि के लौकिक चरित्र सब एक जगह (रामायण) में ही आगए हैं। भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य सब एक ही गाँव में बस गए है अर्थात् एक ही पुस्तक में भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का समावेश है।

३. स्वार्थ और—(रामायण द्वारा गोस्वामी जी ने) स्वार्थ तथा परमार्थ—मोक्ष—दोनों प्राप्त कराये, जिससे निस्सार (फोका)संसार भी सारयुक्त होगया और अपने अनुभव की कुंजी से उन्होंने अगम (कठिनता से प्राप्त होने वाली) मुक्ति का द्वार खोल दिया*।

---

* कहते हैं, कि महात्मा तुलसीदास का अपनी पत्नी से बड़ा प्रेम था। एक बार उनकी स्त्री उनसे बिना पूछे अपने मायके चली

मोह शिखर—मोहरूपी पर्वत की चोटी पर फँसे हुए आदमियों के पार उतरने के लिए उन्होंने रामायणरूपी सीढ़ी तैयार कर दी है और रामनाम का आधार (सहारा) होने के कारण गिरने का ज़रा भी डर नहीं रहा।

५. रोम रोम—हे गोस्वामी! तुम्हारे रोम रोम में रामरूप संसार रमा हुआ है अर्थात् तुम राममय हो गये हो। हे भक्ति और प्रेम के अवतार तुलसीदास! तुम बार बार धन्य हो—स्तुत्य हो।

———

गयी। तुलसीदास भी उसके पीछे-पीछे वहीं पहुँचे। इस पर स्त्री को लज्जा आई और उसने कहा—

लाज न लागत आपु को दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चरममय देह मम तामैं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति॥

प्रेमी तुलसीदास उसी दिन से लौकिक प्रेम से विरत हो गए, और उनकी वह प्रेमधारा भगवान के चरणों की ओर बह निकली। उसी प्रेम के कारण उन्होंने स्वयं मुक्ति पाई और अपने अनुभव द्वारा सांसारिक लोगों को भी मुक्ति का सीधा मार्ग दिखा दिया।

वियोगीहरि

उत्साह तरंग

१. जयतु कंस करि—काल=यमराज। मधु=एक दैत्य जिसको विष्णु ने मारा था।

कंस-रूपी हाथी के लिए सिंह के समान, मधु नामक राक्षस के शत्रु और केशी राक्षस के लिए काल के समान, तथा कालिय नाग के घमण्ड को चूर्ण करने वाले कृपालु कृष्ण भगवान तुम्हारी जय हो।

२. परिनामँहु—लोकोत्तर=अलौकिक। उछाह=उत्साह। अमंद=अधिक।

जो परिणाम में (अंत में) अलौकिक आनंद देता है वह अत्यधिक उत्साह से युक्त सुन्दर वीर रस ही रसराज है।

३. छाँडि वीररस—वीर रस को छोड़कर अब हमें कोई दूसरा रस पसंद नहीं आता। जैसे सावन के अंधे को सारा संसार हरा ही हरा प्रतीत होता है।

४. कहा करौं माधुर्य—माधुर्य=लावण्य। ज्योति=सूर्य शक्ति।

बिना ओज (बल) के सुकुमार सुंदर माधुर्य (लावण्य) को लेकर क्या करूँगा। सुंदर कमलरूपी नेत्र भी सूर्य-रूपी शक्ति के उदय हुए बिना नहीं खिलते।

५. खंड खंड है—बरु=चाहे। पेंड=डग, कदम। मेंड=लकीर, सीमा।

लड़ता हुआ शूरमा चाहे टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो जाय पर पीछे कदम नहीं देता। रणक्षेत्र में लड़ता हुआ वह मर जाता है पर अपने खेत की हद नहीं छोड़ता।

६ खल खंडन—खंडन = नष्ट करने वाला। मंडन = पुष्ट करने वाला। सुहृद = अच्छे हृदय वाला।

दुष्टों का नाश करने वाला, सज्जनों को पुष्ट करने वाला, सरल, ज्ञानयुक्त, अच्छे हृदय वाला, तथा अत्यधिक गुणों से युक्त गंभीर, युद्ध में शूरवीर लाख में से कोई एक ही होता है।

७. खल-घातक—घालक = मारने वाला, अंत करने वाला। प्रकृत=स्वाभाविक।

दुष्टों का अन्त करने वाला, सज्जनों को बचाने वाला, अच्छे हृदय वाला, दयावाला, गम्भीर और रण में धैर्य रखने वाला, स्वाभाविक शूरवीर कहीं करोड़ों में एक होता है।

८. मुँह माँगे—रणक्षेत्र में सूरमा शत्रु के लिए मुँह माँगा दान देता है। (किन्तु एक शर्त है) वह सिर का दान ही देता है पीठ का दान नहीं देता—अर्थात् सिर चाहे कटवा दे पीठ नहीं दिखाता।

९. दयाधर्म—हे नृप शिवि, तूने दयाधर्म को सब धर्मों का सार ठीक ठीक समझा था, और तेरे दाज पर सैकड़ों बलि भी न्यौछावर हैं। बलि ने तो केवल अपना धन और पृथिवी दी थी, तुमने तो अपना तन भी दे दिया।

१० तू ही या नर—हे दयाशूर राजा शिवि, तू ही दयारूपी तलवार के भेद को समझने वाला है और हे प्यारे, तू ही इस मानव-शरीर का अनुपम जौहरी है, इसकी कदर जानने वाला है।

११ सुन्दर सत्य—विगस्यौ = खिला है। तड़ाग = तालाब। सरोज = कमल।

धर्म-रूपी तालाब में सुन्दर सत्य-रूपी कमल खिला है। उसमें हरिश्चन्द्र का पवित्र पराग युग-युग में चारों ओर सुगंध फैला रहा है।

१२. जौ न जन्म—जो इस संसार में हरिश्चन्द्र का जन्म नहीं होता, तो युगयुगान्तर तक असत्य की (झूठ की) न मिटने वाली अँधेरी छाया बनी रहती।

१३. इत गांधी—इधर महात्मा गाँधी और उधर सत्य दोनों आपस में मिलना चाहते हैं, यह उस सत्य को नहीं छोड़ता और वह सत्य महात्मा गाँधी को नहीं छोड़ता।

१४. धनि तेरि तप—हे महात्मा गांधी, तपस्या में तेरी धीरता धन्य है, और तेरे गुणों का समूह धन्य है। इस कलि-युग में तू ही केवल एक सच्चा सत्याग्रही वीर है।

१५. नहिं विचल्यो—दुःखद्वन्द = अनेक दुःख।

अनेक असह्य दुख सह कर भी हे महात्मा गाँधी, तू सत्य के रास्ते से विचलित नहीं हुआ, सो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कलिकाल में गाँधी का रूप धारण कर हरिश्चन्द्र फिर से प्रकट हुए हैं।

१६ हँसत हँसत—हँसते-हँसते अपने धर्म पर अपना सिर चढ़ा कर और धर्मरूपी युद्ध में मर कर हकीकतराय अमर हो गया। यद्यपि उसका नश्वर शरीर नष्ट हो गया पर नाम अमर हो गया।

१७ सुर तरु ले—सुर तरु = देवताओं का वृक्ष, कल्पवृक्ष। चिंतामणि = एक मणि जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि उससे जो माँगा जाय वही मिल जाता है। सुमेरु = पुराणों के अनुसार एक सोने का पहाड़।

कल्पवृक्ष और चिंतामणि का ढेर लेकर क्या करोगे दधीचि मुनि की एक हड्डी पर करोड़ों सुमेरु भी वार दो—अर्थात् उस एक हड्डी में ही ऐसा बल था जिसने देवराज इंद्र और देवताओं की रक्षा की थी। (कथा पहले आ चुकी है)

१८ करि कादर सों मित्रता—पुनीत = पवित्र। मंगल = कल्याण।

हे मित्र ! कायरों से मित्रता करने का क्या फल है ? (कुछ नहीं) युद्धवीर की प्रति शत्रुता होना भी पवित्र और कल्याणकारी है। युद्धवीर से लड़ते-लड़ते रण में मृत्यु होगी, तो स्वर्ग मिलेगा।

१९ कहतु कौन—सागर = समुद्र।

हे बल के समुद्र, तुम्हें कायर कौन कहता है ? युद्ध में हड़बड़ा कर और पीठ दिखाकर भागना सबके बस का नहीं है, अर्थात् सब नहीं कर सकते।

२०. मति मन मानिक—अपना मनरूपी माणिक्य कभी कुटिल कायरों के हाथ न सौंपो। अच्छे जौहरी वे ही हैं जिनके धड़ पर सिर नहीं है अर्थात् जिन्हें अपने सिर की परवाह नहीं है।

२१ औघट घाट—समर (रणक्षेत्र) रूपी अपार धारा (नदी) में कृपाण (तलवार) रूपी दुर्गम घाट है। जो इसके सन्मुख जाता है वह तो तर आता है और जो विमुख रहता है वह मँझधार में रह जाता है। भाव यह है युद्ध-भूमि में जो डरता है वही मारा जाता है। निडर शूरवीर या तो शत्रु को ही मार लेता है और जो कहीं मर भी जाय तो सदा के लिए उसका यश रह जाता है।

२२ पैरिशर असि—नाखि = लाँघकर

तलवार-रूपी धार को तैरकर पार कर के और युद्धरूपी भयानक नद को लाँघकर सूर्य के घेरे को भेदकर हे रणधीर, तू अब कहाँ चला है ?

२३ लरतु काल सों—करवाल = तलवार । कल-माल = सुन्दर माला ।

काल (मृत्यु) से लाखों में से कोई एक ही माई का लाल लड़ता है (लड़ने का साहस रखता है)। बताओ, कितने ऐसे हैं जो तलवार को गले की सुंदर माला बनाना पसन्द करते हैं ?

२४ धन्य भीम—हे रणधीर भीम, तू धन्य है जिसने शत्रु की छाती पर पाँव रखकर इन मूँछों को ताव देकर अँजुलियों को भरकर शोणित (खून) पिया है।

२५ धन्य कर्ण—कंदुक = गेंद। उछारे = उछाले।

हे कर्ण, तू धन्य है, जिसने शत्रु के खून से युद्ध के कुंड को भर दिया है, और उछलकर शत्रुओं के सिरों के गेंद बनाकर अत्यन्त चाव से उछाल दिया है।

२६ प्राण हथेरी पर—ओज = बल, प्रताप। तबर = कुल्हाड़ी की तरह का लड़ाई एक का हथियार, परसा। जूझिबे = लड़ने को।

प्राणों को हथेली पर रख कर (अर्थात् प्राण जाने की परवाह न कर) ओज-रूपी शराब को पीकर और परसा, तीर तथा तलवार लेकर नौजवान लड़ने को चले हैं।

२७ छत्रिय छत्रिय—क्षत्रिय क्षत्रिय कहने से कोई क्षत्रिय नहीं होता। जो खड्ग पर अपना सिर चढ़ा सके वही असली क्षत्रिय है।

२८ जोरि नाम संग—नाम के साथ 'सिंह' पद जोड़कर सिंहको ही बदनाम कर दिया है। गीदड़ के काम करके भी कोई सिंह कैसे हो सकता है ?

२९ वह दिनु वह छिनु—वह दिन, वह क्षण और वह घड़ी फिर फिर नहीं आते जब कि ये प्राणरूपी हंस हिलोरें ले लेकर युद्ध-रूपी मान सरोवर में नहाते हैं।

३० कादर तो जीवत—कायर लोग तो दिन में हज़ार बार मरते और पैदा होते हैं परन्तु शूरवीर के प्राणरूपी पक्षी एक ही बार उड़ते हैं। अर्थात् कायर फिजूल डर के मारे ही मरे जाते हैं।

३१ अरे फिरत—अरे बावले! अनेक तीर्थों पर व्यर्थ क्यों भटकता फिरता है? माथे पर स्वाभाविक शूरवीरों के पैर की धूलि को क्यों नहीं धारण करता? (भाव यह है कि वीरों के पैर की धूलि से अधिक पवित्र और क्या चीज़ होगी?)

३२ तहं पुस्कर—सुरसरि=गंगा। कबंध=धड़।

वहीं पुष्कर (अजमेर के पास का पवित्र तीर्थ) है, वहीं गंगा है, वहीं तीर्थ, तप, और यज्ञ का स्थान है तथा वहीं प्रयागराज है जहाँ कि शूरवीर का धड़ (इस दुनियाँ से) उठ गया है—अर्थात् जहाँ शूरवीर मरा है।

३३ के कृपाण—अनल=अग्नि। ठाट=समूह।

वीर-पत्नियों के नहाने के ये दो ही घाट (स्थान) हैं; या तो तलवार की धार और या अग्निकुंड का समूह (चिता)।

३४ सुभट सीस—शूरवीरों के सिर के खून से सनी हुई युद्ध की भूमि तू धन्य है। तेरे समान संसार में तारने वाला और कोई तीर्थ तीनों लोकों में नहीं है।

३५ नमो नमो कुरु क्षेत—प्रतिरूप=मूर्त्ति।

हे (युद्धभूमि) कुरुक्षेत्र, तुझे नमस्कार है! तेरी महिमा अकथनीय है, और अद्भुत है। तेरा एक एक कण हज़ारों तीर्थों का मूर्त्ति रूप दिखाई देता है। अर्थात् तेरा एक एक कण हज़ारों तीर्थों के समान है।

३६ जो जन लोभी—जो लोग सिर के लोभी हैं, सिर नहीं दे सकते वे सदा दुखी और गुलाम रहते हैं बिना सिर चढ़ाये—बिना कुर्बानी किये—संसार में कहो कौन स्वाधीन हुआ है ?

३७ एक ओर—अंकोर भरि लेहु = गोद भर लो, अलिंगन कर लो।

एक ओर स्वाधीनता है और दूसरी ओर है सिर। दोनों में से जो तुम्हें अच्छा लगता है, उसे आलिंगन कर लो, उसे स्वीकार कर लो। अर्थात् यदि स्वतन्त्रता चाहते हो तो सिर देना पड़ेगा और सिर से प्रेम है तो गुलाम रहना पड़ेगा।

३८ चाहो जो स्वाधीनता—जो स्वाधीनता—स्वतंत्रता चाहते हो तो मन लगाकर यह मंत्र सुन लो कि बलिवेदी पर अपने ही हाथों से अपने सिर को चढ़ा दो।

३९ सौंप्यौ स्वामिहि—जन = सेना। हय = घोड़ा। गय = गज, हाथी। ठौर = स्थान, भूमि।

स्वामी को किसी ने सेना, किसी ने धन, किसी ने घोड़े, किसी ने हाथी और किसी ने भूमि सौंपी, परन्तु वह स्वामी को अपना सिर देकर (स्वामी पर न्यौछावर होकर), सहज में ही सबका सिरमौर हो गया है।

४० ले बल विक्रम—हे कवि! तू बल और विक्रम की बीन लेकर ऐसी तान क्यों नहीं छेड़ता जिसे सुनते ही धरा (पृथ्वी), मेरु (पर्वत), चन्द्रमा और सूर्य सब डोल उठें।

४१ ले निज तंत्री—तंत्री = वीणा। अभंग = जिसका क्रम न टूटे। धरा = पृथ्वी। तुंग = ऊँची।

हे कवि, तू अपनी वीणा लेकर वह न टूटने वाला राग छेड़ दे, (जिसे सुनकर) पृथ्वी से आकाश तक की ऊँची ओज की तरंगे उठने लगें।

४२ अब नख सिख—अब तो कवि नख-शिख वर्णन के (सुन्दरियों के नख से लेकर शिखा तक के सब अंगों के वर्णन के) और शृंगार रस के सुंदर कवित्त पढ़ते हैं। आज लाल और भूषण के समान जातीय कवि नहीं रहे। महाकवि भूषण शिवाजी के दरबार में कवि थे, उनकी वीररस की कविता हिन्दी-विलास के पाठक देख चुके हैं। कविवर लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था, ये महाराज छत्रसाल के दरबार में रहते थे। बुंदेलखंड में प्रसिद्ध है कि ये महाराज छत्रसाल के साथ किसी युद्ध में गये थे, और वहीं मारे गये। इनका 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथ प्रसिद्ध है।

४३ शिवा सुजस—शिवाजी के यशरूपी कमल के सुरस पर अनन्य मत्त (अत्यधिक लीन) भौंरा, रसों के अलंकार (सर्वोत्कृष्ट रस) वीर रस की सुन्दरता बढ़ाने वाला, और सुकवियों का भूषण (सुकवियों में श्रेष्ठ) भूषण कवि धन्य है।

४४ रिपुगण सुनि—जिस भूषण की रसना (जिह्वा) पर चण्डिका (दुर्गा) सिद्ध रहती है, उस भूषण की कविता सुन शत्रुगण (सरविद्ध) तीर से घायल क्यों न हो जायँ।

४५ एकछत्र वन—पंचानन = सिंह। एक छत्र = जिसमें और किसी का राज्य वा अधिकार नहीं, निष्कंटक। अधिप = राजा।

शेर ही जंगल का एकछत्र राजा है, हाथी के खून से अपने आप ही उसने अपना राज्याभिषेक कर लिया है।

४६ काँपतु कोपित केहरी—क्रुद्ध शेर विकराल मुँह बाये काँप रहा है (क्रोध की अधिकता में सब काँपने लगते हैं) वही मानों लाल लाल अँगारे जल रहे हैं अथवा प्रलयकाल के लाल (सूर्य) चमक रहे हैं।

४७ छिन्न भिन्न है—करीन्द्र = हाथियों का राजा। कुंभ = गंडस्थल। दार्यो = फाड़ दिया।

मस्त हाथी के मद का स्वाद लेने वाले भौंरों की भीड़ छिन्न-भिन्न हो कर क्यों उड़ रही है ? मालूम पड़ता है कि कहीं वीर शेर ने हाथियों के राजा का गंडस्थल फाड़ दिया है।

४८ पराधीन सब—बल और वीर्य से हीन ये सब तो पराधीन दिखाई देते हैं, हे शेर इस जंगल में (बल और वीर्य वाला) एक तू ही स्वाधीन है।

४९ जा तनु वारिधि—अतनु = बिना शरीर वाला,❀ कामदेव। वारिधि = समुद्र। तामधि = उस में।

जिसके शरीररूपी समुद्र में सदा काम की तरंग उठती रहती है अर्थात् जो सदा काम-वासना में फँसा रहता है, बताओ, उसमें युद्ध की उमंग कैसे उठेगी ?

५० होति लाख में—अनल-वर्न = आग के रंग की, आग के समान। दुवन = शत्रु। दीह = दीर्घ।

आग के रंग की लाखों में कोई वह एक ही आँख

❀ एक बार कामदेव ने शिवजी के मन में कामविकार पैदा कर उनकी समाधि भंग करनी चाही। और उन पर अपने कुसुम-बाण चलाए। इस पर क्रुद्ध हो शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोल उसे भस्म कर दिया। तब उसकी स्त्री रति विधवा होकर विलाप करने लगी। अन्त में कृपालु शिवजी ने कहा कि कामदेव अमर होगा पर अब से वह बिना शरीर के रहेगा, और जीवों के मन में उसका निवास होगा। इसीलिए उसे अतनु या मनोज कहते हैं।

होती है जो बड़े भारी शत्रु-समूह को देखते ही जला कर राख कर देती है।

५१ सुभट नयन=सुभट=वीर। अंगारु=अंगारा। उछाह=उत्साह।

वीरों की आँखें अंगारे के समान हैं पर उनमें एक आश्चर्य दिखाई देता है कि ज्यों-ज्यों उन पर उत्साह-रूपी जल पड़ता त्यों-त्यों वे धधकती जाती हैं।

५२ जाव फूटि—रति-रंग-रली=कामक्रीड़ा। अलसौंही=आलस्ययुक्त।

कामक्रीड़ा के कारण आलस्ययुक्त वे आँखें फूट जायँ। और स्वाभाविक ओज (पराक्रम) की ज्वाला से जलती हुई (अर्थात् ओज युक्त) आँख ही लाखों युग जीती रहे।

५३ सुरत रंग—सुरत=रतिक्रीड़ा। दृगनि=आँखें।

आँखों में रतिक्रीड़ा का रंग कहाँ और रण ओज (युद्ध के पराक्रम) की कान्ति कहाँ? इससे (अर्थात् पराक्रम की कान्ति से) तो मुख उज्ज्वल होता और उससे (क्रीड़ा) से मुख काला होता है।

५४ वसति आप—छोटे से शरीर वाली यह तलवार आप तो छोटे से म्यान में रहती है पर इसका अवदात (निर्मल) यश तीनों लोकों में भी नहीं समाता।

५५ तड़ित और तलवार—तड़ित=बिजली। दुरि जात=छिप जाती है।

बिजली और तलवार में समता किस तरह हो सकती है,

ज्यों ही यह तलवार दमक कर चमकती है, त्यों ही वह बिजली छिप जाती है।

५६ वह नांगो तलवार—वह नंगी तलवार भी (जो पहले युद्ध में नंगी ही दौड़ती फिरती थी) अब लज्जायुक्त स्त्री हो गई है। उसने म्यान से मुख बाहर नहीं निकाला, मानों परदे वाली हो।

५७ इत सर—सर बाण। सारँग = धनुष। अँगना = स्त्री।

इधर बाण धनुष पर चढ़ता है और चढ़ कर रण का राग गाता है। उधर शत्रु की स्त्रियों के अंग से स्वाभाविक सोहाग के चिह्न उतर जाते हैं—अर्थात् बाण धनुप पर चढ़ते ही शत्रुओं के प्राण हर लेता है।

५८ गो घातक वा—(दुष्यंत के पुत्र भरत के बारे में प्रसिद्ध है, कि वह शेर से खेला करता था! कवि ने उसी की वीरोक्ति का यहाँ वर्णन किया है)।

हे माँ, उस गौ को मारनेवाले शेर की पूँछ खींच लूँगा, उसके तेज दाँतों को तोड़ दूँगा और उसकी मूँछ उखाड़ लूँगा।

५९ प्रेम मरम जाने—क्रूर = क्रूर, निर्दय। मूर = मूल, मूल्य।

विषयी कायर और निर्दय प्रेम के रहस्य को क्या समझ सकता है, एक सच्चा शूरवीर ही रस के–प्रेम के–मूल्य को समझ सकता है। अर्थात् जो कायर अपने प्रियतम के लिए त्याग नहीं कर सकता, वह प्रेम के रस को क्या समझेगा, सच्चा रणशूर बात-बात में अपने प्रियतम के लिए सर्वस्व वार सकता है, अतः वही प्रेम का रहस्य जान सकता है।

६० रे विषयी—कपोत व्रत = कबूतर कष्ट के समय नहीं बोलता, केवल खुशी के समय गुटरगूँ-गुटरगूँ करता है। इसीलिये चुपचाप

दूसरों के अत्याचारों को सहना, दूसरे के पहुँचाए हुए अत्याचारों पर चूँ भी न करना कपोत-व्रत कहाता है।

हे विषयी! काम-वासना में फँसे हुए व्यक्ति! अपने को प्रेमी कहाते तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आती! अरे बताओ तो सही आज कितने आदमी कपोत-व्रत को पालन करने वाले हैं, चुपचाप प्रेम-पीड़ा को सह सकने वाले हैं।

६१ सब तो साँचे—ढार=ढाँचा। प्रेम-मेंड-रखवार=प्रेम के मार्ग की रक्षा करने वाला अर्थात् प्रेम निभाने वाला।

और सब तो एक ही साँचे में ढले हुए हैं पर ये दो उस ढाँचे में नहीं ढले—एक तो अंत तक प्रेम निभाने वाला और दूसरा सीस चढ़ाने वाला।

६२ मथि मथि—अच्छर-निधि=पंडित।

पंडित रट-रट कर मर गये पर कुछ भी सार नहीं निकला। एक प्रेमी और एक सूरमा ये दो ही भवसागर से पार हुए हैं।

६३ और अस्त्र केहि काम—जो प्रेम-रूपी अस्त्र साथ में हो तो और हथियार किस काम के, उनकी क्या ज़रूरत है? क्योंकि प्रेम रूपी रथ पर चढ़कर लड़ने वाले के हाथ में ही महारथियों के मस्तक हैं।

६४ खंड खंड ह्वै जाय—चाहे टुकड़े-टुकड़े हो जाना पर एक धर्म को न छोड़ना। हे लाल, तुम्हें इस तलवार की सौगंध है, कि कुल की लाज को पकड़े रखना—कुल की लाज न गँवाना।

६५ कह्यौ माय—गहाय=पकड़ा कर। करवाल=तलवार। जनि=मत। पयोधरनुकौ=स्तनों का।

माता ने मुख चूम कर और हाथ में तलवार पकड़ा कर कहा कि हे लाल! मेरे स्तनों के दूध को न लजाना।

६६ चूर चूर ह्वै—अन्त तक चूर-चूर हो कर भी कुल की लाज

की रक्षा करना। माता के दूध और पिता की तलवार की आज ही परीक्षा है।

६७ लोटि लोटि—जिस पर लोट लोट कर तुम आज तक धूलि से लिपटते रहे हो अर्थात् जिसकी धूल में तुम खेलते रहे हो हे वत्स, आज उस पृथ्वी-माता की लाज तुम्हारे हाथ में है।

६८ मिल्तु न पत्रा—पत्रा = पंचांग, पत्री। सोधत = ठीक करते।

कायर आदमियों को (लड़ने के लिए) पञ्चांग में कोई अच्छा दिन ही नहीं मिलता और इसलिए वे लड़ते नहीं। पर रण बाँकुरे वीर नक्षत्र, वार, तिथि और चन्द्र आदि ठीक नहीं करते, वे तो लड़ना ही जानते हैं।

६९ रहिहों आज—हे हरि, अपने प्रण की लाज रखकर तुम को आज अस्त्र पकड़वा के ही रहूँगा! या तो अब यहाँ भीष्म ही रहेगा, अथवा यदुराज तुम ही रहोगे, अर्थात् या तो भीष्म का प्रण रहेगा या यदुराज का ही।

७० इत पारथ रथ—पारथ = अर्जुन।

इधर अर्जुन के रथ के सारथी श्रीकृष्ण है, उधर रणवीर भीष्म हैं। दोनों प्रण के पालने वाले हैं अतएव दोनों ही तिल भर भी टालने से नहीं टलते।

७१ भानु अस्त लौं—यदि आज सूर्यास्त तक जयद्रथ जीता बच गया तो गांडीव को तोड़-ताड़ कर मैं अर्जुन चिता जला कर अपने शरीर को भस्म कर दूँगा।

७२ लै न सक्यो—हे श्रीकृष्ण, जो आज अधम जयद्रथ के प्राण हरण न कर सका तो मैं अर्जुन नपुंसक होकर गाण्डीव नहीं पकड़ूँगा।

७३ मूँछ न तो लों—मूल पुस्तक में पहली पंक्ति में "प्रताप भुजहीन"

के स्थान पर 'प्रताप पुजहीन' छप गया है। अतः इसका अर्थ इस तरह करना पड़ता है—मैं प्रताप पूजाहीन (पुजहीन) होकर तब तक मूँछ नहीं ऐंठूँगा, जब तक चित्तौड़ गढ़ को स्वाधीन न कर लूँगा। पर यह अर्थ कुछ नहीं बनता, वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—जब तक मैं प्रताप चित्तौड़गढ़ को स्वाधीन न कर लूँगा, तब तक मैं भुजाओं से हीन होकर मूँछों को नहीं ऐंठूँगा।

७४ महल नाहिं—मैं प्रताप महल में तब तक पैर नहीं रक्खूँगा, और कुटी बनवाकर नहीं रहूँगा, जब तक दुबारा ध्वजा न फिरवा दूँगा।

७५ मिलियो तहँ—परखति = प्रतीक्षा करते हुए। त्रिसिख = बाण। पौन्ह = पहनकर। उर = हृदय।

हे प्रिये वहाँ—स्वर्ग में—प्रतीक्षा करते हुए मुझे मिलना, मैं सर्वस्व वार कर तुम्हें मिलूँगा। मैं बाणों का हार पहने होऊँगा, और तुम अग्नि की ज्वाला की माला हृदय में धारण करके आना।

७६ सुमृदु सिरीप—सिरीप-प्रसून = सिरीं का फूल, यह बहुत ही कोमल होता है। प्रकृतवीर = स्वाभाविक वीर। हीय = हृदय।

स्वाभाविक वीर का हृदय कोमल सिरीष के फूल से भी अधिक कोमल और वज्र से अधिक कठोर होता है इसलिए उस का चित्र किसी ने नहीं खींचा किसी से नहीं खींचा जा सकता।

७७ झांसी दुर्गम—झाँसी का दुर्गम दुर्ग धन्य है, उसकी महिमा असीमित और अद्भुत है, जहाँ चंचला (लक्ष्मी—लक्ष्मी बाई) ने दुर्गा का रूप धारण कर अवतार लिया था।

७८ पराधीनता दुख—यह पराधीनता की दुःखभरी रात काटे नहीं कटती। हाय, स्वतन्त्रता का पवित्र सवेरा अब कब होगा?

७९ अथयो बीर्य—सुन्दर (भावन) भारतवर्ष में अब वीर्य और बल का सूर्य अस्त हो गया है। अब तो दुखमयी अत्यधिक अँधेरी संध्या आ गई है।

८० निजतासों—अब तो अपनेपन से शत्रुता है, और पराये पन से स्तुति है। अपने तो पराये, और पराये अपने हो गये हैं, हे देव, यह कैसा ढंग है?

८१ पर-भाषा पर-भाव—पराधीन मनुष्य की यही पूरी पहचान है कि उसकी भाषा विदेशी, भाव विदेशी, आभूषण विदेशी और पहरावा विदेशी होता है।

८२ दंभ दिखावत—दंभ = पाखंड। मतिअंध = मूर्ख।

यह मूर्ख पराधीन मनुष्य धर्म का पाखंड दिखाता है। पर पराधीन और धर्म का भला क्या सम्बन्ध? अर्थात कहीं पराधीन मनुष्य भी धर्म पालन कर सकता है?

८३ जैहे डूब घरीक—घड़ी भर में भारत के पुण्यों का समूह डूब जायगा। पराक्रम और बलवीर्य का सुदृढ़ जहाज आज भारत में नहीं रहा।

८४ जरि अपमान—अपमान के अंगारों से जल कर अब भी तू राख की तरह जीता है। हे पृथ्वी पर खाली भाररूप, नीच, बेशर्म क्यों न तू गर्भ से गिरकर नष्ट हो गया।

८५ दई छाँडि—तुमने अपनी सभ्यता, अपना समाज, और अपना राज छोड़ दिया, साथ ही अपनी भाषा छोड़कर तुम आज पराये हो गये हो।

८६ मरन भलो—अपने धर्म में मर जाना अच्छा है, परन्तु दूसरों का धर्म भयदायक है, पर गुलाम आदमी अपने और पराये का यह भेद क्या समझ सकता है?

८७ तुच्छ स्वर्ग—जो एक स्वतंत्रता के लिए स्वर्ग को भी तुच्छ गिनता है, बस उसी के हाथ में आज भारत की लाज है।

८८ भीख सरिस—पाँसुरिनु = पसलियों से। मसक = मच्छर पयोधि = समुद्र।

भीख की तरह स्वाधीनता कन कन माँग कर प्राप्त करना चाहते हो, क्या कभी मच्छर की पसलियों से भी किसी ने समुद्र को पाटा है अर्थात् स्वाधीनता भीख के समान माँगने से नहीं मिलती।

८९ अणु अणु पै—हे बलशाली महाराणा प्रताप, तेरे प्रचंड प्रताप से मेवाड़ के अणु अणु पर तेरी छाप लगी हुई है।

९० जगत जाहि—जिस स्वतंत्रता को जगत ढूँढता फिरता है। हे निष्ठुर राणा प्रताप, वही स्वतंत्रता स्वयं व्याकुल होकर अब भी तुझे ढूँढती फिरती है।

९१ ओ प्रताप—हे मेवाड़-पति प्रताप! तेरा यह कैसा काम है कि दुष्टों को खाती तो तेरी तलवार है पर नाम काल का होता है।

९२ गरब करत—उमँगि = ऊँचा होकर। गिरि-शृंग = पहाड़ की चोटी। नभ = आकाश। उतंग = ऊँचा।

हे गिरि-शृंग, तू इतना ऊँचा होने का गर्व क्या करता है? शिवाजी का यश-गौरव आकाश से भी ऊँचा है। तू उसके मुकाबले में क्या है?

९३ पराधीनता सिंधु—पराधीनता समुद्र में अब हिन्दू और हिन्द डूब रहे हैं, हे पतधर (लाज रखने वाले) गुरुगोविन्द अब तुम्हारे हाथ में ही पतवार है।

९४ माथ रहौ—गुरु गोविन्दसिंह के लाल (पुत्र) धन्य हैं जो यह कहते-कहते दीवार में चुन दिये गये कि हमारा सिर रहे या न रहे पर हम सत्य अकाल पुरुष को मानना नहीं छोड़ेंगे।

९५ अरे अहेरी यह—अहेरी = शिकारी।

अरे डरपोक शिकारी, यह तू क्या शिकार करता है—इन छोटी छोटी चीज़ों को क्या मारता फिरता है ? क्यों नहीं तू लपक कर और ललकार कर शेर को पकड़कर पछाड़ देता ?

९६ बस काढ़ौ—बस, म्यान से यह तीक्ष्ण तलवार न निकालो। जानते नहीं कि यहाँ सुकुमार (कोमल) रङ्गीले, छैल-छबीले खड़े हैं !

९७ कवच कहा—ये लचकीले मृदु शरीर (वाले मनुष्य) कवच क्या पहनेंगे, फूलों के हार के भार से ही जो तीन तीन बल खाते हैं।

९८ कहा भयो इक—यदि तुम्हारे रणधीर (शूरवीर) शत्रु ने तुम्हारा एक किला गिरा लिया तो क्या हुआ ? हे रतिवीर ! तुम तो माननियों (स्त्रियों) के मान-रूपी दुर्ग नित्य ही गिराते हो !

९९ सुमन सेज—बाल = बाला, युवती स्त्री। पौढ़े = सोते हो। तुम तो शृंगार करके बाला के संग फूलों की सेज पर सोते हो। भीष्म की शरशय्या की लाज रखने वाला अब कौन है ?

१०० ऐहैं कहु—काम-अधीर = कामातुर। तिय-मृग-ईछन = स्त्रियों की मृगों के समान आँखें।

ये कायर और कामातुर मनुष्य किस काम आयेंगे, स्त्रियों की मृगों के सामन आँखें ही जिन के लिये तीक्ष्ण तीर हैं।

१०१ बरसत विषम—चारों ओर भयंकर अंगारे बरस रहे हैं, और सुन्दर बाग राख हो गया है, तब भी ये कविरूपी कोकिलें नवदम्पति (नये जोड़े) के रति-रंग के गाने की कुहुक मचा रही हैं।

१०२ सुख संपति—सब सुखसंपत्ति लुट गई है, देश की छाती पर घाव हो गया है, पर अब भी कविराज (रति-क्रीड़ा के समय

बजती हुई) सोने की किंकनियों की झनकार सुन रहा है। अर्थात् देश की ऐसी बुरी अवस्था है, तब भी कवियों को देश की चिंता नहीं वरन् वे शृंगार के वर्णन में लगे है।

१०३ तिय कटि—बखानु = वर्णन। नव = नया। तिय-कटि-कृसता = स्त्रियों की कमर की सूक्ष्मता।

कवि लोग स्त्रियों की कमर की सूक्ष्मता का नित्य नया वर्णन करते हैं। वह (स्त्रियों की कमर) तो क्षीण (दुबली) नहीं हुई पर इन कवियों की बुद्धि अवश्य क्षीण (नष्ट) हो गई है।

१०४ मरत पूत—उधर पुत्र दूध के बिना मर रहा है, और व्याकुल किसान रो रहा है। पर हे दुष्ट, इधर तू बैठा हुआ सुंदरी स्त्री के साथ शराब पी रहा है।

१०५ वृष रवि—वृष = वृषराशि जो ज्येष्ठ मास में होती है। उसीर = खस। आतप = धूप।

ज्येष्ठ मास के सूर्य की धूप से व्याकुल हो कर उधर किसान बिना पानी के कलप कर मर रहा है, और इधर तुम खस की टट्टियों में बैठे अरगजा (केसर, चंदन आदि सुगन्धित और शीतल पदार्थ) का लेप कर रहे हो।

१०६ उत हाकिम—मनोज = कामदेव। रैयत = प्रजा।

उधर हाकिम प्रजा की छाती फाड़कर खून पी रहे हैं और इधर हे काम से अधीर राजा, तु शराब पी रहा है।

१०७ लखि जिनके—जिनकी मजबूत भुजाओं को देखकर यमदूत भी काँपते थे, अब भारतभूमि पर वे बाँके राजपूत कहाँ है, अर्थात् नहीं हैं।

१०८ रे निलज्ज—हे निर्लज्ज, जिन मूँछों के रहते हुए तूने शत्रु के सामने सिर झुका दिया, अब तू उन मूँछों पर फिर फिर हाथ क्यों फेर रहा है?

१०९ कहँ प्रताप—वह प्रलय, वह घमंड, वह सजधज (ठाट-बाट) और वह ऐंठ तथा मर्यादा अब कहाँ है, अब तो सब कोरी शान है।

११० अब कोयल—हे कोयल, अब वह वसंत ऋतु कहाँ, और डाली डाली पर तेरा 'कू' 'कू' करना कहाँ, और वह आमकी सरस बौर कहाँ, और वह जंगल में पक्षियों का विहार कहाँ? वे सब तो जब अच्छे दिन थे, तभी थे, अब कहाँ।

१११ ह्वै है पुनि—तुम फिर स्वाधीन बनोगे और सदा गुलाम न रहोगे। तब (स्वतंत्र होकर) इस युग के बलिदान का इतिहास लिखना।

११२ आजु कालि—आज-कल, आज कल कब से कर रहे हो, पर कभी तैयार नहीं हुए। उधर तो घलाघली (मारपीट) हो रही है, और इधर तुम अभी हथियार ही साफ कर रहे हो।

११३ भूलेहुँ कबहुँ न—भूलकर भी कभी देश से विमुख (देश द्रोही) आदमी के पास नहीं जाना चाहिये। देशद्रोही के साथ रहने से तो नरक में रहना अच्छा है।

११४ तन काले—हमारा शरीर काला है, हमारे दिन भी काले (बुरे) हैं और हमारा कुल, घर तथा खान्दान सब काला है। पर काले कुरूपों का हृदय काला नहीं होता। मूल पुस्तक में 'कुरूप वारेनु कौं' की जगह 'कुरूप कारेनु कौं' चाहिए।

११५ चित्र आर्य—आर्य साम्राज्य का चित्र कोई भी न उतार सका था, यहाँ तक कि चीन और ग्रीस के चतुर चित्रकार भी हार गये थे।

११६ ऐहैं याही—संसार में इधर-उधर फिरने से क्या होता है, हम तो फिर इसी जगह (इसी देश में) आ जायँगे, जैसे कि जहाज का पक्षी फिर जहाज पर उड़कर आ जाता है।

११७ अथयौ सो—वह भीष्म भानु (हमारा प्रताप) जो अस्त हुआ, सो अस्त हो गया, वह फिर उदय न हुआ। आर्यशक्ति की जय-रूपी कमलिनी तब से (उस सूर्य के अस्त हो जाने से) ही मैली पड़ गई, मुरझा गई। मूल पुस्तक में 'भीषममान' का जगह "भीषमभान" चाहिए।

११८ कठिन राम को काम—मूल पुस्तक में 'कठिन राम को नाम' छपा है, उसके स्थान पर 'कठिन राम को काम' चाहिये। राम के समान काम करना कठिन है, पर राम का नाम जपना (राम राम करते रहना) आसान है। जो राम के काम करते हैं, उनका ही राम-रूपी परमात्मा से काम पड़ता है।

११९ चूस गरीबनु—ये गरीबों का खून चूसकर इन्द्र के समान भोग (ऐश) करते हैं, फिर भी लोग उन्हें 'गरीब परवर' (गरीबों का रक्षक) कहते हैं।

१२० नभ जिमि बिन—जिस तरह आकाश चन्द्रमा और सूर्य के बिना (कांतिहीन) होता है,जैसे बिना पंखों का पक्षी (असहाय) होता है, जिस तरह बिना प्राणों के शरीर (व्यर्थ) होता है, वैसे ही बिना तेज के आँखें हैं।

१२१ इन नैननि—इन आँखों में दुखित दुर्बल और गरीबों क्यों नहीं रखते और अपने शरीर का बलिदान देकर दलित देश को स्वतंत्र क्यों नहीं करते ?

१२२ कलपावत—कब से निष्ठुरता का रूप धारण करके हमें कलपा रहे हो। हे करुणानिधान तुम भी आजकल के राजाओं के समान हो गए हो।

———

रामनरेश त्रिपाठी

तेरी छवि

हे मेरे—हे नाथ ! तेरी शोभा तीनों लोकों में छा रही है। कवि की वाणी में और मन में तेरी ही शोभा का चमत्कार है।

माता के निःस्वार्थ प्रेम में, प्रेमिका के मोह में, बालक के कोमल अधरों (होंठ) पर और उसकी मन्द मन्द मुस्कान की छाया में तेरी ही शोभा झलक रही है।

पतिव्रता—पतिव्रता नारी के पातिव्रत्य में, वृद्धों की लालची दिल में, होनहार नवयुवकों के ब्रह्मचर्य से जगमगाते यौवन में, तिनके के छुटपन में, पर्वत की अभिमान-भरी विशालता में, और रात्रि की घोर शान्ति में हे नाथ ! तेरी ही शोभा दिखाई देती है।

ऊषा की—उषा काल की चञ्चल वायु में, खेतों और खलियानों में सुख-दुःख के गीत गाते हुए सीधे-सादे किसानों में, तथा मेहनती किन्तु ग़रीब मजदूर की बहुत छोटी-सी इच्छा में और पति की प्रतीक्षा करती हुई ग़रीबनी के आशा में हे नाथ ! तुम्हारी ही झलक दिखाई देती है।

भूख प्यास—भूख और प्यास से व्याकुल अनाथ की मर्मभेदी पुकार में, दुखियों के निराशा से निकले हुए आँसुओं

में; प्रेमियों के मार्गों में, मतवाले मोर के रसीले नाच में कोयल की पञ्चम तान में, वनपुष्पों के स्वच्छन्द अभिमान में, और कलियों की अनन्त सुन्दरता में तुम्हारी ही छटा छिटकी हुई है।

निर्जनता—सन्तत = निरन्तर।

जनशून्य स्थान की व्याकुलता में, सन्ध्याकाल के भजन-कीर्त्तन में, निरन्तर परोपकार की सद्भावनाओं में, हे नाथ! तेरी ही शोभा का विकास है। जब तू स्वर्ग के भवन में चन्द्र-रूपी खिड़की खोल कर झाँक झाँक कर मुस्कराता है, उस समय इस धरातल में एक नवीन जीवन की छटा दिखलाई देती है।

कविता का सारांश यह है--कि सृष्टि में जो कोई वस्तु भी चरम सीमा तक पहुँच चुकी है, वह उसी गुप्त शक्ति (भगवान्) से ही मिली है--जो कुछ भी अलौकिक है, दिव्य है, विशिष्ट है, कल्पनातीत है, मधुर मनोहर है वह सब उसी ईश्वर की शोभा से ओत-प्रोत है।

११ जी में—चित्त चाहता है कि सूर्य या चन्द्र की किरणों में विलीन हो कर एक क्षण में ही पृथ्वी के इस विशाल शोभा के सागर में कूद ही तो पड़ूँ--ताकि सदा के लिए तुम्हारी शोभा निहारता रह सकूँ।

अन्वेषण (खोज)

इस कविता में कवि दिखाना चाहता है कि हम दीनबन्धु भगवान को गा-बजाकर या धन का मद दिखा कर रिझाना चाहते हैं, उसके दर्शन मन्दिरों में, कुंओं में, वनों में तथा स्वर्ग में

पाना चाहते हैं, परन्तु परमात्मा के दर्शन इन स्थानों पर नहीं होते, अपितु दीनबन्धु भगवान के दर्शन दीनों के घरों में, दुखियों की आहों में, और पतितों की परिताप-पीर में होते हैं, जिस की हम कभी आशा भी नहीं करते।

हे नाथ! मैं जब तुझे (रम्य समझकर) किन्हीं सुन्दर सुन्दर कुञ्जों में और वनों में ढूँढ रहा था—तब तू किसी गरीब के घर मेरी खोज कर रहा था।

तू किसी दुर्बल की आह बनकर मुझे पुकार रहा था पर मैं शंख, घण्टे, घड़ियाल, सितार, संगीतादि से तुझे रिझा कर बुला रहा था।

तू दीन-दुर्बलों के द्वार पर खड़ा-खड़ा मेरी इन्तज़ार कर रहा था पर मैं किसी रमणीक उद्यान में तेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

तू किसी (गरीब) के आँसू बन कर मेरे लिये बहा—अर्थात् किसी गरीब के आँसुओं में बहकर तूने मेरा मन अपनी ओर आकर्षित करना चाहा पर उस समय मेरी आँखें अपने यार के मुँह पर लगी हुई थी।

हे नाथ! मैं (मन्दिरों में) बाजे बजा-बजा कर जब तुझे रिझा रहा था—तेरी झूठी प्रशंसा कर रहा था; उस समय तू किन्हीं पतितों (दलितों) के संगठन में (उद्धार में) लगा हुआ था।

जगत् की प्रत्येक वस्तु को नाशवान जान कर मेरा मोह जगत् से टूट गया था—उस समय तू किसी आदमी के पतन में उत्थान भर रहा था, अर्थात् किसी पतित आदमी का उद्धार कर रहा था।

तू तो बेबस (असहाय) हुए पतितों के बीच में मौजूद था, पर (मैं तुझे दिव्य समझ कर तेरा स्थान भी स्वर्ग में ही समझ रहा था इसलिये तुझे ढूँढने को) मैं सदा आकाश की

ओर स्वर्ग में निहारता रहा, फिर भला तुम्हारे चरणों पर कैसे झुकता ?

इस तरह तूने अनेकों अवसर मुझे मिलने को दिये—रोग (शोक) कष्ट भेज भेज कर कई बार चेताया परन्तु मैं तुझे न मिल सका क्योंकि मुझे तो बातें बनाना, गाल बजाना ही आता था और तू कर्म करने में लगा था अर्थात् तू बातों की अपेक्षा कर्म को अधिक पसंद करता था।

हरिश्चन्द्र और ध्रुव§ ने कुछ और ही बताया था—अर्थात् उन्हों ने अपने उदाहरण द्वारा सर्वस्व त्याग के अनन्तर तुझे पाकर यह बताया था कि परमात्मा धन-सम्पत्ति में नहीं है अपितु त्याग में है। पर मैं तो तेरी शक्ति धन में समझ रहा था अर्थात् मैं धन को ही तेरा रूप समझ रहा था।

हे ईश्वर ! मैंने तुझे रावण की बढ़ती हुई कामनाओं में ढूँढना चाहा, (क्योंकि मैंने देखा कि रावण अपनी भुजा के बल से एक चक्रवर्ती और विपुल सम्पत्तिशाली राजा बना हुआ है) परन्तु (ज्ञान-चक्षु से देखने पर विदित हुआ कि) तू परोपकारी तपस्वी

---

§राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—सुनीति और सुरुचि। सुनीति के लड़के का नाम ध्रुव था और सुरुचि के लड़के का नाम उत्तम था। राजा का प्यार सुरुचि से अधिक था। एक दिन उत्तम राजा की गोद में खेल रहा था, इतने में ध्रुव वहाँ आया और उसने अपनी पिता की गोद में बैठना चाहा, इस पर सुरुचि ने कहा कि तू मेरे पेट से नहीं पैदा हुआ, इसलिये तू राजा की गोद में नहीं बैठ सकता, यह आसन तो मेरे लड़के के लिये ही है। सो सुरुचि के वाक्-प्रहार से दुखी होकर ध्रुव राज्य छोड़ कर चला गया और ध्रुव-पद की प्राप्ति में जा लगा।

दधीचि* ऋषि के अस्थिपञ्जर में विराजमान था, रावण की लालसा में नहीं। अर्थात् परोपकारी आत्माओं में ही उसका निवास है।

उस दिग्विजयी सिकन्दर के विक्रम में हे नाथ! मैं तुम्हारी सत्ता समझ रहा था परन्तु तुम तो पहाड़ खोदने वाले (शीरीं के सच्चे प्रेमी) फ़रहाद† के उन्मत्त हृदय में विराजमान थे।

(फाँसी के तख्ते पर लटकते हुए) ईसा की हाय में तू ही खेल रहा था, अर्थात् तू ही ईसा को आत्म-बलिदान का बल दे रहा था, और जब मृत्यु-शय्या पर पड़ा-पड़ा महमूद अपनी जन्म-भर की बटोरी हुई माया को देख-देख कर रो रहा था और सोच

---

* कहानी—पृष्ठ ३४३ पर देखिये।

† भिखारी फ़रहाद का शीरीं नामक एक कुलीन कन्या से प्रेम हो गया था—एक बार भिक्षा लेने के समय वह उस पर मुग्ध हो गया। परन्तु कहाँ वह याचक और कहाँ वह राजकुमारी! यह असम्भव था कि उनका विवाह हो जाय। किसी ने फ़रहाद से कहा कि इस प्यासे उजड़े गर्मी से तपे हुए नगर में यदि तुम पहाड़ से एक धारा जल की बहा दो तो तुम्हें शीरीं मिल जावेगी। प्रेमी फ़रहाद कुदाल लेकर पर्वत पर जा पहुँचा। एक-एक प्रहार में शीरीं का प्रेम भर भर कर उसने जल-धारा उस नगर में बहा दी। "जहाँ चाह वहाँ राह"। यह दुष्कर कार्य भी भगवान् की कृपा से सहज हो गया। जल-धारा जब पहुँच गई तो किसी ने उपहास में कह दिया—ओ फ़रहाद! शीरीं तो मर गई तुम देर से पहुँचे—यह सुनना था कि वह प्रेमी उसी द्वार पर प्राण-विसर्जन कर स्वर्गलोक सिधार गया। शीरीं ने जब अपने लिए ऐसा आत्मत्याग सुना तो वह भी वहीं फ़रहाद के साथ परलोक जा पहुँची। तभी से फ़रहाद का उपनाम "कोहकन" अर्थात् पर्वत को खोदने वाला हो गया।

रहा था कि इसमें से मेरे साथ कुछ भी नहीं जा रहा तब तू ही उसके रोने पर हँस रहा था।

भक्त प्रह्लाद तेरा ठीक स्थान जानता था और तू ही मंसूर की "मैं खुदा हूँ" "मैं खुदा हूँ" की रट में मचल रहा था।*

अन्त में तू सत्य तथा अहिंसा के अवतार महात्मा गाँधी के अस्थिपंजर में—हड्डियों के समूह में—चमक पड़ा। पर मैं तो तुझे बली सुहराब के पीलतन (हाथी के समान हृष्ट-पुष्ट शरीर) में समझ रहा था।

जब हम दोनों में इतना अधिक भेद है अर्थात् जहाँ मैं तुझे समझता हूँ वहाँ तू दिखाई नहीं देता अपितु बिलकुल उससे विपरीत स्थान पर तू दिखाई देता है तब मैं तुझ से कैसे मिल सकता हूँ? हे भगवन्! अन्त में थककर तेरी शरण में आया हूँ।

सूर्य की किरणों में जो रूप है, वह तू ही है। वायु में जो प्राण देने की शक्ति है और आकाश में जो इतना विस्तार है, वह तूही है।

हिन्दू लोग जिसे पाने के लिए ज्ञान-मार्ग का आसरा लेते हैं, मुसलमान जिस पर ईमान लाते हैं, ईसाई जिसे प्रेम-रूप समझते हैं, सज्जन जिसे सत्यस्वरूप मानते हैं, वह और कोई नहीं तू ही है।

हे दीनों के नाथ! मुझे ऐसी बुद्धि दो कि मैं तुम्हें ही आँखों से, मन से तथा वाणी से देखूँ, विचारूँ और बोलूँ।

कष्ट सहन करने वालों का ही नाम अमर हो जाता है। संसार उन्हें स्मरण करता रहता है, हे प्रभु! मुझे तुम कष्ट सहने की शक्ति प्रदान करो, जिससे मैं दुःख में घबड़ाऊँ नहीं सुख में तुम्हें बिसार न बैठूँ, इस प्रकार का विचित्र तथा प्रबल भाव मेरे व्याकुल मन में भर दो।

---

* मंसूर की कहानी पृष्ठ ३३२ पर देखिए।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

नयन

नलिन = कमल । मीन = मछली । प्रतीक्षा = बाट जोहना । शर्वरी = रात। लोल = चंचल। काल-ताल-तरंग = कालरूपी तालाब की तरंग । वेणु = बाँसुरी । निरत = लगे हुए। वादन = बजाना। विभु-गान = ईश्वर का गुण-गान। मर्म = रहस्य-भेद ।

"ये कमल के समान मदभरी मलीन आँखें हैं, या थोड़े पानी में बेचैन मछली हैं, (तात्पर्य यह है कि आँखें इतनी बेचैन जान पड़ती हैं, जितनी थोड़े पानी की मछलियाँ होती हैं) या किसी की राह देखते-देखते सारी रात बीत जाने के कारण ये दीन हैं, या रास्तागीर से ये बेचैन आँखें कह रहीं हैं 'हम तपस्वी हैं, सारे दुखों को सह रही हैं,समय-रूपी तालाब की तरंगों में बही हुई हम गरमी, बरसात और जाड़ेके दिन गिन रही हैं। (जिस प्रकार तपस्वी सभी दुख सहते हुए गरमी, बरसात, जाड़े के कष्ट बर्दाश्त कर लेते हैं, उसी प्रकार हम भी कर रहीं हैं)। हम बोलती नहीं हैं, किन्तु पतन और उत्थान में (गिरने और उठने में पाप-पथ पर जाने या धर्म-पथ पर चलाने में) बाँसुरी तथा सुंदर बाजों के साथ परमेश्वर का कीर्तन करने में जो मर्म (आनन्द) छिपा है, उसे हम जानती हैं, फिर भी हम उसी के (अपने प्रियतम के) ध्यान में लगी रहती हैं। आह, कितने बेचैन आदमियों के मन मिल चुके हैं, कितने हृदय खिल चुके हैं (अर्थात् उनकी इच्छाएँ पूरी हो चुकी

हैं), कितने हृदय हिल चुके हैं, प्रिय-व्यथा आग में वे लोग तप चुके हैं (अर्थात् प्यारे के वियोग की ज्वाला वे सहन कर चुके हैं) और उन प्रेमियों के दुख अब समाप्त हो गए हैं, किन्तु हमारे लिए ही वे मौन हैं। हे रास्तागीर, वे कोमल कुसुम हैं,या कौन हैं? अर्थात् तमाम लोगों के दुख दूर हो रहे हैं, सब अपने प्यारों से मिल रहे हैं, केवल हमारे ही वे—प्रियतम क्यों मौन हैं? वे फूल जैसे कोमल हैं, या निर्दय?

यमुना के प्रति

अतीत = भूत-काल। अलक = बाल। निर्निमेष = एकटक। विस्मृति = भूल जाना। पुलकों = रोमांचों।

हे यमुने, किस भूत-काल के दुर्जय जीवन को और किस के अपार रूप को सोने के फूल-के समान तूने अपने बालों मे गूँथ रखा है,(भूत-काल को गूँथ रखने से कवि का तात्पर्य यह है कि तेरे बीते जमाने का क्या इतिहास है)? तेरी एक-टक आँखों में किस विस्मृति की शराब का गाना छाया हुआ है, (अर्थात तुझे देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानों, उसमें बहुत-सी बीती हुई बातें डूबी हुई हैं)। तुम्हारी आँखों में, तुम्हारे रोमाँच में (लहरों में) अभी तक बेहद सुहाग छलक रहा है, (तुम अभी तक प्रसन्न जान पड़ती हो)। तुम्हारे मुक्तहृदय के सिंहासन पर भूत-काल का कौन सा सम्राट बैठा हुआ है जिसके मस्तक पर सूर्य्य, चन्द्र, तारे और सारा विराट संसार चमक रहा है। (अर्थात् तुम्हारा इतिहास किस महापुरुष के साथ संगठित है—यहाँ कवि का संकेत भगवान कृष्ण से है,जिन्होंने यमुना के तट पर अपना जीवन व्यतीत कर उसका महत्व बढ़ाया था)

स्मृति

१ जटिल-जीवन—गतिमयि = चंचल ।

जिंदगी की शराब में तैर-तैर कर तुम चुप-चाप डूब जाती हो, अरी, हमेशा चंचल रहने वाली, तुम बार-बार उमड़ कर प्रेम की बातें करती हो । मेरे बीते हुए जमाने के जो गीत सो चुके हैं, (अर्थात् जिन्हें मैं भूल चुका हूँ) उन्हें सुना कर (फिर याद दिलाकर) मेरा ध्यान हर लेती हो ? (यहाँ प्रथम चार चरणों में मछली का रूपक बाँधा है, किन्तु मछली की क्रियाओं का ही वर्णन किया है। उपमान का नाम नहीं बतलाया । छायावादी कवि लुप्तोपमा का प्रयोग अधिक करते हैं, जिस तरह मछली पानी में तैरती है और डूब जाती है, बार-बार ऐसा ही करती है उसी प्रकार स्मृति भी जिंदगी की शराब में बार-बार तैरती और डूबती है—किसी की याद हमें आती है—और विलीन हो जाती है ।)

सफल जीवन—

मेरे सफल और उस सफल जीवन के, कहीं की जीत और कहीं की हार भरे हुए सब गानों का, तुम्हारी निर्भय झंकार जगा देता है । तब हवा से व्याकुल होने वाले (हिलने वाले) कमल की तरह मैं बेचैन और असहाय रह जाता हूँ । संपूर्ण छंद का आशय यह है कि स्मृति बीती हुई जिंदगी की सारी बातें—जिनमें कई जगह हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ है, कई जगह हमें हार खानी पड़ी हैं—हमारे मस्तिष्क में जाग्रत कर देती है, उस समय हमारी ऐसी स्थिति हो जाती है, जैसे

हवा से हिलने वाले कमल की। एक झोंका इधर से आया तो इधर हो गया, उधर से आया उधर हो गया। एक बात याद आते ही चित्त का भाव कुछ हुआ, दूसरी याद आते ही किसी दूसरी प्रकार का हुआ। इसी प्रकार परेशानी होती है।)

मुक्त शैशव—

(कहाँ गया) आज़ादी से भरा हुआ बचपन, जब मृदु-मधुर सुगन्धित वायु से हिलने वाले पत्तों की तरह छोटे-छोटे अंग स्नेह से काँपते थे, बिना खिले फूल की भाँति नया-नया (रस) संचय करते थे (नई-नई बातें सीखते थे) वह सुनहले प्रभात के समान जीवन आज बीत चुका है। वह ताल, वह गति, वह लय और वह छंद (अर्थात् बचपन की सारी बातें) सोये हुए भूत काल में बंद हो गई हैं।

(यहाँ पर कवि बचपन की तुलना प्रभात-काल से करता है। जिस तरह प्रभात में मधुर मलय-समीरण से पत्ते हिलते हैं, उसी तरह बचपन में लाड प्यार से छोटे-छोटे अंग पुलकित होते थे, बिना खिले कुसुमों में जिस प्रकार नये-नये रस—मधु-पराग का संचय होता है, उसी प्रकार शिशु का हृदय भीतर ही भीतर अनजान रूप से ज्ञान-संचय करता और विकसित होता रहता है। जिस प्रकार रात को सब सो जाते हैं, ये सुंदर बातें समाप्त हो जाती हैं उसी प्रकार उसका बचपन चला गया है।)

आँसुओं—निर्भर = झरना।

(कवि अपनी जवानी को याद करता हुआ कहता है)

ये प्राण सिमटकर आँसुओं के रूप में स्वच्छ निर्झर के जल-कणों की भाँति बहकर, जिसे जी भरकर जीवन-दान देते थे (अपने आप को सौंप देते थे) वह चुंबन की पहली हिलोर (लहर) आज तो सपने की याद-सी दूर-सी बीते हुए समय-सी हो गई है, आज उसका किनारा नहीं मिलता। (अर्थात् जवानी की वह उमंग जब किसी को प्यार करते थे, जब किसी के आगे आँसू बहाते थे, अपने जीवन को उसे सौंपना चाहते थे, अब तो वह सपना हो गई है ।)

तृप्ति वह—अभिराम = सुन्दर । क्लान्त = थकी हुई । गरल = विष ।

जो तृष्णा की अविकृत (न बदलने वाली) और स्वर्गीय आशाओं की सुंदर, थकी हुई और सोई हुई मूर्ति थी, जो विष को अमृत बनाने वाली (कष्टों को भी मधुर बनाने वाली) और अमृत की प्राण थी वह बालू के समान कहाँ विलीन हो गई वा शरीर के बंधनों से रहित वंशी की तान की तरह कहाँ खो गई है ।

तुम और मैं

इस कविता में ईश्वर और जीव का सम्बन्ध अनेक उपमाओं द्वारा बताया गया है ।

१ तुम तुंग हिमालय—तुंग = ऊँचा । शृंग = चोटी । सुरसरिता = गंगा । विमल = स्वच्छ । हृदय-उच्छ्वास=हृदय का उद्गार । कांत=सुन्दर । कामिनी=स्त्री । सुरापान=शराब पीना ।

भ्रांति=भ्रम। दिनकर=सूर्य। खर=तीक्ष्ण। जाल=समूह। सरसिज=कमल। मुसकान=फूलना, खिलना। रागानुग=इच्छा के पीछे पीछे चलने वाला, फलकामना से किया गया। शुचिता=पवित्रता। समृद्धि=ऐश्वर्य।

यदि तुम हिमालय के ऊँचे शिखर हो तो मैं चंचल गति-वाली गंगा हूँ। अगर तुम स्वच्छ हृदय के उद्‌गार हो तो मैं सुन्दरी कवितारूपिणी स्त्री हूँ। अगर तुम प्रेम हो तो मैं शान्ति हूँ, तुम सुरापान के घने अंधकार हो तो मैं मतवाली मस्ती हूँ। तुम सूर्य की तेज़ किरणों के समूह हो और मैं कमल की मुस्कान हूँ। तुम वर्षों के बीते हुए वियोग हो और मैं पिछली पहचान हूँ। तुम योग हो और मैं सिद्धि हूँ। तुम फलकामना से किये गये निश्छल तप हो और मैं उस द्वारा प्राप्त पवित्रता तथा सरल ऐश्वर्य हूँ।

जैसे हिमालय ऊँचा है, वैसे ही ईश्वर महान् है तथा जीव नदी की भाँति नीचे की ओर जाने वाला है। वह ईश्वर स्थिर है, जीव चंचल है। जैसे हिमालय से गंगा निकली है वैसे ही ईश्वर से जीव निकला है। दूसरी उपमा में भी ईश्वर मूल बताया गया है क्योंकि विमल हृदय-उच्छ्वास से ही कविता प्रकट होती है, इसी प्रकार ईश्वर जीव का कारण है। प्रेम सचेष्ट होता है, ईश्वर भी ऐसा ही है। शांति निश्चेष्ट होती है, जीव भी ऐसा ही है। मस्ती का कारण सुरापान होता है, ईश्वर भी जीव का कारण है। सूर्य की किरणों से कमल खिलता है, ऐसे ही ईश्वर की ज्योति से जीव प्रफुल्लित होता है। 'वर्षों के वियोग' इसलिए कहा है कि ईश्वर 'पुरुष पुरातन' है उसकी कोई सीमा नहीं। 'पिछली पहचान' में समय की सीमा लक्षित है वैसे ही

जीव का जीवन भी सीमित है। सिद्धि योग के ऊपर आश्रित है, ऐसे ही परमात्मा पर आश्रित जीव है। तप कारण तथा समृद्धि कार्य है। ऐसे ही ईश्वर कारण तथा जीव कार्य है।

२ तुम मृदु मानस के भाव—मानस=मन। मनोरञ्जिनी=मन को लुभाने वाली। नंदन-वन=इन्द्र का उपवन। विटप=वृक्ष। तल=नीचे की।प्रेममयी=प्रेमिका। कंठहार=गले की माला। वेणि काल-नागिनी=काली नागिन की भाँति चोटी। कर पल्लव-झंकृत=कोमल पत्तों के समान हाथों द्वारा वजाई गई। रेणु=धूलि। अधर=ओंठ। वेणु=बाँसुरी।

तुम मन के कोमल भाव हो और मैं उसको (प्रकट करने वाली) मनोरंजक भाषा हूँ। तुम नन्दन वन के घने पेड़ हो और मैं उसके नीचे की शीतल छाया और शाखा हूँ। तुम प्राण हो और मैं शरीर हूँ। तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हो और मैं मन को मोहने वाली माया हूँ।

तुम प्रेममयी युवती के सुन्दर कंठ के हार हो और मैं काली साँपिनी के समान उसकी चोटी हूँ।तुम कोमल पत्तों के समान हाथों द्वारा बजाई गई सितार हो और मैं व्याकुल जुदाई की रागिणी हूँ। तुम रास्ता हो और मैं धूल हूँ। तुम राधा (प्रकृति) के मनमोहन कृष्ण हो और मैं उसके अधरों की बाँसुरी हूँ।

भाव ही भाषा का रूप धारण करता है, इसी प्रकार जीव भी ईश्वर का ही स्वरूप है। भाव दिखाई नहीं देते, भाषा लिपिबद्ध होने पर दिखाई देती है। इसी प्रकार ईश्वर निराकार है पर जीव देह धारण करने पर साकार हो जाता है। वृक्ष अंगी और शाखा अंग है, ईश्वर और जीव में भी यही संबंध है। प्राणहीन शरीर व्यर्थ है, ईश्वर-हीन जीव भी व्यर्थ है। ब्रह्म के संकेत पर माया नाचती है,

जीव भी इसी प्रकार ईश्वर के संकेत पर नाचता है। ब्रह्म निर्लिप्त है और माया संलिप्त, इसी तरह ईश्वर और जीव को समझना चाहिए। कंठहार आगे होता है, वेणी पीछे। ऐसे ही ईश्वर आगे चलने वाला है, जीव उसके पीछे। सितार रागिनी का कारण है. ईश्वर जीव का कारण है। पथ में कितने ही धूलि कण हैं, ईश्वर में अनेक जीव सत्ता धारी व्यक्ति हैं। बाँसुरी में मनमोहकता फूँकने वाले श्रीकृष्ण हैं, ऐसे ही जीव में सौंदर्य भरने वाला ईश्वर है।

३ तुम पथिक दूर के—पथिक=यात्री। श्रांत=थके हुए। वाट जोहती=मार्ग देखने वाली। भव सागर=संसार-रूपी समुद्र। दुस्तार=जिसे पार कर सकना कठिन हो। नभ=आकाश। नीलिमा=नीला रंग। शरद-सुधाकर-कला-हास=शरद ऋतु के चन्द्रमा की (पूर्ण) कला की हँसी अर्थात् चाँदनी। निशीथ= आधी रात। मधुरिमा=मिठास, माधुर्य। गंध-कुसुम=फूल की महक। पराग=फूल की धूलि। मृदुगति=मंद चाल वाली। मलय समीर=मलयाचल की सुगन्धित हवा। शक्ति = देवी। अचला = दृढ़।

तुम दूर पथ के थके हुए पथिक हो, और मैं तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करने वाली आशा हूँ। तुम दुर्गम संसार-रूपी सागर हो और मैं उसके पार जाने की इच्छा हूँ। तुम आकाश हो और मैं उसकी नीलिमा हूँ। तुम शरदकाल के चन्द्रमा की कला की हँसी हो तो मैं आधीरात की मधुरिमा हूँ।

तुम सुगंधित फूल का कोमल पराग हो और मैं मलय पर्वत की मंद सुगन्ध वायु हूँ। तुम स्वेच्छाचार से युक्त पुरुष हो और मैं प्रेम द्वारा बाँधने वाली प्रकृतिरूपी जंजीर हूँ। तुम शिव

हो तो मैं शक्ति हूँ। तुम रघुकुल के गौरवस्वरूप रामचन्द्र हो तो मैं अचल भक्तिरूपी सीता।

ईश्वर आगंतुक है, जीव उसकी प्रतीक्षा करने वाला। ईश्वर समुद्र है, अगाध है, जीव उसकी खोज करने वाला, उसकी थाह ढूँढने वाला है। आकाश की भाँति ईश्वर अनंत है, अरूप है, जीव नीलिमा की भाँति सरूप है। रात्रि चाँदनी से देदीप्यमान होती है, जीव ईश्वर की प्रतिभासिक (जो वास्तव में नहीं पर भ्रम के कारण भासित हो, जैसे रस्सी में साँप का ज्ञान प्रतिभासित होता है) सत्ता से सचेतन है।

वायु पुष्पों की सुगंधि से सुवासित रहती है, जीव भी ईश्वर की ज्योति से चैतन्य है। ईश्वर और जीव में पुरुष प्रकृति का सम्बन्ध है; ईश्वर स्वतन्त्र है और जीव परतंत्र। जीव और ईश्वर में सीता और रामचन्द्र की तरह आराध्य और उपासक का सम्बन्ध है।

४ तुम हो प्रियतम—मधुमास = चैत्र मास। पिक = कोकिल। कल-कूजन = सुन्दर वाणी। मदन = कामदेव। पंच-शर-हस्त = हाथ में पांच बाण लिए हुए। मुग्धा = एक प्रकार की भोली नायिका। अंबर = आकाश, वस्त्र। दिग्वसना = दिशाएँ ही जिसके लिए वस्त्र हैं, नग्न। घन-पटल श्याम = बादलों का काला परदा। तडित्तूलिका-रचना = बिजली रूपी कूची द्वारा लिखी हुई चित्रकारी। रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य = रण-क्षेत्र में जोश में आकर वीर लोगों द्वारा किया गया नाच। नाद = ध्वनि। सार = तत्त्व। कुंद = एक सफेद फूल। इन्दु = चन्द्रमा। अरविंद = कमल। व्याप्ति = चारों ओर या सब जगह फैली हुई वस्तु।

हे प्रियतम! तुम चैत्र मास हो—वसंत ऋतु हो तो मैं सुन्दर आवाज़ वाली कोयल हूँ। तुम पाँच वाण हाथ में लिये हुए कामदेव हो तो मैं एक अनजान मुग्धा हूँ। तुम आकाशरूपी वस्त्र हो और मैं दिग्वसना (नग्न) नारी हूँ। तुम बादलों के काले परदे पर चित्र बनाने वाले चित्रकार हो और मैं बिजलीरूपी कूची द्वारा लिखी हुई चित्रकारी हूँ। तुम रणक्षेत्र में जोश के कारण उत्पन्न वीर लोगों के पागलपन का भयंकर नाच हो तो मैं युवती के नूपुर की मधुर ध्वनि हूँ। तुम यदि वेद के सार स्वरूप ओंकार की ध्वनि हो तो मैं शृंगार रस का सर्वोत्तम कवि हूँ। तुम यश हो तो मैं उसकी प्राप्ति हूँ। तुम उज्ज्वल कुन्द, चन्द्रमा या कमल हो तो मैं उन का फैलाव—उज्ज्वलता—हूँ।

वसन्त ऋतु होने से ही कोयल आती है, ऐसे ही ईश्वर के होने से ही जीव की सत्ता है। जैसे कामदेव मुग्धा नायिका के हृदय में चुपचाप कामवासना उत्पन्न करता रहता है वैसे ही ईश्वर भी जीव को कर्म करने में प्रवृत्त करता है। जैसे वस्त्र नवयुवती की लज्जा को सुरक्षित रखते हैं, वैसे ही ईश्वर भी जीव की हमेशा रक्षा करता है। जैसे बिजली का आधार बादल हैं, वैसे ही जीव का आधार ईश्वर है।

इस अंतिम पद में ईश्वर को पुरुषरूप में और जीव को नारीरूप में कल्पित किया है। इसीसे ईश्वर के नृत्य को ताण्डव नृत्य कहा है और जीव के नृत्य को घुंघुरु की मधुर आवाज़ कहा है। जैसे कमल तथा चन्द्र आदि के होने से उज्ज्वलता तथा चाँदनी की सत्ता है, वैसे ही ईश्वर से ही जीव की सत्ता है।

सुमित्रानन्दन पंत

छाया

१ कहो कौन—तरु = पेड़। अलि = सखि। विरक्ति = अप्रसन्नता, खिन्नता। विजन = जनरहित, एकान्त। दुखविधुरा = दुख से व्याकुल।

कहो, तुम दमयन्ती-सी कौन पेड़ के नीचे सोई हो? हे सखि, क्या तुम्हें भी कोई नल सा निष्ठुर पुरुष छोड़ गया है!* नीले पत्तों

---

* विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती का विवाह निषध देश के राजा नल से हुआ था। विवाह के बाद एक दिन राजा नल अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलते-खेलते राजपाट सब हार बैठे। तब उन्होंने जंगल की शरण ली। नल ने दमयन्ती को बहुत कहा कि वह जंगल के दुखों के सहन करने के बजाय अपने पिता विदर्भ-नरेश के यहाँ चली जाय, परन्तु वह इस विपत्ति के समय पति को किसी तरह छोड़ने को तैयार न हुई थी। जंगल में दोनों की इतनी बुरी अवस्था हो गई कि राजा नल के पास तन ढकने तक को कपड़ा न रहा। तब उन्होंने उस दशा से छुटकारा न देखकर दमयन्ती को अकेला छोड़ कर अपना राज्य पाने के लिए कुछ उपाय करना चाहा। यह सोचकर वे एक दिन निर्जन जंगल में सोई हुई दमयन्ती को अकेली छोड़ आप वहाँ से चल दिये और उन्होंने राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि काम स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद दमयन्ती की चतुरता से फिर दोनों का मिलन हुआ।

की शय्या पर अप्रसन्नता और मूर्छा के समान,एवं जुदाई के कारण मलिन और दुःख से व्याकुल के समान एकान्त (जनरहित) जंगल में तुम कौन पड़ी हो ?

२ पछतावे की—पछतावे की परछाँई (प्रतिविम्ब)के समान पृथ्वी पर छाई हुई तुम कौन हो। दुर्वलता, अंगड़ाई अथवा अपराधी के समान डर से चुप तुम कौन हो ? वार वार ठंढी साँस भर कर निर्जनता के पर्दे पर (एकान्त स्थल पर) क्या तुम क्रूर काल के निर्दय कार्यों की कहानी लिख रही हो।

३–४ निज जीवन के मलिन—नीरव=मौन। निर्भर=आश्रित । अतीत=बीता हुआ, गुज़रा हुआ। दिनकर=सूर्य। श्रान्ति= जल्दी । तम=अँधेरा । द्रुत=थकावट । अंतर्धान=छिप जाना ।

अपने जीवन के मलिन पृष्ठ पर, मौन शब्दों में अश्रित किस बीते हुए का अत्यंत कोमल करुण चित्र तुम लगातार खींच रही हो ? अर्थात् अपने दुखी जीवन के किस दुख की करुण कहानी लगातार कह रही हो ? पवित्र सूर्यकुल में जन्म पाकर (छाया की उत्पत्ति सूर्य के कारण होती है अतएव उसे सूर्य वंश में उत्पन्न कहा गया है) और सदा पेड़ के साथ बढ़कर, मुरझाए हुए पत्तों की साड़ी से अपने कोमल शरीर को ढक कर तुम दूसरों की सेवा में सदा लगी रहती हो, और रास्ते की अत्यधिक थकावट को दूर करती हो। आओ सखि, हम बाँहें खोलकर एक दूसरे के गले लग कर प्राणों को शान्ति दे लें। फिर हम दोनों, तुम अन्धकार में और मैं अपने प्रियतम में जल्दी ही अन्तर्धान हो जायँ।

मुसकान

मुसकान का कारण इस कविता में बड़े सुन्दर रूप में दिखाया गया है।

कहेंगे क्या—लोग मुझे मुसकराता देख कर क्या कहेंगे, कभी कभी इस बात का भी ध्यान आता है, पर हाय सखि, क्या करूँ, रोकने पर भी तो यह मुसकान नहीं रुकती।

विपिन में—विपिन = वन । पावस = वर्षा । दीप = दीया । सहसा = यकायक । दुराव = छिपाव । शिशु = बच्चे । कल्पना के शिशु = कोमल भाव । नादान = अज्ञान, छोटे । निदान = अन्त में ।

जिस प्रकार जंगल में वर्षा ऋतु के दीपक (जुगुनू) झिलमिलाया करते हैं, कभी यकायक दिखाई पड़ते हैं, फिर लुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार नित्य मेरे ध्यान में सैकड़ों कोमल भाव यकायक उठ खड़े होते हैं, मैं उन्हें फिर तनिक भी नहीं छिपा सकती। कल्पना के ये अज्ञान बालक (भाव) मुझे अन्त में हँसा ही देते हैं।

पहले कोई कल्पना हृदय में उठती है और उस कल्पना के द्वारा भाव उत्पन्न होते हैं। इसी से भावों को कल्पना के बालक कहा है। उन्हें नादान इसलिए कहा है कि वे अवसर-कुअवसर का विचार नहीं रखते।

तारकों से—तारक = पुतली । नव = नये । हिमजल = ठंडा पानी । लघु = छोटी । चिर = बहुत दिनों का । अपनाव = अपनत्व, नाता ।

ये नये-नये भाव आँखों की पुतलियों से कूद कर पलकों पर आजाते हैं, इससे मेरी नींद दूर हो जाती है। कभी

वे ठंढे जल की छोटी-छोटी बूँदें बन कर (पसीने के रूप में) निकलते हैं और मुझ से घना सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। ये मेरे शरीर, मन तथा प्राणों को गुदगुदा देते हैं, तब मेरी हँसी नहीं रुकती। जब कोई भाव उठता है तो वह आँखों में लक्षित होता है, भाव को सोचते रहने से नींद नहीं आती। इसी से कवि ने 'तारकों से पलकों पर कूदना' लिखा है। कोई भाव सोचते-विचारते पसीना हो आता है, तब वह भाव बराबर उठने लगता है इसी से उसे घना सम्बन्ध स्थापित करने वाला कहा है। पसीने की बूँदें ठंढी होती हैं इसीसे उन्हें 'हिम जल' कहा है। गुदगुदाने से हँसी आना स्वाभाविक है।

कभी उड़ते—सुकुमार=सज्जन, प्रेमी। उस पार=नदी के दूसरी ओर।

कभी उड़ते हुए पत्तों के साथ मेरे प्रेमी मुझ से मिलते हैं, कभी नदी की लहरों रूपी अपने हाथ बढ़ाकर मेरे प्रेमी मुझे उस पार बुलाते हैं। उड़ते हुए पत्ते पीले होते हैं, इन्हें प्रेमी के पीले वस्त्र का प्रतिरूप या उसके सूखे शरीर का समरूप मान सकते हैं लहरों का हिलना हाथों के हिलाने के समान होता ही है।

नहीं रखते—मुझे संसार का कुछ भी ज्ञान नहीं है और यों ही मैं अनजान हँस पड़ती हूँ। हे सखि! तब यह मुसकान रोकने पर भी तो नहीं रुकती। जग का ज्ञान न रखना अपनी सुध-बुध भूल जाना है

———

सुभद्रा कुमारी चौहान

समर्पण

सूखी सी—परिमल = सुगंध। पराग = रस।

हे नाथ! यह सूखी सी अधखिली कली है, इसमें अभी न तो सुगंध है और न रस ही है। किन्तु कुटिल भौंरों के चूमने का भी इस पर निशान नहीं है। भाव यह है कि यद्यपि सुगन्धरहित और नीरस है तो भी पवित्र है।

तेरी अतुल—तेरी अतुल—महान—कृपा का बदला चुकाने के लिए ये कलियाँ नहीं लाई, अपितु तेरी पूजा के लिए केवल भक्ति-भाव से—इन्हें लाई हूँ।

प्रणय जल्पना—प्रणय = प्रेम। जल्पना = डींग, व्यर्थ की बकवाद। चिंत्य = विचार करने योग्य। मृदु = कोमल। अभिलाषा = इच्छा।

प्रेम की डींग, विचारने योग्य भाव, मधुर कल्पना, कोमल इच्छा, और विजयी आशा (वह आशा जो अन्य सब भावों पर विजय पाती है, कि मेरा प्रेमी मुझ से अवश्य मिलेगा) ये सब मिलकर फुलवारी को सजा रहीं थीं।

किन्तु गर्व—किन्तु गर्व (अभिमान, घमण्ड) का एक झोंका आया, यद्यपि वह घमण्ड तेरा ही था, तुझ से ही प्राप्त हुआ था पर मेरी सारी फुलवारी उजड़ गई, और मेरा सब कुछ बिगड़ गया।

बची हुई—बची हुई स्मृति (याद) की ये कलियाँ मैं इकट्ठी करके लाई हूँ। तुझे दिखाने, तुझे खुश करने और तुझे मनाने के लिए आई हूँ।

प्रेम भाव से—प्रेम के नाते से अथवा दया के नाते से ही इन्हें स्वीकार करो। मेरी छोटी सी भेंट जानकर इन्हें ठुकराना मत।

बालिका का परिचय

यह मेरी—यह बालिका मेरी गोदी की शोभा है अर्थात् मेरी गोदी इसके बैठने से सज जाती है। मेरे सुख और सुहाग की लाली है। मुझ गरीबिनी की यह शाही शान है, मुझे इसी पर घमण्ड है अथवा यही मेरी मतवाली मनोकामना—मन की इच्छा—है।

दीप शिखा—यह अँधेरे में दीये की शिखा है। और घनघोर काली घटा में उजियाली है। कमल में बँधे हुए भृंग (भौंरे) के लिए यह ऊषा—सवेरे की लाली—है और पतझड़ में की हरियाली है—अर्थात् जिस तरह अँधेरे में दीये की चाँदनी, घनघोर काली घटा में बिजली की चमक, और कमल में बँधे भौंरे को जैसे सवेरा तथा पतझड़ में की कहीं कहीं की हरियाली जैसे अच्छी लगती है; वैसे ही यह मेरे दिल को हर लेती है। कमल शाम को बंद हो जाता है और उसमें बैठा हुआ भौंरा भी उसके भीतर ही बंद हो जाता है। कमल के खुलने पर ही वह निकल सकता है इसलिए भौंरे को प्रातःकाल अच्छा लगता है।

सुधाधार—यह नीरस (सूखे) दिल के लिए अमृत की धारा है, ध्यान में लगे हुए तपस्वी की मस्ती है, गई हुई आँखों का जीती-जागती ज्योति है और मनस्वी (मन को जीतने वाले) का सच्ची लगन है।

बीते हुए—नाटिका = खेल या एक प्रकार की रागिनी।

गुजरे हुए बालपन की यह खेल युक्त बगीची है, जिसमें वही मचलना, तथा वही किलकना दिखाई पड़ता है, और यह हँसती हुई खेल या रागिनी है।

मेरा मन्दिर—पहले प्रयाग काशी आदि स्थानों में आरे या चक्र होते थे जिनके नीचे फल की आशा से लोग प्राण देते थे। ऐसे आरे या चक्र को करवट कहते थे, जैसे—'काशी करवट'।

यही मेरा मन्दिर है, यही मेरी मस्जिद है, यही मेरी पवित्र काशी है। यही मेरी पूजा, पाठ, ध्यान, जप, तप सब कुछ है और यही मेरे लिए घट घटवासी—परमात्मा—है।

कृष्ण चन्द—भगवान कृष्ण की बाललीला को अपने ही आँगन में देख लो। माता कौशल्या की प्रसन्नता को अपने मन में ही देखो।

प्रभु ईसा—प्रभु ईसा की क्षमाशीलता (अपने शत्रुओं को भी क्षमा कर देने का स्वभाव) पैगम्बर का उच्च-विश्वास तथा महात्मा जिन (जैनियों के आदिगुरु) और गौतम बुद्ध की जीवों पर दया सब इसके ही पास देख लो।

परिचय—मुझ से इसका परिचय पूछ रहे हो, कहो, इसका परिचय मैं कैसे दूँ? केवल वही इसका परिचय जान सकता है जिसका माता का सा दिल हो—जिसके दिल में माता की सी ममता हो।

————

भारतवर्ष के इतिहास की प्रश्नोत्तरी

महाराष्ट्र केसरी के संक्षेप सहित

ले०—श्रीयुत जुगुलकिशोर चतुर्वेदी

इस पुस्तक में आरम्भ से लेकर पानीपत की तीसरी लड़ाई तक का इतिहास प्रश्न और उत्तर के रूप में दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी-रत्न' परीक्षा में १९२७ से लेकर अब तक के आए प्रश्न उत्तर-सहित देकर तथा 'महाराष्ट्र केसरी' का संक्षेप देकर विद्वान् लेखक ने पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है। हिन्दी-रत्न के प्रत्येक विद्यार्थी को इसकी एक प्रति अवश्य लेनी चाहिए। १९३३ की रत्न परीक्षा में ५ वें पत्र के सभी प्रश्न इस पुस्तक के अन्दर से आए थे। १९३५ में महाराष्ट्र केसरी के संक्षेप के बदले 'मेवाड़ गौरव' का संक्षेप जोड़ दिया जायगा। मूल्य ||=)

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

[ल०—श्री बहादुरचन्द शास्त्री, एम.ए., एम. ओ. एल.]

हिन्दी में प्रचलित लोकोक्तियों तथा मुहावरों के भिन्न भिन्न अर्थ, तथा उनका अपनी भाषा में किस तरह प्रयोग किया जाता है यह सब जानने के लिए इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य खरीदिए। हिन्दी-रत्न, हिन्दी भूषण और मैट्रिकुलेशन परीक्षा के प्रत्येक परीक्षार्थी को यह पुस्तक अवश्य खरीदनी चाहिए। पुस्तक खरीदते समय श्रीयुत बहादुर चन्द्र शास्त्री एम.ए.,एम. ओ. एल. का नाम ज़रूर देख लें । मूल्य ।।)

व्याकरण की प्रश्नोत्तरी

ले० श्री भीष्मप्रताप शास्त्री, बी. ए. तथा

कविराज रामलाल अग्रवाल, हिन्दी प्रभाकर, विशारद

संपादक—श्री धर्मचन्द्र विशारद

इसमें सारा व्याकरण प्रश्न और उत्तर के रूप में समझाया गया है, साथ ही पिछले सालों के प्रश्न भी उत्तर सहित दिए गए हैं। विद्वान् संपादक ने इसे हर तरह से विद्यार्थियों के लिए उपयोगी बना दिया है। पुस्तक लेते समय संपादक का नाम अवश्य देख लें। कीमत ।।)